

ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL

वर्ष: 10, अंक 39-40, जुलाई-दिसंबर 2023

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

# मुक्ताचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

१०

प्रथम दशक

पूर्ति अंक



विद्यार्थी मंच

मूल्य: 100 रुपये

उस पार से.....

## जोज़फ़ अर्नाल्ड ट्वानबी

(जन्म : 14 मार्च-1889, मृत्यु : 22 अक्टूबर 1975)



अनुकरण के माध्यम से समाज में जो यांत्रिक कार्य होता है उसमें विपत्ति का भय रहता है। और यह स्पष्ट उस समाज में अधिक रहता है जो गत्यात्मक है बजाय उस समाज के जो सुषुप्त है। अनुकरण की प्रक्रिया का दोष यह है- इस यन्त्रपत संचालन की प्रेरणा बाहर से होती है। यदि आज्ञापालन करने वाले पर छोड़ दिया जाय तो वह अपनी ओर से कभी यह कार्य न करेगा। अनुकरण की क्रिया अपने मन से नहीं होती और इस क्रिया को पूर्ण रूप से सफल करने के लिए आवश्यक है कि उसे रीति-रिवाज या आचार का रूप दे दिया जाय। जैसा कि वास्तव में आदिम समाजों का 'यिन' अवस्थाओं में होता है। किंतु जब रीति की परंपरा टूट जाती है तब तो जो अनुकरण शक्ति पुरातन लोगों के या अपरिवर्तिनीय सामाजिक परंपरा के अवतारों की पूजा में लगती थी, वह नेताओं की पूजा में लगाई जाती है जो सुंदर भविष्य की ओर ले जाने का सपना दिखाते हैं। इस दशा में समाज का रास्ता भ्रमपूर्ण हो जाता है। और संकट का भय सिर पर सवार रहता है। क्योंकि विकास को सुरक्षित रखने के लिए सदैव स्वेच्छा और स्वाभाविक प्रवृत्ति चाहिए और समुचित अनुकरण के लिए, मशीन के समान स्वचालित होना चाहिए जो विकास के लिए आवश्यक है।

पुस्तक : इतिहास : एक अध्ययन



शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

# मुक्तांचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

वर्ष-10, अंक - 39-40, जुलाई-दिसंबर 2023

संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा

प्रकाशक : विद्यार्थी मंच

प्रबंध संपादक : सुशील कुमार पांडेय

कला संपादक : शुभांगता श्रीवास्तव

प्रसार प्रबंधक : रमेश कुमार शर्मा

परामर्श एवं विशेष सहयोग :

प्रो. दामोदर मिश्र : पूर्व कुलपति, हिन्दी विश्वविद्यालय, हावड़ा

डॉ. पंकज साहा : खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

डॉ. अरुण कुमार : प्राक्तन प्रोफेसर, राँची विश्वविद्यालय

डॉ. रणजीत सिन्हा : मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस), मिदनापुर

डॉ. मृत्युंजय पाण्डेय : सुरेंद्रनाथ कॉलेज, कोलकाता

डॉ. विनय कुमार मिश्र : प्राध्यापक, बंगबासी कॉलेज

डॉ. निशांत : काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल

डॉ. कृष्ण कुमार : अध्यक्ष, गीतांजलि बहुभाषिक साहित्यिक समुदाय, (बर्मिंघम, यू.के.)

डॉ. प्रकाश कुमार अग्रवाल : असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

व्यवस्थापन एवं प्रबंधन :

विनोद यादव, विवेक लाल, विनीता लाल, सरिता खोवाला,  
परमजीत पंडित एवं बलराम साव - 89107 83904

संपर्क एवं प्रसार :

चाँदनी सिन्हा (बर्मिंघम, यू.के.) : +447411412229

कुणाल किशोर (के.वि. हिमाचल प्रदेश) : 7998837003

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि मुक्तांचल में प्रकाशन हेतु सामग्री यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) में भेजें।

पत्रिका में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं 'मुक्तांचल' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय-क्षेत्र कलकत्ता उच्च न्यायालय होगा।

पीयर रिव्यूड टीम :

डॉ. धूपनाथ प्रसाद : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. विश्वजीत भद्र : प्राध्यापक, नेताजी नगर कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय)

प्रो. मोहम्मद फ़रियाद : प्राक्तन अध्यक्ष, जनसंचार विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

डॉ. सुनील कुमार 'सुमन' : प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

प्रो. मंजु रानी सिंह : विश्वभारती, शांतिनिकेतन

प्रो. अरुण होता : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, स्टेट यूनिवर्सिटी, बारासात

प्रो. मनीषा झा : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तर-बंग विश्वविद्यालय

डॉ. सत्या उपाध्याय : प्राचार्य, कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता

डॉ. अंजनी कुमार झा : एसोसिएट प्रोफेसर, मीडिया स्टडीज, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)

डॉ. शुभा उपाध्याय : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, खुदीराम बोस सेंट्रल कॉलेज, कोलकाता

मुक्तांचल: A/c- 50200014076551, HDFC BANK  
BURRABAZAR, KOLKATA- 700007,  
IFSC CODE- HDFC0000219

संपादकीय कार्यालय :

आधुनिक अपार्टमेंट, 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन  
सलकिया, हावड़ा-711106, पश्चिम बंगाल  
संपर्क - 033-26751686, 9831497320,  
9681105070ई-मेल - muktanchalpatrika@gmail.com  
sinhameera48@gmail.comमुद्रक : शिक्षण, 50, सीताराम घोष स्ट्रीट,  
कोलकाता-700009

पत्रिका का मूल्य : एक अंक - 100 रुपये

सदस्यता शुल्क : वार्षिक-600 रुपये, आजीवन-3000 रुपये

संस्थाओं के लिए : वार्षिक-600 रुपये, आजीवन-3500 रु.  
डाकखर्च (प्रत्येक अंक के लिए) अतिरिक्त 30 रुपये।

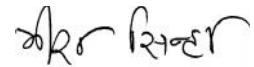
## अवस्थिति

शोध	06 संस्तुति आलेख 07 सेवाराम त्रिपाठी : 12 शशिभूषण द्विवेदी : 19 डॉ. महात्मा श्रीनाथ पाण्डेय :	हरिशंकर परसाई : अपने समय से मुठभेड़ डॉ. रमेश कुंतल मेघ एक विरल प्रतिभा ... आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की सामाजिक, सांस्कृतिक, चेतना और कबीर आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक—नोम चोम्स्की
	26 योगेश तिवारी : अनुशीलन 30 डॉ. पंकज साहा : 35 रजत सान्याल : 37 ऋषिकेश राय : 46 स्नेहा सिंह :	मृणालिनी: पुराने जीवन-मूल्यों की टूटन एवं नारी- सशक्तिकरण की छटपटाहट 'चारुलता' सत्यजित रे साहब की एक यादगार फिल्म मनोहर श्याम जोशी के साहित्य में उत्तर आधुनिक तत्व कोरोनाकाल और आभासी-पटल को उजागर करती कहानियाँ
समीक्षण	विमर्श 50 राजवंती मान : 55 डॉ. एस कृष्ण बाबू :	प्रतिबंधित और गुमनाम हिंदी साहित्य शैक्षिक क्षेत्र में साहित्यिक शोध: सीमाएँ, समस्याएँ और संभावनाएँ
	शोधार्थी की कलम से 58 मनोज कुमार दास : 64 पिकी झा : 69 पंकज कुमार सिंह : संस्मृति 73 विनोद साव :	स्त्री अस्मिता की मौन अभिव्यंजना : सुधा अरोड़ा की कहानियाँ 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' में आज का समय आपातकाल और हिंदी कविता आलोचना की अनूठी भंगिमाओं के बीच डॉ. राजेन्द्र मिश्र
संज्ञा	कहानी 75 अरुण अर्णव खरे : 83 मंजुरानी सिंह : 86 रंजना जायसवाल :	विला के आँसू सभ्यता का शिकंजा तिथि
	93 नीरजा हेमेन्द्र : 102 अस्मिता सिंह :	एक छोटी-सी यात्रा... बेचारगी

शोधसमीक्षा	भाषांतर	
	109 मूल लेखक: रोअल्ड डाहल अनुवादक : शुशांत सुप्रिय	खाल
	पुस्तकायन	
	114 डॉ. वन्दना गुप्ता :	खरपतवार: 0पितृसत्तात्मक समाज की खोखली अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाती कहानियाँ
	118 शशि काण्डपाल : 122 मुकेश पोपली : 124 डॉ. अजीत प्रियदर्शी :	एक आदिम चरवाहा गाँव की दास्तान बेहद खूबसूरत है खूबसूरत मोड़ जो मुट्ठी में है : जनता के सवाल और स्वप्नों को उजागर करती कविताएँ
व्यंग्य	129 रामस्वरूप दीक्षित : कविता	अक्खड़ संपादक और चापलूस लेखक
	130 नरेश अग्रवाल :	गरीब, स्मारक, पसीज जाता हूँ, बँटवारा, तुम्हारी थकान, कविता न लिख पाया, मित्रता
	132 रेणुका अस्थाना :	मकर संक्रांति, मैंने जीना सीख लिया, नव विहान, मन, यादें
	133 मीना घुमे : 134 सतीश लोथे :	इच्छाएँ, विश्वास वो और आप, समय बीचोबीच
	136 प्रिया श्रीवास्तव : प्रवासी कलम	गाँव का घर, गगनधरा
सृजन	137 चाँदनी सिन्हा नई पहल नया कदम	यादों के आइने में, सोच
	138 अक्षिता शशि साव अभिम्भ	बनावट, हिम्मत
	139 रूपसिंह चंदेल	मुक्तांचल - 38, लघुकथा विशेषांक
	141 पद्माकर व्यास गतिविधियाँ	मुक्तांचल का लघुकथा अंक
	142 आनंद गुप्ता 143 मीरा सिन्हा 143 चाँदनी सिन्हा	नीलांबर ने आयोजित किया लिटरेरिया 2023 बर्मिंघम में साहित्यिक अड्डा गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय की पहली बैठक
संचार	परिशिष्ट	
	144 समीक्षार्थ पुस्तकें प्राप्त हुई	

## संस्तुति

प्रथम दशक पूर्ति अंक को संस्तुत करते हुए यात्रित होती स्मृतियों के गगन छूते प्राचीर अभिभूत करते हैं कि आखिर कैसे हो पाया यह सब कुछ श्रृंखलाबद्ध और निरन्तर, अपनी धुन में अलग और आजाद, कभी भीड़ में तो कभी अकेले दस्तक देते हुए चलते रहने की आदत में कितनी चोंटें छिपी हुई है। यात्रा की शुरुआत हिन्दी साहित्य के कुछ मेधावी विद्यार्थियों के साथ आरम्भ होती है, वह था वर्ष - 2012। हम हिन्दी साहित्य के तमाम अकादमिक मुद्दों पर बहस चाहते थे- हम चाहते थे कि साहित्य विश्वविद्यालयों के परिसर में दोयम दर्जे का उपेक्षित-सा दीन-हीन विषय होकर ही न रह जाये, ये पेशेवर लेखक और प्रकाशक गठजोड़ से ऊपर उठकर सर्जनात्मक साहित्य - पाठकों की कसौटी पर खड़ा उतर प्रत्येक पाठक एक विद्यार्थी की गरिमा से आविष्ट हो। प्रथमतः हममें विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी भाषा और साहित्य के पाठ्यक्रम को खंगालना शुरू किया। इस कार्य में शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों का एक समूह जुट गया और हम इस काम को मुकम्मल रूप देने के लिए 'विद्यार्थी मंच' के नाम से लगभग तीस सदस्यों को लेकर एक संस्था गठित कर ली और उसे पंजीकृत भी करवा लिया गया। साल भर तक मंसूबे बाँधने के अनन्तर हमने एक आकादमिक पत्रिका की शुरुआत करने की ठान ली। पत्रिका की उद्घोषक पंक्ति तय कर ली गई। शोध, समीक्षण, सृजन और संचार के खाके में मुक्तांचल ने जनवरी-मार्च 2014 से 2023 के दिसम्बर तक एक-दशक पूरे कर लिए और अब 2024 से दूसरे दशक पर एक मजबूत कदम रख रहा है। 'मुक्तांचल' के उद्घोषित चार शब्दों में से दो शोध और समीक्षा का सीधा सम्बन्ध शोधार्थी विद्यार्थी वर्ग के साथ जुड़ता है अतः, उसके लिए अध्यन-अध्यापन के परिसर में पहुँचना आवश्यक है। 'मुक्तांचल' मुख्य रूप से 'कैम्पस' की पत्रिका है। सृजन और संचार को भी उसी जगत में अपनी जगह बनानी होगी जहाँ से उसकी चर्चा को उन्मान मिले। प्रत्येक लेखक के लेखन का समीक्षक उसका पाठक है जो विद्यार्थी की तरह उसकी रचना से रू-ब-रू होता है, संचार के अन्तर्गत पुस्तकायन, अभिमत, गतिविधियाँ आती हैं जो विविध कोणों को उजागर करने में समर्थ होती हैं। उच्च अध्ययन की संस्थाएँ अपने परिसर में एक परिवेश को रचती हैं, साहित्य जैसे विषय को लेकर दूर तक चलना इसके बिना सम्भव नहीं होता। कोई भी भाषा अपने साहित्य को लेकर आज चिन्तित है, क्योंकि चर्चा-परिचर्चा एवं क्रियाकलापों के अभाव में उसका मृत हो जाना निश्चित ही है। यह दुर्घटना इसलिए लाजिम हो गई है कि साहित्य के संसार में तकलीक एवं विविध विषयों को जैसे-तैसे 'फिट' किया जा रहा है जिससे एक साहित्य का विद्यार्थी 'कनफ़्यूज्ड' हो जाता है कि आखिर साहित्य का सही स्वरूप क्या है और उसके अध्ययन की दिशा किधर होनी चाहिए? लिहाजा, आज साहित्य के सन्दर्भ में इतिहास, दर्शन, विज्ञान और अनुसन्धान को नहीं नकारा जा सकता। साहित्य समावेशी होता है उसके सृजन एवं विश्लेषण में दृष्टिकोण का होना बहुत जरूरी है। सिर्फ तकनीक के बल पर साहित्य का संधान संभव नहीं है। अस्तु, 'मुक्तांचल' के माध्यम से विद्यार्थी मंच एक पुख्ता जमीन की तलाश करेगा जिससे शोध, समीक्षा और सृजन के क्षेत्र में भरपूर रोशनी संचारित हो सके।



संपादक

## हरिशंकर परसाई : अपने समय से मुठभेड़

-सेवाराम त्रिपाठी

(1) “अब कोई आदमी सुरक्षित नहीं है। एक दिन ऐसा आएगा, जब इस देश के आधे आदमियों की जाँच हो रही होगी; बाकी आधे जाँच कमीशनों में होंगे।” (हरिशंकर परसाई) (2) “देखो जनता जब आर्थिक न्याय की माँग करती है, तब उसे किसी दूसरी चीज में उलझा देना चाहिए, नहीं तो वह खतरनाक हो जाती है।” (निठल्ले की डायरी) (3) “यह मिसफिट का युग है भाई। जिसे जुआखाना चलाना चाहिए वह मंत्री है, जिसे डाकू होना चाहिए वह पुलिस अफसर है। जिसे दलाल होना चाहिए वह प्रोफेसर है। जिसे जेल में होना चाहिए था मजिस्ट्रेट है, जिसे कथावाचक होना चाहिए वह उपकुलपति है। जिसे जहाँ नहीं होना चाहिए वह ठीक वही है।” (हरिशंकर परसाई)

परसाई का लेखन बिडंबनाओं, अंधविश्वासों, विरोधाभासों और विकृतियों की कोख से पैदा हुआ है। इसलिए वह मुँहदेखी और खुदगर्जी से बाहर है। परसाई अपने युग और समय की वास्तविकताओं को भरपूर पहचानते थे। वे अपने समाज के आंतरिक और बाह्य घात-प्रतिघातों को दर्पण की मानिंद बूझते थे। उनका लेखन इन्हीं आपाधापियों, यातनाओं और संघर्षों से निर्मित हुआ है। अपने समय, समाज के यथार्थ की आग और बैचैनी से उनका लेखन प्रत्यक्ष हुआ है। वे हास्य, मसखरी और विनोद के लेखक कत्तई नहीं हैं। व्यंग्य लिखते हुए या और कुछ और लिखते हुए ये चीजों आ जाएँ, यह अलग बात है। जो भी उसमें आता है वह उनके लेखन को पुरखा और जुझारू ही बनाता है। उनके लेखन को प्रतिबद्धता से लैस करता है। उनकी निगाह और निशाना निश्चित और अचूक है। कोई धड़का नहीं।

उनके लेखन की जमीन, प्रकृति, ज्यामिति, भूगोल और पुरातत्व सर्वेक्षण की दुनिया है और उसकी दिशा एकदम तय है। उनका लेखन विचलन का नहीं बल्कि जन के गहरे सरोकारों, उम्मीदों और

कंसर्न का लेखन है। उनके लेखन की राजनीति स्पष्ट है, इसलिए उसमें कोई गफलत भी नहीं है और न कोई आयं-बायं-सायं है। अनुभव कर रहा हूँ कि हमारा समूचा समय, परिवेश, मूल्य और समाज धीरे-धीरे बंजर होते जा रहे हैं। परसाई का लेखन इसी बंजरपने के प्रतिरोध का लेखन है। परसाई का एक सूत्र इसका खुलासा कर देता है - “हमारे देश में छोटा आदमी हमेशा, सैंपल के काम आता है और कटता है बड़ों की भलाई के लिए।” यह केवल मार्मिक वाक्य भर नहीं है, बल्कि हमारे समय का कड़वा सच भी है।

परसाई जी से मिला हूँ और बतियाया भी हूँ। ‘वसुधा’ पत्रिका में काम भी किया है। मैं, उनमें हमेशा एक चुंबकत्व जैसा अनुभव करता रहा हूँ। वैचारिक रूप से अपने को संपन्न पाता रहा हूँ और यही नहीं उनमें गहन जिजीविषा और रिश्तों का विस्तार भी देखता रहा हूँ। उनकी बाहरी आँखों से ज्यादा भीतरी आँखें ज्यादा सक्रिय रहती थीं। वे हमारे जीवन और समय के सवाल को यथार्थ और कल्पना के संयोजन से बुनते थे जिसमें हमारे जीवन का कठिन और जलता हुआ यथार्थ होता था। यह उनकी रचनात्मक कर्मठता की कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया में शामिल रहा है। वे अपने जेहन में समूची दुनिया की एक विशेष किस्म की फिल्म बना रहे थे। उनके समय में भयानक द्वंद्व थे। जिसकी फोटोग्राफी वे अपने लेखन में करते थे। अपने समय को पकड़ना बहुत आसान नहीं हुआ करता, वैसे समय के बारे में यह कोई नई बात नहीं है। समय को पूरी तरह से पकड़ पाना सच में बहुत मुश्किल काम है। विरले ही ऐसा कर पाते हैं। जब हमारे सोचने समझने को खत्म किया जा रहा हो तो बैचैनी, पीड़ा, उद्वेलन और - और बढ़ता जाता है। रचनाकार को तो द्वंद्वों का अनवरत सामना करना ही पड़ता है। आज का समय तो मेरी समझ में एक

अपाहिज और चिरकुट समय है। कुछ भी हो सकता है और कुछ भी घटाया जा सकता है। परसाई की जिंदगी, द्वंद्वमय और संघर्षमय रही है। इन्हीं जीवन संघर्षों की छाया में उनका लेखक निर्मित और परिपक्व हुआ है। उनका जीवन अभाव, विषमता, संघर्षशीलता की एक असमाप्त त्रासद कथा है। उनका लेखन किताबों से नहीं कठिन चुनौतियों, आपाधापियों और जीवन संघर्षों से निर्मित हुआ है। उनकी टिप्पणी पर ध्यान दीजिए- “दुःख हमेशा मांजता ही नहीं; वह आदमी को तोड़ता, नीच और कमीना भी बनाता है।” वह कई प्रकार के पाठ पढ़ता है। हमारे जीवन से न जाने कितनी चीजें एकदम गायब की जा रही हैं। गांवों का भोलापन, सज्जनता, मूल्यवादिता और संघर्षशीलता। कानफोड़ वातावरण में सब डूबता जा रहा है। अनावश्यक आवाजें आवाजाही कर रही हैं। झूठ का वितान सजा है। उसमें भौंति-भौंति के फूल खिलाए जा रहे हैं। क्रूरता और हिंसा नाच रही है। आज के समय को देखने के लिए अरुणाभ सौरभ की पंक्तियाँ भी हमें स्मरण करना चाहिए- “हम अपने कुनबे, दड़बे में छिपे लोग जिनकी कोई माँग नहीं/ एक अमरफल लाने निकले हैं /अगम के पार/ निगम के पार /सत के पार/असत के पार/ लोकतंत्र को बैताल की तरह अपने कंधों पर लादकर /कथा सुन रहे हैं राजा विक्रम की तरह/भयानक चीख का नाम है हमारा समय/अनगिन सवालोंने से टकराने से पहले/ अपने बच्चे को जी भर चूम लिया जाए।”

परसाई तमाम तरह के किले, कलश - कंगूरे और गढ़ तोड़ते थे और मनुष्यता के नए-नए मुकम्मल साँचे बनाते थे। अपने समय के अनंत जलते हुए सवालोंने को उठाते थे और मोहग्रस्त ढलवा साहित्य के प्रतिपक्ष में तनकर खड़े होते थे। ढलवा साहित्य पर उनका एक संपादकीय स्मरण कर रहा हूँ। तथ्य यह है कि अपने समय के सवालोंने से मुठभेड़ करना कभी भी सहज और सरल काम नहीं होता। आजादी के बाद लगा था कि अब अपनी धरती और आकाश है। बहुत सारे सपने आजादी मिलते ही हमारी आँखों में बसने लगे थे। कई प्रकार के नए मिथक बने, पुराने टूटे भी। जीवन इतना संघर्षमय होता है

कि धीरे-धीरे वह हमें कुचलता रहता है, बार-बार पीटता रहता है। बहुत कुछ सिखाता भी है। कभी-कभी वह हमें बदरंग भी कर देता है। और कुछ समय बाद लीलने लग जाया करता है। जनता की वास्तविकता को कुछ लोग ही सही ढंग से समझ पाते हैं। उनके अलावा कोई नहीं समझ पाता। जनता बार-बार छली गई और उसे आभासी की शक्ल-ओ-सूरत दे दी गई। परसाई इसी के समानांतर लिख रहे थे। उन्होंने जो भी लिखा ठोस, ज्वलंत और महत्वपूर्ण लिखा। उन्होंने इसी की बदौलत अपने लेखन की सार्थकता प्रतिपादित और प्रमाणित की। वे साहसी और जिम्मेदार लेखक के रूप में सामने आते हैं। यह साहसी लेखक उनकी जिम्मेदारी का एकदम खास मार्का भी है। परसाई के लिए जीवन और विचार का द्वंद्वात्मक रिश्ता जीवनपर्यन्त रहा। परसाई कोई चीज यूँ ही नहीं लिख देते, बल्कि गहन सर्वेक्षण और जिंदगी की हकीकत विभीषिका और पड़ताल करके लिखते थे। परसाई पर विश्वनाथ त्रिपाठी की एक टिप्पणी गौर करने लायक है- “परसाई का लेखन एक प्रगतिशील, कर्मठ कार्यकर्ता का लेखन है। वह व्यक्तिवादी, रूपवादी, साहित्य को समाज से काटकर प्रगति विरोधी तथाकथित बुद्धिजीवी लेखकों को चुप कर देने वाले का लेखन है। परसाई हिंदी साहित्य के उस कालखंड के लेखक हैं जिसे शीतयुद्ध कहा जाता है और ऐसा शीतयुद्ध विविध रूपों में हिंदी साहित्य में भी दिखलाई पड़ रहा था। ऐसे समय में परसाई के लेखन ने प्रगतिशील विचारधारा और सृजन को मजबूती से खड़ा रखने में निर्णायक सहयोग किया। उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता, वैचारिक और सर्जनात्मक दोनों क्षेत्रों में कारगर रही है।” (परसाई का व्यंग्य: स्वातंत्रोत्तर भारत की आचरण संहिता)

उनकी एक संस्मरण की किताब है- हम इक उम्र से वाकिफ हैं। इस संस्मरण में वे लिखते हैं - “मेरा अनुभव है कि हस्बे - मामूल (नॉर्मल) रहकर भी सृजन किया जा सकता है। मैं छोटा लेखक हूँ मगर मैंने अपने को त्याग और बलिदान की महिमा



से मंडित नहीं किया। शराब जरूर पी। पर बाकी जिंदगी बिलकुल सामान्य रहा। बड़े-बड़े पारिवारिक दायित्व निबाहे। कई समाजसेवी संस्थाओं में जिम्मेदारी के पदों पर रहा - अभी भी हूँ। मैंने कोई त्याग, कोई बलिदान नहीं किया। मैं नकली कफन नहीं लपेटता।” (हम इक उम्र से वाकिफ हैं, -पृष्ठ -11)” वे जिंदगी में परिवार और रिश्तों की अहमियत जानते थे। वे बहुआयामी, बहुवर्णी और चौकस रहे हैं। उनका एक व्यंग्य याद कर रहा हूँ - हरिजन पीटने का यज्ञ। वे ज्यादातर अपनी बातें सूत्रों - सूक्तियों और आम आदमी के लहजे में करते थे। वसुधा में लिखा एक संपादकीय है - “पुजारी जानता है, भगवान चाहे कहीं और हों मगर मंदिर में तो कतई नहीं है। मुसलमान जानता है कि खुदा कहीं होगा तो मस्जिद के बाहर होगा, यहाँ तो नहीं है। मगर अपना धंधा इसी में सुरक्षित है कि लोगों को विश्वास दिलाएँ कि उनका कल्याण होगा। मंदिर और मस्जिद में की गई पुकार भगवान एकदम सुनता है। सीधी, हॉट लाइन है।”

हमारे जीवन और समय में इतना दोगलापन है कि आखिर आप कितना कहेंगे। बेशर्मी का दायरा बहुत बड़ा है। वह नकटा की नाक कटी ढाई बीता और बढ़ी की स्टाइल में विस्तार पाता रहा है। परसाई ने अपने जीवन को समय के सवाल को सचाई के साथ उठाया। साहित्य में एक नहीं मोटे तौर पर दो परस्पर विरोधी या भिन्न धाराएँ हैं और ठस्से के साथ अपने काम में लगी हैं, एक साहित्य को जीवन से केंद्रित करती है और दूसरी है तमाशगिरों की। वे साहित्य को कहीं भी ठेलते रहते हैं। प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष पद से विदा लेते हुए उनके कथन को देखे जाने की जरूरत है। उनके शब्दों की गरिमा पर ध्यान देने की आवश्यकता है और बेचैनियों को भी। परसाई लिखते हैं- “खतरा एक प्रकार के छद्म क्रांतिकारियों और समझौतावादी साहित्यिक सर्वोदयवादियों से भी है। ये हमारे संगठन में तोड़-फोड़ की कोशिश में लगे हैं। ये प्रगतिशील लेखकों का चरित्र हनन तक करते हैं। इनमें से बहुतेरे यह नहीं जानते और मानते कि

जनक्रांति जनता की विचारधारा पर आधारित क्रांतिकारी संगठन के सचेत और सुनियोजित संघर्ष से होती है। न कि स्टंट और विवेकहीन दुस्साहसिकता से।”

परसाई जी गहरे कंसर्न के लेखक हैं और उनकी एक प्रतिबद्ध सोच प्रणाली है। वे निरंतर चौकस और सचेत रहें हैं। परसाई महास्वप्न के संजीदा लेखक हैं। वे किसी भी सूरत में उथले लेखक नहीं हैं। उनकी बातें दिल की अतल गहराइयों से निकलती हैं। वे डर-डरकर नहीं लिखते। परसाई जी ने अपने जीवन और लेखन से कितने व्यक्तियों को लेखकीय ही नहीं, बल्कि जीवन निर्माण की प्रेरणा दी है। इसलिए, उन्हें जीवन निर्माता के रूप में भी देखा जाना चाहिए। वे जीवन और समय के सक्षम व्याख्याकार भी हैं।

अभी कुछ दिनों पूर्व आजादी के पचहत्तर वर्ष पूरे हुए, लेकिन आजादी के संदर्भों में सत्ता व्यवस्था की चहारदीवारियों में अनेक किस्म की चोंचलेबाजियाँ और शिगूफेबाजियों के रूपाकर दिखाई पड़े, ऐसी कई प्रकार की बातें बेशर्मी अंदाज में हो रही हैं। इस दौर में आजादी और अभिव्यक्ति की जकड़बंदी को ही नहीं देखना चाहिए, बल्कि स्वतंत्रता के मान-मूल्यों के सिलसिले भी देखने की जरूरत है। और स्वतंत्र प्रेस और पत्रकारिता को ही नहीं मीडिया को गुलाम या पिड्ड बना लिया गया है। इस पर लगातार प्रश्नांकन हो रहे हैं। एक विकट परिस्थिति यह है कि हमारे समय और समाज से आलोचना गायब हो रही है और वह एक विशेष प्रकार के अवसरवाद में बदल गई है। परसाई के इस संसार से जाने के इतने वर्षों बाद आजादी और जनतंत्र को लगभग निगल लिया गया है। केवल न्याय व्यवस्था ही जनतंत्र की आधी - अधूरी पहरेदारी कर पा रही है। आज एक अखबार में खबर पढ़ रहा था कि सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश माननीय चंद्रचूड़ ने एक बयान जारी किया है कि बिना अनुमति के मकान ढहाए जाने और बिना किसी कारण के जेल में डाले जाने पर वे स्वयं संज्ञान लेंगे और कार्रवाई करेंगे, ताकि न्याय व्यवस्था पर लोगों का भरोसा कायम

रहे।” जोर देकर कहने की आवश्यकता है कि एक तानाशाही मनोविज्ञान सब कुछ लील लेना चाहता है। जाहिर है कि परसाई के लेखन के दर्पण में भयावहता और घुप्प अंधेरे के हजारों रूप और भंगिमाएँ हैं। यथार्थ के खतरनाक और ठोस सबूत हैं। परसाई का लेखन उनकी शिनाख्त भी करता है और मुठभेड़ भी। लेखन में लुल्लपना किसी भी तरह से नहीं चल सकता। लेखक को बहुत गहराई तक जाकर उसकी खोज करनी पड़ती है। परसाई ने अपनी एक वार्ता में स्पष्ट किया है - “अनुभवों का अन्वेषण, विश्लेषण करना तथा उन्हें सही अर्थ देना तभी संभव होता है जब लेखक के पास दृष्टि हो और यह दृष्टि दर्शन तथा विचारधारा से आती है। बिना सही दर्शन के अनुभवों के निष्कर्ष गलत निकाले जा सकते हैं। व्यंग्य लेखक के लिए तो यह और आवश्यक है, क्योंकि यह उन तथ्यों तक जाता है जहाँ अन्य साहित्य - रूप नहीं जाते।” (अन्विति - सितंबर 23, पृष्ठ -05)

परसाई के लेखन की सही स्पिरिट को जानना है तो उन्हें सूत्रों में खोजें। ये सूत्र उनके अनुभव की दुनिया से निकलकर आए हैं। कुछ सूत्र देखें - (1) “नारी मुक्ति के इतिहास में यह वाक्य अमर रहेगा कि एक की कमाई से पूरा नहीं पड़ता।” (2) “राजनीतिक लाभ मिलता हो तो राजनीतिक सूरमा अपनी धर्मपत्नी से पेमेंट पर किसी से बलात्कार करवा के हल्ला कर सकता है कि अमुक जाति के आदमी ने मेरी पतिव्रता को भ्रष्ट किया।” समय की हकीकत विभीषिका और त्रासदी यह है कि लेखकों की दुनिया से पक्षधरता निस्तेज हो रही है। जल्दी कोई अपने समय से टकराने की जुर्रत नहीं करता। परसाई को उनके समय के दर्पण में देखिए। कबीर से लेकर मुक्तिबोध के पास भी देखिए। परसाई का लेखन किसी रिवाज की दुनिया का लेखन नहीं है। परसाई जी हर कहीं अपने तीखेपन के साथ मिलते हैं। कबीर की तरह, प्रेमचंद की तरह, राहुल सांकृत्यायन और मुक्तिबोध की तरह अपने समय के सवालों से मुठभेड़ करते और जूझते हुए मिलते हैं। परसाई का लेखन अनावश्यक छलांग नहीं, बल्कि अटूट निरंतरता का

लेखन है। परसाई अपने समय में जूझ रहे होते हैं। भारतीय जनतंत्र के भेड़िया धसान से दो चार हो रहे होते हैं और यही नहीं देश-दुनिया की चुनौतियों संघर्षों वास्तविकताओं और पेचीदगियों से युद्ध लड़ रहे होते हैं। परसाई का समग्र लेखन एक विशेष अर्थ में बेहद त्रासद, लेकिन टकसाली लेखन है।

परसाई सत्ता लोलुप रक्तपायी भेड़ियों पर बात करते हुए लिखते हैं - “हर भेड़िए के आस-पास दो-चार सियार रहते ही हैं। जब भेड़िया अपना शिकार खा लेता है, तब वे सियार हड्डियों में लगे माँस को कुतर खाते हैं और हड्डियाँ चूसते रहते हैं। ये भेड़िए के आस-पास दुम हिलाते फिरते हैं, उसकी सेवा करते हैं और मौके-बेमौके विभव के हुअँ-हुअँ उसकी जय बोलते हैं।” (भेड़ और भेड़िए)

भीष्म साहनी ने सही इंगित किया है - “परसाई जी का व्यंग्य न तो भावनाहीन है और न मन में कटुता पैदा करता है। यह इस कारण कि उनकी दृष्टि बड़े व्यापक परिप्रेक्ष्य में जिंदगी की जद्दोजहद को देखती है, किसी एक वर्ग अथवा किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। इसी व्यापक जीवन से साक्षात् करते हुए वह उन लोगों से जुड़ते हैं, जो समाज की जीवन परिपाटी में वंचित और अपहृत हैं, जो अपनी मेहनत, अपने संघर्ष के बावजूद, न तो समाज में न्याय प्राप्त करते हैं, न ही इज्जत-आबरू, अपने को ज़िंदा रख पाने के लिए जूझना ही जूझना अपनी हड्डियाँ तोड़ते रहना ही जिनकी दिनचर्या बन गई है।” (वसुधा 41-पृष्ठ -345)

परसाई जी की खूबी यह है वे अंधकार को देखते भी हैं और पहचानते भी हैं। उसका भेदन भी करते हैं। वे यथार्थ के पीछे और अगल-बगल उजली कल्पनाओं का अर्शदोर और घुप्प अंधेरा देखते हैं जो उनके रचनात्मक कौशल में पारंगत तरीके से मिलता है, कभी विट में, कभी मिथक में, कभी प्रतीक में और कभी फैंटेसी में। वे कहीं भी अपना दुहत्थड़ जमाना नहीं छोड़ते। परसाई जीवन की जद्दोजहद, आपाधापियों, यातनाओं, संघर्षों और वास्तविकताओं की त्रासदियों को जानने वाले सक्षम व्याख्याकार और प्रस्तोता हैं। उनके लेखन में ये सारी चीजें

एकदम घुलीमिली हुई हैं। परसाई जी की नजरों से कोई चीज जल्दी छूटती नहीं। वे उसे आखिर पकड़ ही लेते हैं। यह कमाल विरलों को ही मिलता है। परसाई को पढ़ता हूँ तो अक्सर चार्ली चैप्लिन मुझे याद आते हैं, उनकी ट्रेजेडी फैली हुई सी लगती है। मार्क ट्वेन और परसाई का जीवन और लेखन किसी एक आदमी का लेखन नहीं लगता है। उसमें इतने अनुभव घुले हुए हैं कि दुनिया की पेचीदगियों, त्रासदियों में कोई कैसे हँस रहा है और न जाने कितने आँसुओं को पी रहा है। यह परसाई का लेखन और यथार्थ का अंतरंग संसार है। ऐसा लगता है कि उनका कैमरा अपनी आँख से कोई चीज छोड़ता ही नहीं। जहाँ विसंगति- विडंबना, अंतर्विरोध- पाखंड और अंधविश्वास दिखे उनके दृश्य खींच लेता है। उनके भीतर लगातार एक रंगमंच और सिनेमा सक्रिय है। जहाँ हर प्रकार की गतिविधियों को प्रस्तुत किया जा रहा है। उनका लेखन मेरे लिए किसी आश्चर्य से कम नहीं लगता है। सच तो यह है कि परसाई का साहित्य संपर्कों के विराट् रूपाकारों से ही संभव होता है। वे धन्य और धिक्कार के लेखक हैं जैसा पुरुषोत्तम अग्रवाल मानते हैं। धन्य और धिक्कार की यह कभी न खत्म होने वाली जुगलबंदी है। परसाई समाज में घट रही एक-एक चीज का व्यापक सर्वेक्षण और जिंदगी का परीक्षण करते हैं। एक क्रूर सच की ओर ध्यान दिलाते हैं - “हमें कुचलने वाले अब बहुत सुडौल होते जा रहे हैं। साम्राज्यवाद आने वाले दिनों में और सुंदर होता जा रहा है।”

परसाई की भाषा एक झरने की मानिंद है जो लगातार खिलखिला रही है और उन बीहड़, पथरी इलाकों की तरह भी है जो निरंतर तप रहे हैं, लेकिन गाँवों के लोगों की तरह जिजीविषा से भरे हुए भी हैं। श्याम कश्यप ने सच ही लिखा है - “परसाई की भाषा विविध स्तरों और अनेक परतों के भीतर चलने वाली करंट की किसी अंतर्धारा की तरह है। यह भाषा सहज, सरल और अत्यंत धारदार तो है ही, साथ ही

इसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं स्थितियों, संबंधों और घटनाओं के यथार्थ वर्णन की भी विलक्षण क्षमता है। उनकी रचनाओं में प्रसंगानुकूल भाषा के इतने रूप मिलते हैं कि अन्यत्र ऐसा वैविध्य और ऐसा कलात्मक संतुलन दुर्लभ है। वे हिंदी के सबसे लोकप्रिय और आजादी के बाद के भारत के एकमात्र प्रतिनिधि गद्य लेखक हैं।” (वसुधा 41, पृष्ठ-379)

मुझे लगता है कि परसाई जी के व्यापक अनुभव संसार को पूरी तरह से बाँधा नहीं जा सकता। उनका कैनवास विशाल है जिसकी परिधि को सहज रूप में छेकना किसी भी सूरत में संभव नहीं है। परसाई में एक चुंबकत्व है और एक गहन जिजीविषा भी। ये उसी से संचालित होते हैं। परसाई के दो सूत्र इस प्रकार हैं जो हमारे समय की विभीषिका को सूचित करते हैं- 1) “इस देश को खुजली बहुत होती है। जब खुजली का दौर आता है तो दंगा कर बैठता या हरिजनों को जला देता है। तब कुछ सयानों को खुजली उठती है और ये प्रस्ताव का मलहम लगाकर सो जाते हैं।” (2) “जिस समाज के लोग शर्म की बात पर हँसें और ताली पीटें, उसमें क्या कभी कोई क्रांतिकारी हो सकता है।” (3) “अपने जीवन और लेखन से वे हमारे समय, समाज और यथार्थ की एक कभी न समाप्त होने वाली फिल्म बनाना चाहते थे, जिसमें मानव मुक्ति की समूची इकाइयाँ हों।”

इधर व्यंग्य लेखन की ही नहीं, बल्कि साहित्य की अनेक दुकानें खुली हैं। वे लेखन को एक बड़ा आभा मंडल भी बना रही हैं। ज्ञानरंजन ने सही इंगित किया है कि - “मुझे लगता है परसाई जैसी जबरदस्त प्रतिभाएँ अपने चारों तरफ एक स्वयमेव का आपातकाल लागू कर देती हैं। कभी-कभी उनके पास तक आलोचनाओं, आशंकाओं या सवालियों का प्रवेश नहीं हो पाता.....परसाई को व्यंग्यवादियों से खतरा है और हिंदी के अध्यापकों की पाठ्यपुस्तकीय समझ से भी।” (प्रेमचंद के फटे जूते की भूमिका)

.....

संपर्क : रजनीगंधा 06, शिल्पी उपवन, अनंतपुर, रीवा ( म. प्र. ) 486002 मोबाइल-7987921206

## डॉ. रमेश कुंतल मेघ एक विरल प्रतिभा ...

-शशिभूषण द्विवेदी

डॉ. रमेश कुंतल मेघ – यानी हिंदी साहित्य की ऐसी प्रतिभा जिसने अपने के लिए एक ऐसे विषय को चुना जिस पर एक तो हिंदी के कम आदमियों की नजर गई; और दूसरा यह कि उस काम को उन्होंने इतनी व्यापकता दी कि उसमें ज्ञान के कई अनुशासन इस कदर और इस अंदाज में समाहित किए गए कि वे सब के सब ‘सौंदर्य बोध शास्त्र’ (यह उन्हीं का शब्द है। वे घिसे-पिटे ‘सौंदर्य शास्त्र’ शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के एस्थेटिक्स के लिए नहीं करते) के एक प्रकार के रूप में हमारे सामने आए। डॉ. मेघ का जन्म 1930 में हुआ था।

डॉ. मेघ ने इस शास्त्र में अपने को इतना रचा बसा लिया कि जब भी उन पर कुछ लिखने पढ़ने की बात आती है तो अंग्रेजी का एक मुहावरा अक्सर याद आ जाता है। वह है फ्राग-बेईग यानी मेढ़कों को तौलना। उनके हिंदी में एक महत्वपूर्ण लेखन से जैसे ही पाला पड़ता है तो ऐसा प्रतीत होता है मीमांसाकार का कहीं नृत्तत्वशास्त्र उछलकूद मचा रहा है, कहीं इतिहास (जिसमें बहुत सारी अच्छी बातों के साथ जर्मन दार्शनिक नित्शे के शब्दों में बहुत सारा ‘पागलपन’ भी होता है) आदमी को सीख देकर आगाह कर रहा है, मिथक शरारती बच्चे जैसा व्यवहार कर रहा है और साहित्य कार्टूनिस्ट आर. के. लक्ष्मण के आम-आदमी की तरह शातिर-मुस्कुराहट से देख रहा है। यही नहीं विद्वान और गणित पाठक को तरह-तरह की प्रयोगशालाओं में ले जाते हैं; क्योंकि गणित और भौतिकी का जन्मजात रिश्ता है। और दर्शन सबको नएपन की प्राप्ति के लिए बेचैन रखता है।

और इन सभी ज्ञानानुशासनों से निकलने वाले डॉ. मेघ के लाडले सौंदर्यबोध शास्त्र का रूपवान

ज्ञान-शिखर जब हम सबको छूता है तो यह सचमुच का आभास होता है कि सौंदर्य (या सुन्दरता) क्यों इतना उदात्त महत्वपूर्ण, जीवनदायी और आह्लादक है और डॉ. मेघ ने अपना सारा रचनात्मक जीवन क्यों इसे पढ़ने, समझने, सुनने, पचाने और उस रचे-बसे को लिखने में लगा दिया। पूछा जा सकता है कि इस शताब्दी में ज्ञान के कई अनुशासन जब प्रबंधन की बली चढ़ रहे हैं; तब डॉ. मेघ ने इस महा कठिन विधा को अपनी ज्ञान पिपासा की शांति के लिए क्यों चुना, अच्छे प्रेमी की तरह उसका साथ जीवन भर क्यों नहीं छोड़ा और इस प्रेमिका के प्रति इतने वफादार रहे कि इस विधा को अमरत्व प्रदान करके हिंदी साहित्य में एक अलग अध्याय बना दिया। यह एक ऐसा अध्याय है जिसके बिना साहित्य या दूसरी ललित कलाओं की चर्चा ही नहीं हो सकती।

लेकिन एक बात और .....। इन प्रेमी-प्रेमिकाओं ने हिंदी में वह कर दिखाया जिसकी क्षमता कम लोगों में थी। इस काम के लिए उन्हीं के जैसी हिमालयी प्रतिभा और चुनौती स्वीकार करने की हिमिंग्वे के ‘द ओल्ड मैन एंड द सी’ के नायक जैसी ललक और साहस चाहिए। दुनिया इस ज्ञान-जुड़े तथ्य को जानती है कि ज्ञान की शाखाओं को जिसने महसूस या ‘फील’ कर लिया; वह क्षमतावान व्यक्ति तो अपना झंडा गाड़ ही देगा। भले ही डॉ. मेघ जैसे किसी को उसकी प्रेरणा राहुल सांकृत्यायन से मिले या उनके गुरु डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से। डॉ. मेघ इसे 2018 के साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त करने के मौके पर दिए गए अपने भाषण ‘अकुंठ बयान’ में स्वीकार करते हैं। यह अनायास नहीं है कि उस मौके पर उपस्थित लोगों में बहुतों ने यह

स्वीकार किया था “डॉ. साहब को सम्मानित करके अकादमी स्वयं सम्मानित हुई है।”

भाषण के बाद सारा हॉल उनके सम्मान में खड़ा हो गया था और कई मिनट तक बजती तालियों ने अद्भुत समां बाधा था।

नोबेल पुरस्कार विजेता जर्मन लेखक हरमन हेस, जो बाद में डॉ. मेघ द्वारा बहुप्रशंसित बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए थे; के विश्वप्रसिद्ध उपन्यास ‘सिद्धार्थ’ का नायक जब “मैं महसूस कर सकता हूँ, मैं प्रतीक्षा कर सकता हूँ और मैं उपवास कर सकता हूँ” यानी आई कैन थिंक, आई कैन वेट एंड आई कैन फास्ट, के तीन सूत्रों पर ‘जीवन का अर्थ’ या मीनिंग ऑफ लाइफ समझ लेता है; तो डॉ. मेघ ने भी तो ज्ञान के बाकी अनुशासनों से सौन्दर्यबोध को निकालकर अपनी छब्बीस कालजयी किताबों को शास्त्र का दर्जा दे ही दिया है। हिंदी पर उनके इस ऋण को पीढ़ियाँ समझती रहेंगी। शास्त्र के आसन पर डॉ. मेघ द्वारा बैठाया गया बोध ज्ञान की एक अलग कोटि या कैटेगरी बन गया है और आगे का समय उसे सिद्धांत या थियरी की तरह बरतेगा, यह उम्मीद की जा सकती है, क्योंकि समय अगर काल है तो वह सबसे बड़ा आलोचक (डॉ. मेघ ‘आलोचना’ के लिए ‘आलोचिंतना’ का प्रयोग करते हैं जो ज्यादा सटीक है) भी है और चीजों, अनुशासनों, सभ्यताओं और विमर्शों का काल-निर्धारण भी वही करता है।

कुछ ‘वादी’ विवादियों ने उनकी भाषा पर जो मूर्खतापूर्ण बातें की हैं उसका एक मात्र उत्तर यही है कि उनकी भाषा उनके विषय के अनुरूप है, जो भाषा-विज्ञान का एक अकाट्य सिद्धांत है। आसान सी समझ का आदमी भी इस बात को समझता है कि सांख्य दर्शन पर बात करनी हो तो बात मगही, भोजपुरी में नहीं होगी। डॉ. मेघ की भाषा के स्रोत उन ज्ञानानुशासनों में हैं जिनका पाठ, मनन, चिंतन उन्होंने किया है; यानी संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, अंग्रेजी तथा हिब्रू आदि। इन सबको चूंकि उन्होंने अंग्रेजी में पढ़ा है, और हर अनुशासन की अपनी शब्दावली में पढ़ा-मचाया है; इसलिए इनको हिंदी का संस्कार

देने की चुनौती भी उनके सामने रही है। जाहिर सी बात है कि ज्ञान-राशि का इतना बड़ा कोष किसी हिंदी वाले के पास संस्कृत की शब्दावली की मदद से ही ठहर सकता था और उसका अपना हो सकता था। डॉ. मेघ ने अपनी प्रतिभा और जीनियस से उसे काबू में रखा और उसे हिंदी की प्रकृति देकर नया कर दिया। जिन्हें उनकी भाषा समझ में नहीं आती, या भारी लगती है; उन्हें यह भी बताना चाहिए कि उन्हें क्या समझ में आता है। मेरे जैसे अदना की समझ में तो उनकी भाषा आती है। और हाँ वे डॉ. अश्विनी पाराशर या प्रो. जगमोहन चोपड़ा, या हरमहेन्द्र सिंह बेदी, या भारी-भरकम विद्वान प्रो. शशिभूषण शीतांशु, प्रो. रविभूषण या डॉ. चन्द्र त्रिखा; ये सब तो उनकी भाषा को समझते हैं। दरअसल हिंदी में एक तबका ऐसा रहा है जो अपनी मूर्खता से उपजी कुंठाओं को किसी के भी बारे में नकारात्मक बातें करके पुष्ट करता रहा है। दरअसल ये लिख-लोढ़ा-पढ़-पत्थर’ वाले घपलों के सौदागर जिस विषय का क, ख, ग भी नहीं जानते; उसी पर सबसे ज्यादा लफ्फाजी करके अपने को नंगा करते रहे हैं। इस वॉयरस पर कौन बात करे? – खैर!

एक तो डॉ. मेघ का विषय ऐसा है कि उस पर न के बराबर लोगों का अध्ययन-मनन है और दूसरा डॉ. मेघ ने उसको आक्षितिज इतना विस्तार दे दिया है कि वहाँ तक अधिकतर आदमियों की पहुँच नहीं है। फिर ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की उनके लेखन में जो प्रामाणिक आवाजाही है; उसको समझने के लिए कम से कम उनके कुछ कोणों, संदर्भों और उनके आनुसंगिकों को समझना-गुनना जरूरी है। इसीलिए डॉ. मेघ पर बात करने से पाला छुड़ाने का सबसे बढ़िया तरीका है कि कह दो : समझ में नहीं आवे!! ऐसे अहमकों से मैं एक बार फिर डंके की चोट पर कहता हूँ कि उनकी भाषा, उनका लेखन और उनका सात्विक व्यक्तित्व सब मेरी समझ में तो आते हैं। अपनी सामग्री की जो कष्टसाध्य छँटनी ज्ञान-शाखा के कोने-कोने में जो जाकर उन्होंने की है और उसे साहित्य का जो संदर्भगत आयाम दिया है; वह



अपने आप में अलग इतिहास है। ‘अधातो सौंदर्य जिज्ञासा’ हो या ‘साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक’ या ‘मानव देह और हमारी देह-भाषाएँ’ या फिर ‘विश्वमिथक सरित्सागर’ समेत दर्जनों किताबें; इन सबमें वास्तु कला, नृत्यशास्त्र, मार्क्सवाद दर्शन, इतिहास, गणित, चित्रकला और सबसे बढ़कर साहित्य की जो प्रामाणिक आवाजाही डॉ. मेघ ने अपनी आवश्यकतानुसार संभव की है, वह विलक्षण और भारतीय साहित्य में अकेली है। विश्व साहित्य में भी एक विषय पर इतनी सामग्री एक-आध डॉ. टिलयार्ड जैसे विद्वानों को छोड़कर और किसी के लेखन में नहीं है। एक कथा आप भी सुन लीजिए। तभी मैं आगे बढ़ूँगा: बात रोचक और आह्लादक है। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो. टिलयार्ड के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने ‘हिस्ट्री ऑफ लिबर्टी’ नामक पुस्तक लिखने की योजना चार जिल्दों में बनाई थी। पहले संस्करण के छह हजार पृष्ठ उन्होंने लिखे ही थे कि उनकी मृत्यु हो गई। माना गया कि इन छह हजार पृष्ठों को भी मुकमल किताब माना जा सकता है। किताब तीन-वॉल्यूम में छपी। यूरोपियन कहते हैं और डॉ. हरिवंश राय बच्चन ने इसे अपनी आत्मकथा के एक अंश बसेरे से दूर’ में उद्धृत करते हुए लिखा है: ‘पूरे यूरोप ने डॉ. टिलयार्ड जैसा प्रखर-पढ़ाकू-विद्वान आज तक पैदा नहीं किया।’

मेरा उद्देश्य डॉ. मेघ और प्रो. टिलयार्ड का तुलना करना नहीं है, क्योंकि तुलना वैसे भी मूर्खता है। लेकिन जाने-माने विद्वान प्रो. रविभूषण जब डॉ. मेघ को “महान एकादमिक और अपने विषय के एकमात्र अधिकारी विद्वान” कहते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल क्यों उन्हें सबसे विश्वसनीय-मार्क्सवादी’ कहकर बाकी मार्क्सवादियों पर लानत-सलामत भेजते हैं। पंजाब के प्रो. सेवा सिंह हों, या प्रो. वेदी; ये सभी उनके व्यक्तित्व, या व्यवहार, बोल-चाल आदि में भी उसी सौंदर्य बोध के प्रक्षेपण को देखते हैं जिसकी साधना डॉ. मेघ जीवन भर करते रहे।

जहाँ तक मार्क्सवाद की बात है तो डॉ. मेघ ने मार्क्स के सारे लेखन को अपने भीतर इतना पचाया

है कि मार्क्स हमारे इतिहास, मिथक, दर्शन, साहित्य और बाकी अनुशासनों के बड़े अखाड़े में डॉ. मेघ की पहलवानी का सार्थक - सकारात्मक चश्मदीद गवाह हो गए हैं; बाकी मार्क्सवादियों के धत्कर्मों से तो हम सब परिचित हैं ही।

डॉ. मेघ की सारी सामग्री भरतमुनी, पंडितराज जगन्नाथ, कालिदास, तुलसी, अरस्तू, होमर, सुकरात, होरोडोटस, पिकासो, टॉल्स्टॉय, गोकर्ण समेत दुनिया भर के तरह-तरह के अनुशासनों के ज्ञान-भंडार से तो आती है; लेकिन उनकी पराकाष्ठा वाली प्रतिभा और उनके भीतर के जीनियस की मौलिकता उसे हिंदी की आत्मा और भारतीयता की शाश्वत-सातत्यता के सभ्यता-बोध से ऐसे जोड़ देती है, जैसे वे हमारी विधाओं के सहोदर हैं। इनमें से जो सारांश जैसी टिप्पणियाँ डॉ. मेघ निकालते हैं; वे हमें अज्ञेय, मन्नू भंडारी, रांगेय राघव, मुक्तिबोध, धूमिल, डॉ. नगेन्द्र मैनेजर पाण्डेय, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि के पास लाकर पटक देते हैं और हमारी समझ का दूसरा दरवाजा खोल देते हैं। उनके मिथक-सरित्सागर की महिलाएँ चाहे वे यूनानी मिथकों की हों, या शेक्सपीयर के नाटकों या पिकासो के चित्रों की; सबको जब वे भारतीय या हिंदी की कसौटी पर कसते हैं, तो वे सब हमारी सीता, द्रौपदी, कुंती, यहाँ तक कि मंदोदरी तक से भी कमतर या उन्नीस ही ठहरती हैं। डॉ. मेघ को अगर आज की तथाकथित स्त्री विमर्शकारी – जो सिल्विया प्लांथ या सिमोन द बोऊआ के ‘त्रिभुज’ की चर्चा के बिना कोई बात ही नहीं करती; – अगर ठीक से पढ़ लें तो उनकी आँखें खुल जाएँगी और उनका बहुत सारा त्रिया-चरित्तर चकनाचूर हो जाएगा। हमारा स्त्री-विमर्श जो आज ‘सेक्सुअल इज टेक्सचुअल’ की बेहयायी तक चला गया है; उस पर अंकुश या ठीक-ठाक विमर्श के लिए कुछ साफ-सुथरी चित्तवाली महिलाओं को डॉ. मेघ को पढ़ना चाहिए; खासतौर से उनकी पुस्तक ‘मानवदेह और हमारी देह-भाषाएँ’। उनके मित्र डॉ. चन्द्र त्रिखा ठीक ही कहते हैं, “उन पर लिखने पढ़ने के लिए उनकी जैसी प्रतिभा होनी चाहिए”। उन पर लिखने-पढ़ने वालों में सबका मानना है कि उन्होंने हिंदी-

आलोचिंतना में लेखन का एक नया अनुशासन प्रतिपादित किया।

यह प्रश्न तो उठता ही रहेगा कि आखिर सौंदर्यबोध ‘बध लायक नहीं पुरुष अनूपा’ – में है या कीट्स के ‘बिऊटी लाइज नॉट इन द थिंग्स, बट इन द आईज आफ द बिहोल्डर टू’ यानी सुंदरता सिर्फ चीजों में नहीं होती, देखने वाले की आँख में भी होती है। वह ‘हर क्षण नया’ का एक रूप भी है। वह ‘मोहे न नारी/नारी के रूपा’ में भी है। या सौंदर्य इन सबसे इतर भी कोई ऐसी सत्ता, परिघटना या अनुभव है जो सिर्फ महसूस या फील किया जाता है। डॉ. मेघ सौंदर्य को वेद-सम्मत-ज्ञानसंवेदना, दर्शन की मीमांसक तथ्यता, इतिहास के चरित्रों की विशेषता, चित्रकला के भीतर की हँसती-सोचती अमूर्तता, अजंता एलोरा की मूर्तियों की देह-दृष्टि के आकर्षण में तृप्ति की मुक्ति आदि के रूप में देखते हैं। अपने विषय की डिटेलिंग या तरतीब वारी में उनका जवाब नहीं है; इसलिए अपने ऊपर की बातों के समर्थन में डॉ. मेघ की किताबों के उद्धरण देकर अपनी बात साफ करता हूँ:

मार्क्स के ‘श्रम’ को कला के सौंदर्य से जोड़ते हुए डॉ. मेघ ‘साक्षी हैं सौंदर्य प्राश्निक’ में लिखते हैं: “मानवीय श्रम के कई रूप हैं। निर्बोध या मुक्त-श्रम में उत्पाद की भौतिक उपयोगिता है। परकीयकृत श्रम में उत्पाद की भौतिक उपयोगिता कायम रहती है। लेकिन उत्पाद गुमशुदा हो जाता है। सृजनात्मक श्रम प्रमेय को उत्पाद के बजाय एक कृति बना देता है, उसे मानवीकृत कर देता है। यहाँ रचयिता की अस्मिता तथा आकुंडलन है। अतएव मुक्त श्रम ही गुणात्मक छलांग लगाकर सृजनात्मक श्रम में रूपांतरित हो जाता है। अतः श्रम और कला दोनों की जड़ें मनुष्य की सृजनात्मक क्षमता में फैली है। ये दोनों ही ऐतिहासिक तथा सामाजिक ढंग से अनुकूलित होते हैं। अतः श्रम का चरित्र जहाँ-जहाँ रचनात्मक होगा वहाँ-वहाँ वह जरूर कला के नजदीक होगा। यह है मार्क्स के श्रम को कला की रचनात्मकता से जोड़कर लोक-कल्याण में ज्ञान की विधाओं को मिला

देने का वह बोध जो ‘सबसे विश्वसनीय मार्क्सवादी’ डॉ. मेघ की मेधा का मौलिक उत्पाद है। श्रम और कला को विरोधी मानने वाले भारतीय आचार्यों – 11वीं शताब्दी के अभिनवगुप्त और सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के पंडितराज जगन्नाथ को खारिज करते हुए डॉ. मेघ इसी कोटि में यूरोप के कांट और हीगेल को भी रखते हैं। उनका मानना है कि इन लोगों ने श्रम और कला के सामाजिक-संदर्भों को ठीक से नहीं समझा और अपनी व्याख्याओं में गहराई में नहीं गए।

ऊपर विभिन्न ज्ञानानुशासनों से अपने विषय की सामग्री सार्थक ढंग से जुटाने वाले डॉ. मेघ की इन अनुशासनों में अद्भुत अवगाहन की जो बात मैंने पहले की है; उसके प्रमाण स्वरूप हम देखते हैं कि वे दर्शन, इतिहास, गणित, भाषा आदि का एक ऐसा बहुवचनात्मक समूह खड़ा करते हैं, जिसमें इन सबके संबंध दूध में चीनी की तरह घुलकर हमें उनकी विश्लेषण प्रतिभा का लोहा मनवा देते हैं। देखिए- “विश्व की द्वैतवादी फाड़ ही बूज्वा समाज की युग चेतना है। जीवन के लिए अंतर्ज्ञान की पद्धति तथा भूत के लिए विश्लेषण की पद्धति का पार्थक्य हेनरी वर्गसां (1859-1941) ने किया। इसी कड़ी में जीवन रूप संसार तथा पदार्थ रूप-जगत की धारणाएं आईं। आगे ये क्रमशः स्पेंगलर (1880-1936) द्वारा इतिहास-रूप संसार तथा प्रकृति रूप-संसार में विकसित हुईं। इतिहास रूप संसार में प्रारब्ध का विचार तथा प्रकृति रूप संसार में कारणता का विचार धुरी बने। प्रारब्ध के लिए साम्यानुमान यानी एनॉलाजी का तथा कारणता के लिए गणितीय नियमों की तकनीक स्वीकार की गई। इन बातों से उनका निष्कर्ष है, “अर्थात् ज्ञान की पद्धति के द्वारा इतिहास में जीवन का स्पदन छूना कठिन हो गया।” विज्ञान की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं, “विज्ञान एक ऐसा दृष्टिकोण रहा है जिसमें सत्य का गुण उसकी पावनता में नहीं तर्कश्रयता में है। यही घटित को अलौकिक से मुक्त करता है।” विज्ञान और गणित की ऐसी व्याख्या सिर्फ उन्हीं के जैसे प्रतिभाशाली अज्ञेय में है जिनके उपन्यास ‘नदी के द्वीप’ का एक

पात्र दूसरे पात्र से कहता है “हम गुणनफल के अन्वेषी हैं, आप भागफल खोज रहे हैं।” फर्क साफ है।

ऊपर ज्ञानानुशासनों की जो बात मैंने विभिन्न संदर्भों में अपनी टिप्पणियों की प्रामाणिकता को न्याय देने के लिए की है, उसी के सारांश स्वरूप भी यह कहा जा सकता है कि डॉ. मेघ ने इन अनुशासनों में से छान-छानकर सौंदर्यबोध को बटोरा है और उसे शास्त्र की गरिमा दे दी है। वह ज्ञान विद्या के जिस किसी कोने में डॉ. मेघ को नजर आया है, उसे उन्होंने दुलराते हुए अपने पास नन्हें विलायती खरगोशों की तरह रख लिया है; और जब वह उनके ज्ञानानुभव की आंच में पक गया है, तब उसे हिंदी की प्रवृत्ति के अनुरूप ढालकर साहित्य मात्र की थाती बना दिया है। डॉ. मेघ को पढ़ते समय मस्तिष्क की नसें यूँ ही नहीं तड़तड़ा जाती हैं; बल्कि उसकी वजह यह है कि उन्होंने एक पंक्ति लिखने के लिए कम से कम दस ऐसी किताब अवश्य पढ़ी हैं जिनके लेखक अरस्तू, प्लेटो, भरतमुनि आदि से लेकर आज तक के नोम चोम्स्की जैसे भारी भरकम लोग हैं। डॉ. मेघ ने अपने लिए जिस विषय का चुनाव किया उस पर हिंदी के बहुत ही कम लोगों का ध्यान गया। इसकी वजह एक तो यह कि उस विषय की समझ ही कम लोगों की थी; और दूसरी यह कि उसे पकड़ने-बरतने की क्षमता भी बहुत कम लोगों में थी। ‘वादी’ सबों का चरित्र ही पिछले 100 वर्षों में यह रहा है कि जो विषय उसके पार्टनरों को पॉलिटिक्स के माफिक नहीं पड़ता, उसे या तो गरियाया जाता है, या फिर एकदम चुप्पी साध ली जाती है; या इन दोनों गंदगियों से बात नहीं बनती तो अपनी नासमझी और अज्ञानता को छुपाने के लिए कुछ गोएबलीय झूठ आविष्कृत कर लिए जाते हैं। दुनिया जानती है कि हिटलर का बदनाम प्रचारमंत्री गोएबल कहा करता था कि झूठ को इतना दुहराओ कि वह सच हो जाए। डॉ. मेघ के संदर्भ में भी इस तरह के झूठ प्रचारित किए गए हैं। खासतौर से उनकी भाषा के बारे में जिस पर मैं अपनी बात पहले ही कर चुका

हूँ। आइए अपनी भाषा के बारे में डॉ. मेघ से ही सुना जाए। वे लिखते हैं, “आज हमारे लैक्सीकोन में प्लेटो की संगीत की भाषा, पाइथागोरस की गणित की भाषा, भरतमुनि के अभिनय की भाषा, उदयशंकर की नृत्य की भाषा, आइंस्टाइन की बीजगणितीय भाषा, मार्क्स की भौतिकवादी द्वंद्वन्याय की भाषा, पिकासो की खंडित दिक् भाषा इत्यादि हैं। इनमें से कई निर्भाषाएँ इत्यादि हैं। यानी शब्दार्थों से निर्मुक्त। ये भाषाएँ संकेत तथा चिह्न, बिंब तथा मुद्रा, वर्ण तथा अंक, ध्वनि तथा अक्षर, अभिप्राय तथा प्रतीक, पारिभाषिक तथा अवधारणा से मढ़ी-जड़ी हैं। ये मानो संपूर्ण मानवता की वैश्विक या यूनिवर्सल भाषाएँ हैं। इस वजह से हमने जिस भाषा-निर्माण की लड़ाई छेड़ी है, उसमें साहित्य, संस्कृति तथा समाज विज्ञान का सामंजस्य है। हमारी भाषा में हर प्रकार का समाहार है। हमारी भाषा में हर ऐसे सूत्र का अभिषेक होता रहा है।” ध्यातव्य है कि डॉ. मेघ के सारे लेखन में ‘मैं’ की जगह ‘हम’ और इसके विभिन्न व्याकरणिक रूपों का प्रयोग है। भाषा के बारे में वे जो कुछ कह रहे हैं उसका सारांश अहमक-आदमियों के लिए यही तो है न कि उनकी भाषा ज्ञान के हर स्रोत से आई है और उसमें से उन्होंने अपने विषय के अनुकूल भाषा को अपना व्यक्तित्व देकर उदयशंकर जैसे नर्तक और अरस्तू जैसे तत्त्वचिंतक को अपना विषय बनाकर अमर कर दिया है। यह अनायास नहीं है कि इस भाषा और ज्ञान-राशि की पकड़ के लिए जिस ‘जीनियस’ व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है, वह कम लोगों में है और इसीलिए उनकी भाषा पर मस्तिष्कहीन और हृदयहीन टिप्पणियाँ कर दी जाती हैं। लेकिन, डॉ. मेघ इन अहमकों की क्षमता के बाहर के व्यक्ति हैं और वे मस्तिष्क-संपन्न और हृदय-संपन्न दोनों हैं। जाहिर सी बात है कि वे अपनी-क्षमता को पहचानने की कोशिश करने वाले से बड़े गृह-कार्य की उम्मीद करेंगे। कई लोग तो पहचानने के पहले निपटाने का सूचीपत्र लेकर चलते हैं। खैर...

स्मरणीय है कि आलोचिन्तना या प्रचलित रूप में आलोचना और आलोचिन्तक वही सफल माने जाते हैं जो साहित्य के अलावा एक दो अतिरिक्त ज्ञानानुशासनों और एक दो भाषाओं में भी दखल रखते हैं। ज्ञान की हर विधा की एक दूसरी में आवाजाही तो एकदम स्वाभाविक मामला है और ज्ञान की एक विधा का उपयोग अगर उपयोग करने वाला डॉ. मेघ या रामविलास शर्मा या विनोद शाही या नित्यानन्द तिवारी जैसा कोई समर्थ हस्ताक्षर तो वहाँ कमाल होना स्वाभाविक है। हमने हिंदी आलोचना में डॉ. शर्मा को इतिहास और अर्थशास्त्र, या डॉ. तिवारी को इतिहास और उसके मध्यकाल का साहित्य और प्रो. शाही को उपनिवेशवाद का सार्थक उपयोग साहित्य में करते हुए देखा है। इसी कड़ी में जब डॉ. मेघ पर नजर जाती है तो दंग इसलिए भी रह जाना पड़ता है कि उनके लेखन में ज्ञानानुशासन अपने समय, उसके कालखंडों और उनके विषय सौंदर्यबोध शास्त्र के अनुकूल अपना रोल अदा करते हैं और डॉ. मेघ उनसे उतना ही लेते हैं जितने से उनके विषय की मदद हो जाय, या उनका काम चल जाय। निर्मल वर्मा ठीक ही कहते हैं कि ज्ञानानुशासन को लेखक पर हॉवी नहीं होना चाहिए, न उसके साहित्य पर हॉवी होना चाहिए। उदाहरण के लिए दर्शन या इतिहास साहित्य में आए तो आए, लेकिन साहित्य अपना मौलिक रूप न छोड़े उसे इन अनुशासनों को पचाकर भी साहित्य ही बने रहना चाहिए। लेकिन??

लेकिन, यह काम इतना आसान नहीं है। इसके लिए साहित्य और उस ज्ञानानुशासन का भरपूर ज्ञान लेखक को होना चाहिए तथा उसका संतुलन अपने विषय पर बना रहना चाहिए। डॉ. मेघ की विशेषता यह भी है कि उन्होंने जो असंख्य ज्ञान-स्रोतों का उपयोग अपने लेख में किया है; उन सब में से उन्होंने सौंदर्य को छान लिया है और उसे ऐसा कलेवर या शरीर दे दिया है कि उसे एक अलग अनुशासन की तरह भी बरतने की वकालत की जुर्रत मेरे जैसा अदना आदमी भी कर रहा है। नए सिद्धांत इस तरह भी तो आते हैं। चर्चित अनुशासन तो डॉ.

मेघ के यहाँ है ही और विधाएँ बदल भी रही हैं। उनमें चित्रकला, कुछ पुस्तकें, नृत्य, नर्तक, चिड़ियों-पक्षियों की बोली, लोगों की पोशाकें, क्रियाएँ आदि भी सौंदर्य के बोध के रास्ते 'शास्त्र' तक की यात्रा कर रही हैं और उन्हें हिंदी का कालपुरुष बना रही हैं। उनकी पुस्तकों में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। आइए देखा जाय। विज्ञान की बात करते समय जब डॉ. मेघ इसे दर्शन, तर्कशास्त्र आदि से गूँथते हैं तो सिद्धांतों की एक नई तर्क-पद्धति निकलने लगती है। देखें, "विज्ञान एक ऐसा दृष्टिकोण रहा है जिसमें सत्य का गुण उसकी पावनता में नहीं, तर्कश्रयता में है। यही घटित को अलौकिक से मुक्त करता है। जो विधाता को भी स्वयं से प्रतिस्थापित करता है। विज्ञान स्वयंसिद्ध प्रस्तावनाओं के बजाय साधारणीकृत अवधारणाओं को ज्यादा कीमती सिद्ध करता है।"

जाहिर सी बात है कि बीएससी तक विज्ञान के उदीयमान छात्र रहे डॉ. मेघ ही विज्ञान की ऐसी व्याख्या कर सकते थे और उसे तर्कशास्त्र का ऐसा साथी बना सकते थे। इसी अंदाज में वे गणित की चर्चा जब करते हैं तो रेखागणित का एक नया कोण हमारे सामने आता है। वे लिखते हैं, "कला की संरचना में भी तत्कालीन ग्रीक समाज के जटिल-यथार्थ की दिप्ती है। त्रासदी की संरचना में समाज रंगमंच रूप हो गया है या रंगमंच समाज रूप। अतः भीषण इतिहास और आतंकपूर्ण यथार्थता की व्यास रेखा एक हो गई है।" इस उद्धरण में 'व्यास रेखा' शब्द का प्रयोग एक अद्भुत ज्ञान-पिपासा जगाने वाला है। व्यास यानी रेखागणित का डॉयमीटर किसी भी वृत्त की संरचना यानी छाती के बीच से गुजरने वाली वह रेखा है जो वृत्त को विभाजित भी करती है; यानी कहा जा सकता है कि वह वृत्त के अस्तित्व के रक्षक की भूमिका में है; और वृत्त शून्य तो है ही जिसे धर्म से जोड़कर शिकागो में हमारे संत-दार्शनिक विवेकानंद सात दिनों तक अपनी प्रतिभा से संसार को हतप्रभ किए रहे। व्यास रेखा को एक पुल की तरह भी डी-कंस्ट्रक्ट किया जा सकता है जो ज्ञानानुशासनों, सभ्यताओं, भूगोलों, राजनीतिक-सामाजिक चिंतन आदि सबको जोड़े

रखकर पंचायत के सरपंच की भूमिका में होता है; यानी वह सबका है और सब उसके हैं और उसके हाथ में सबकी नकेल है। इस एक शब्द से भी डॉ. मेघ की मेधा के वितान का अंदाजा लगता है।

इतिहास के बिना तो वैसे भी सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र में कोई भी बात प्रामाणिक होती ही नहीं; लेकिन इतिहास की उठापटक, मारकाट, वर्चस्व-निरीहता आदि की धक्कामुक्की में सौंदर्य खोज लेना किसी डॉ. मेघ का ही काम है; और क्षमता भी। देह, आत्मा, चित्र, यौनता, रूप आदि तो खैर सौंदर्य के श्रोत हैं ही; लेकिन धर्म, अध्यात्म और इतिहास की त्रयी से 'शृंगार' को खींच कर साहित्य बनाना कोई डॉ. मेघ से सीखे: "अलबत्ता गुप्त सम्राटों (ईस्वी पूर्व 320-600 ईस्वी) के स्वर्ण युग में जब सम्राट चन्द्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ और दिग्विजय करके परम भागवत होने की घोषणा की, तब वैष्णव बोध से शृंगार चला और सौंदर्यदृष्टि में सूक्ष्म एवं अलंकरण मूलक परिष्कार हुआ।"

मतलब यह कि अध्यात्म और बाकी सब कुछ भी उस बोध से अलग कुछ नहीं है जिससे सौंदर्य का जन्म होता है और राजा तथा रंक सब उसकी धारा में स्नान करते हैं। इसे सौंदर्य का विश्वव्यापी रूप भी कहा जा सकता है और इसी संसार-व्यापी रूप की परतें तब लगातार खुलती चली जाती हैं जब हमारा पाला डॉ. मेघ द्वारा व्यवहार में लाए गए शब्दों से पड़ता है। यह शब्द उनके यहाँ विभिन्न ज्ञानानुशासनों से आए हैं और हमलोग जानते हैं कि ज्ञान के हर भंडार की अपनी विशिष्ट शब्दावली होती है। डॉ. मेघ ने शब्द सभी अनुशासनों से अंग्रेजी, ग्रीक, जर्मन, हिब्रू, फ्रेंच आदि से अंग्रेजी के माध्यम से लिए हैं और उनके अपने द्वारा किए अनुवाद के साथ सच्चाई बरतते हुए उन मूल अंग्रेजी शब्दों को भी कोष्ठक में रख दिया है। इस संदर्भ में कुछ नामी

नाम-वर लोग बहुत बदनाम रहे हैं; लेकिन डॉ. मेघ की यह विशेषता भी है कि वे अंग्रेजी के मूल शब्दों को ज्यों का त्यों रखते रहे हैं, ताकि शब्दों यानी व्याकरण के शब्दविचार या इटीमॉलोजी से बनने वाले वाक्य अपनी अंतरात्मा की ईमानदारी से पाठक के मस्तिष्क में प्रवेश करें – और वाक्य विचार यानी सिनटैक्स कमजोर न पड़े। उनकी सभी किताबों में इसकी भरमार है जिसके कारण पाठक गुमराह नहीं होता। उनके शब्द चयन पर एक पूरा लेख हो सकता है। मैं यहाँ कुछ उदाहरण दे रहा हूँ:

उनके यहाँ दिक् 'स्पेस' है। अनुष्ठान 'राईट' है। काल 'टाइम' तो है ही, कर्मकांड 'रिचुअल' बनकर आया है। संरचना अगर उनके यहाँ 'स्ट्रक्चर' है तो नीति 'एथिक्स' है, और साहित्य का रूपक 'सुपर-नेचुरल' की दार्शनिक शब्दावली में अवतरित हुआ है, तो सौंदर्य बोधानुभव 'एस्थेटिक-एक्सपीरियेंस' बनकर हमारा ज्ञानवर्धन कर रहा है। उनकी क्रियाशीलता अगर 'एक्टीविटी' से निकलती है तो रूप का स्रोत 'फार्म' में है। श्रम 'लेबर' है तो परकीयकृत 'एलीयनेटोड' होकर उपस्थित है।

उनकी छब्बीस किताबों में ज्ञान के सारे शब्दकोश इस तरह खंगाले-परिष्कृत किए गए हैं कि दंग हो जाना स्वभाविक है; लेकिन उनकी विशेषता ही यही है कि उन्होंने इन शब्दों को हिंदी की पहचान, उसका कलेवर, उसकी आत्मा और उसके वाक्य विन्यास के साथ छोटे-छोटे वाक्यों में ऐसा पिरोया है कि वे हिंदी के अनुशासित सिपाही हो गए हैं। सारांशतः डॉ. मेघ हिंदी की एक ऐसी प्रतिभाशाली उपस्थिति थे जो अकेले, मौलिक और अपने विषय के मालिक थे यानी 'मास्टर इन टू सेन्स ऑफ द टर्म' जैसा-ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज में अपने दिग्गजों के बारे में कहा जाता है। इसे मैंने आठवें दशक के अपने विद्यार्थी जीवन में ऑक्सफोर्ड में महसूस किया था।

**संपर्क :** महावीर गेस्ट हाउस, 31ए, के.सी.दे. रोड, दार्जीलिंग, सिलीगुड़ी, मो. 9775938214



## आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की सामाजिक, सांस्कृतिक, चेतना और कबीर

-डॉ. महात्मा श्रीनाथ पाण्डेय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का स्थान एक मौलिक निबंधकार एवं उत्कृष्ट समालोचक के रूप में आधुनिक हिंदी साहित्य में अप्रतिम है। निबंध की दिशा में उनका योगदान अद्भुत है। हिंदी की अनेक उभरती विधाओं जैसे-इतिहास, निबंध, संस्मरण, पत्र-लेखन, आलोचना, उपन्यास आदि विषय कभी उनसे वंचित नहीं रहे, यहाँ तक कि उन्होंने उनमें अपनी मौलिक विचारधारा द्वारा प्राण संचार भी किया। अपनी भाषा को उन्होंने सशक्त रूप प्रदान किया। जिसमें भारतीय चिंतनधारा प्रवाहित ही नहीं, प्रतिनिधित्व भी करती चलती है। उन्होंने एक ओर साहित्य में युगानुरूप मानवतावादी भावधारा को अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धारा से जोड़ने का अथक प्रयास किया। नूतन विधाओं में नई-नई संभावनाओं को भरने की सफलता भी प्राप्त की, निबंध परंपरा में भी नए आयाम प्रस्तुत किए हैं। आचार्य हजारी प्रसाद सरल, उदार एवं विनोदप्रिय व्यक्ति थे। हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी, बांग्ला इत्यादि भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की भूमिका की रचना कर साहित्य का गौरव भी हासिल किया था। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और श्यामसुंदर दास की आलोचना पद्धति पर चलते हुए हिंदी आलोचना के नए आयाम प्रस्तुत किए, जिनमें सत्य का अन्वेषण और मूल्यों का अन्वेषण हो।

इन्होंने आलोचना में समग्र जीवन दृष्टि पर बल दिया। क्योंकि समग्र जीवन दृष्टि ही साहित्य एवं जीवन को समझने और उसे परखने की क्षमता रखती है। इस समग्र दृष्टि हेतु द्विवेदी जी ने आधुनिक समालोचना में पुराने अनुभवों से एक सूत्रता पर बल दिया है, साथ ही उनका विचार यह भी रहा कि साहित्य में परंपरा वहीं तक स्वीकार्य है जहाँ तक वह रूढ़ि नहीं बनती। इस प्रकार उन्होंने परंपरा और

आधुनिकता के बीच समन्वय कर एक नई दिशा प्रदान की। उनके अनुसार मरे हुए बच्चे को गोद में दबाए रखने वाली बंदरिया कभी भी मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। द्विवेदी जी के लगभग सारे निबंध ललित शैली में लिखे गए हैं, जिनमें संस्कृति की पुष्टि, सरसता, गहनता अनुभूति की संवेदना इत्यादि के दर्शन होते हैं। द्विवेदी जी ने अपने जीवन के गतिशील तत्वों को पहचानकर भारतीय सांस्कृतिक यात्रा शुरू की। उन्होंने न केवल इतिहास, आलोचना एवं निबंध कला में मौलिकता के अनुपम दर्शन कराए, अपितु उन्होंने उपन्यास क्षेत्र को भी अछूता नहीं छोड़ा। द्विवेदी जी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' लिखकर संस्कृत वांग्मय से हिंदी कथा साहित्य को प्रामाणिक बनाया। इनका भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था, विषयानुकूल भाषा उनकी विशेषता थी।

संस्कृत भाषा के ज्ञाता होते हुए भी वे आवश्यकता-नुसार देशी-विदेशी शब्दों के प्रयोग से नहीं चूके। उन्होंने शब्दों के मर्म को पहचानकर मनचाहा अर्थ भी संप्रेषित किया। इस तरह से वे हिंदी साहित्य के ऐसे प्राण हैं जिनमें सर्जन शक्ति की नूतनता, चिंतन की गंभीरता तथा पुरातन और नूतनता का गहरा समन्वय है।

यह आकस्मिक नहीं है कि द्विवेदी जी ने अन्य आलोचकों की तरह कविता क्या है? अथवा साहित्य क्या है? जैसा आलेख कभी नहीं लिखा। साहित्य यदि तैयार माल नहीं है तो साहित्य की कोई तैयार परिभाषा भी नहीं हो सकती। साहित्य इस दृष्टि से एक ऐतिहासिक अवधारणा है, इसलिए साहित्य के बारे में यह कहा गया है कि वह इतिहास के भीतर ही पलता-बढ़ता है। द्विवेदी जी प्रसंग के अनुकूल ऐसे-ऐसे उद्धरण चुनकर लाते हैं कि किसी अतिरिक्त

युक्ति की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इस कला क्षेत्र के वे श्रेष्ठ एवं अप्रतिम आचार्य माने जाते हैं। न जाने कौन-कौन से संदर्भों का छंद उठाकर लाते हैं और उसे ऐसे नए संदर्भों में रखते हैं कि संदेह के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती है। इस प्रकार द्विवेदी जी नए-नए जीवन संदर्भों से कविता का अर्थ विस्तार करते चले जाते हैं। “अब कोई इस बात के लिए उन्हें आलोचक मानने से इनकार करे तो अपनी बला से! आलोचना उनके लिए विश्लेषण का पर्याय नहीं है, परोपजीवी आलोचना के लिए हो तो हो।”

हजारीप्रसाद द्विवेदी के समय भारतीय समाज, संस्कृति, साहित्य और इतिहास के सवाल को लेकर कई तरह की अवधारणाएँ सक्रिय थीं। खासकर भारतीय इतिहास और संस्कृति के सवाल पर। ऐसा कुछ तो पूर्व और पश्चिम के विद्वानों के सामने तथ्यों के पूरी तरह स्पष्ट नहीं रहने के अनुमान पर जरूरत से ज्यादा आश्रित हो जाने के कारणों से था, तो कुछ औपनिवेशिक हितबोध एवं अहितबोध से बनी इतिहास दृष्टि के कारणों से था। कहा जा सकता है कि वह समय जटिलताओं और उलझावों को समझने और सुलझाने की चुनौतियों से भरा हुआ था। यही चुनौती द्विवेदी जी के भी सामने थी। आज भी वे चुनौतियाँ वर्तमान में हैं, हालाँकि इनके बाह्य स्वरूप में बहुत परिवर्तन भी आ गया है। फिर भी इनकी अंतर्वस्तु में कोई बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। यह जरूर है कि हाल के विकास एवं नए तथ्यों और परिस्थितियों के सामने आने से चुनौतियों से जूझने के नए तौर तरीके एवं बौद्धिक चर्चा अनिवार्य बन गए हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचनात्मक विवेक को समझने की कोशिश के लिए चुनौती और चर्चा के बदले हुए परिप्रेक्ष्य के इस संदर्भ को ध्यान में रखना आवश्यक है।

द्विवेदी जी भारतीय विद्या के भी महान ज्ञाता थे। प्राचीन भारत के ज्ञान शास्त्र की लगभग प्रत्येक शाखा से उनका न सिर्फ गहरा परिचय था, अपितु गहरा लगाव भी था। द्विवेदी जी ने अपने समय में परंपरा के परिष्कार का बीड़ा उठाया था। संस्कृति के सूत्रों में उलझावों का होना स्वाभाविक है, जो संस्कृत

जितनी ही अधिक पुरानी होती है, उसके सूत्रों में उलझाव भी उतने ही अधिक होते हैं। कहना न होगा कि भारतीय संस्कृत काफी पुरानी है, और स्वभावतः इसमें उलझाव भी बहुत हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता में इसकी बेहतर अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय संस्कृति पुरानी है, इतना ही नहीं विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं के अंतर्विन्यासों के अंतर्मिलन से ऐतिहासिक विकास के क्रम में इसका रचाव भी संभव हुआ है। कहना न होगा कि राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिक्रियाएँ न सिर्फ संगामी, बल्कि अंतर्संबंधित भी होती हैं। राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिक्रियाओं का वाद, विवाद और संवाद ही इतिहास का भूगोल बनाते रहते हैं। भारतीय संस्कृति की स्पर्श कातरता में तब की तुलना में कोई कमी नहीं आई, बल्कि उसमें वृद्धि ही हुई है। इसलिए भारतीयता की खोज आज से पहले कम जरूरी नहीं है, और शायद इसीलिए सोचने-विचारने वाले लोग कहते हैं कि- “भारतीयता की खोज आज के संदर्भ में दो दृष्टियों से आवश्यक है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश में एक सांस्कृतिक अराजकता व्याप्त हो गई है। स्वदेश और स्वदेशी की भावनाएँ अशक्त होती जा रही हैं। हम बेझिझक पश्चिम का अनुकरण कर अपनी अस्मिता को खोते जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति एक छोटे परंतु प्रभावशाली तबके तक ही सीमित है, पर आज उसका भी फैलाव हो रहा है। संस्कृति आज की दुनिया में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में उभर रही है, न्यस्त स्वार्थ जिसका उपयोग खुलकर अपने उद्देश्यों के लिए कर रहे हैं। उन पर रोक लग सकती है, यदि हम निष्ठा और प्रतिबद्धता से भारतीयता की तलाश करें।” द्विवेदी जी तो आज खुद हमारी परंपरा हैं, ऐसे में उनके आलोचनात्मक विवेक की परीक्षा लेना और इतिहास के अनसुलझे सवाल के प्रति समझदार रवैया विकसित करना भी आवश्यक है। द्विवेदी जी के पांडित्य का झुकाव किस तरफ था? एक तरफ तो वे मानते हैं कि अपनी भूसांस्कृतिक परिस्थितियों के चलते मध्यदेश वैदिक युग से लेकर आज तक अतिशय रक्षणशील और पवित्राभिमानि रहा है। भिन्न विचारों और संस्कृतियों के निरंतर

संघर्ष के रक्षणशीलता ने इसकी प्रकृति में, विचार में निरंतर परिवर्तित रहने के बावजूद अपने प्राचीन आचारों से चिपटे रहने को बद्धमूल कर दिया। दूसरी तरफ वे कहते हैं कि ईसा की एक सहस्राब्दी बाद विचार में ही नहीं आचार में भी और भाषा के क्षेत्र में भी लोक की ओर उसका झुकाव स्वाभाविक था। ईसा की 20वीं सदी और आजादी के बाद पांडित्य की यह मनोदशा है तो उसके आधार पर हजार वर्ष पहले की मनोदशा का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। द्विवेदी जी कहते हैं कि—“वस्तुतः परवर्ती काल में समस्त भारतीय चिंतन और आचरण के निर्णायक के रूप में गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों को ही प्रमाण माना गया है। इन्हीं को प्रस्थानत्रयी कहते हैं। दर्शन के क्षेत्र में अर्थात् जीव और ब्रह्म का स्वरूप, उनका संबंध माया या ब्रह्मशक्ति के व्यापार आदि बातों में मतभेद बराबर बने रहे। परंतु संपूर्ण जीवन के प्रति जो व्यापक दृष्टि है वह बराबर एक सी बनी रही। बौद्ध और जैन परंपरा के अभ्युदय से भी उस जीवन दृष्टि में कोई खास फर्क नहीं पड़ा। केवल दीर्घ अनुभव और तदनुकूल परिष्कृत धर्माचार के इस पक्ष या उस पक्ष पर बल देने के कारण इनके स्वरूप में कुछ अंतर दिखाई देता है।”

हजारी प्रसाद द्विवेदी के सामने इस्लाम के आगमन के सांस्कृतिक प्रभाव को न्यून और अंततः अदृश्य साबित कर देने की चुनौती थी, इसके लिए सांस्कृतिक बहिष्करण की सामाजिक प्रक्रिया की वास्तविकता को सांस्कृतिक नत्थीकरण की काल्पनिक प्रक्रिया से आच्छादित करना जरूरी था। द्विवेदी जी इसी रास्ते का ही अनुसरण करते हैं। ब्राह्मण यदि संस्कृत के अलावा किसी अन्य भाषा का आश्रय लेता है तो वह अपने को छोटा क्यों समझेगा? हिंदी साहित्य का इतिहास और आलोचना प्रारंभ से ही धर्म और भक्ति के अंतर को नजरंदाज करती आई है, एवं दोनों को एक दूसरे का पर्याय मानकर विवेचन करती आई है। इस आधार पर होने वाले विवेचन में स्वाभाविक रूप से असंगतियों के लिए अवकाश रह जाता है। इतिहास गवाह है कि प्रेमतत्त्व के कारण समस्याओं के संघात की आशंकाएँ, सभ्यताओं के

अंतर्मिलन की संभावनाओं में बदलती रही है। लेकिन, यह प्रेमतत्त्व भी इतना सहज नहीं है। सभ्यता के विकास में आने वाले परिवर्तनों के संदर्भों को भी इस समझ से खोला जा सकता है। कबीरदास का अध्ययन भी इसी दृष्टि से किया जाना चाहिए।

कबीरदास भक्त थे, उनकी भक्ति के तात्त्विक स्वरूप पर भी काफी चर्चा हुई है, उनके रहस्यबोध पर भी चर्चा हुई है। जरूरत है उनकी भक्ति चेतना को उनके सामाजिक प्रेम के प्रसंग में व्याख्यायित करने की। प्रेम अभिन्नता की ओर बढ़ने का मौलिक आधार है। भिन्नता अंधकार है, प्रेम प्रकाश है। प्रेम के प्रभाव में भिन्नता वैसे ही गायब हो जाती है जैसे प्रकाश के प्रभाव में अंधकार गायब हो जाता है।

“जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।

सब अधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहिं।”

प्रेम गली इतनी सँकरी होती है कि इसमें दो भिन्न लोगों के लिए जगह ही नहीं होती है। धर्म और ईश्वर की अभिन्नता का विचार असल में मनुष्य की अभिन्नता विचार होने के कारण ही सार्थक होता है। मनुष्य का मनुष्य से ही नहीं समस्त सचराचर से मनुष्य की अभिन्नता का विचार ही प्रेम है, इसलिए प्रेम में ‘वे’ और ‘हम’ की नहीं सिर्फ हम की ही गुंजाइश बनती है। प्रेम की सामाजिक भिन्नताओं को अभिन्नताओं में बदलने का सबसे बड़ा आधार है। कबीरदास के साहित्य को प्रेम के इस संदर्भ में समझने की कोशिश की जा सकती है। कबीर की पीड़ा यह है कि अभिन्नता हासिल करने के रास्ते में सबसे बड़ी स्कावट उलझाने वाले लोगों और विचारों की तरफ से खड़ी की जाती है, ऐसे लोगों से अभिन्नता कैसे हो सकती है? कबीर की भक्ति ने तो धर्म का स्वरूप ही बदल दिया था।

धर्म को सामंतवाद से प्राणरस मिलता आया है, लेकिन भक्ति तो सामंती मूल्य और मिजाज से टकराकर ही विकसित हुई थी। धर्म और भक्ति में टकराव का यह ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आधार, परिप्रेक्ष्य और महत्व है। मनुष्य के प्रति प्रेम भक्ति के मूल में है। भक्ति के मूल में धार्मिक शोषण, जो सामाजिक और आर्थिक

शोषण का आधार प्रदान करता है, का जबर्दस्त प्रतिरोध है।

कबीरदास का आगमन उस समय हुआ था जब भारत एक भिन्न प्रकार के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सबसे बढ़कर सामाजिक संक्रमण, संघात, समन्वय और समवाय से गुजर रहा था। किसी भी समाज में संक्रमण, संघात, समन्वय और समवाय, इतिहास, वर्तमान और भविष्य के अंतर्विरोधों से मुक्त नहीं होता है। इन अंतर्विरोधों के कारण इतिहास के प्रत्येक दौर में पहले के संश्लेषण और विश्लेषण की व्याख्याओं और आख्याओं में अंतर्विरोधों के नए सिरे से उभरकर आने की भरपूर गुंजाइशें रहती हैं तो भविष्य में होने वाले संश्लेषण और विश्लेषण के बीज भी होते हैं।

जिस प्रकार निर्गुण का चरम रूप कबीर में प्रकट हुआ था, उसी प्रकार सगुण का चरम रूप तुलसी में प्रकट हुआ। कबीर और तुलसी के बीच की बहस कोई साधारण बहस नहीं है, इसे भारतीय संस्कृति के विस्तृत प्रवाह में निहित ऐतिहासिक तनाव के रूप में भी समझा जाना चाहिए। हिंदी के सामान्य परिदृश्य से निर्गुण कबीर धीरे-धीरे अदृश्य होते गए। यह हिंदी का सामान्य परिदृश्य था, सामान्य भारतीय परिदृश्य नहीं था। व्यापक फलक पर इतनी ख्याति प्राप्त होने के बावजूद स्वयं अपने ही घर में कबीर को उपेक्षित पाकर हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं। यह अप्रासंगिक नहीं कि द्विवेदी जी का ग्रंथ 'कबीर' आचार्य क्षितिमोहन सेन जी को समर्पित है। द्विवेदी जी जब कबीर के हिंदी पाठ से विश्वविद्यालय के छात्रों को समृद्ध करना चाहते थे तो उन्हें इस बात के लिए लोगों की कुत्सा का शिकार बनना पड़ा जो कबीर की इस नई आभा के वास्तविक प्रभुविष्णुता से परिचित ही नहीं थे। द्विवेदी जी कहते हैं कि- "बात-बात में मुझे शांति-निकेतन और रवीन्द्रनाथ टैगोर को लेकर ताना दिया जाता था, कुछ इस ढंग से मानों उदार होना या सार्वभौमिक दृष्टि रखना कोई बहुत बड़ा अपराध हो। काशी विश्वविद्यालय में मैंने कबीर पढ़ाना शुरू किया तो एक भिन्न कुलपति से शिकायत कर आए

कि जिस विभाग में तुलसीदास से पढ़ाई शुरू होती थी, उसमें अब कबीर से शुरू होने लगी है।"

कबीरदास के साहित्य में पंडितों और मुसलमानों को इंगित करके जो भी बातें कही गई हैं, उन बातों को पुरोहितों और मुस्लिमों तक सीमित मान लेना कहाँ तक न्यायसंगत है? सच तो यह है कि पंडित और मुल्ला सिर्फ माध्यम थे। संबोधन का असली लक्ष्य तो वे संस्थाएँ और समाज व्यवस्थाएँ थीं जिनको पंडितों और मुस्लिमों से बहुविध सामाजिक मान्यताएँ और वैधताएँ मिलती थीं। द्विवेदी जी कहते हैं- "कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं, जिनसे समाज सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसलिए उनको समाज सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। समष्टि वृत्ति उनके चित्त का स्वाभाविक धर्म नहीं था, वे व्यष्टिवादी थे। सर्व धर्म समन्वय के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत होती है, वह वस्तु कबीर के पदों में सर्वत्र पायी जाती है। वह बात भगवान के प्रति अहैतुक प्रेम और मनुष्य मात्र को उसके निर्विशिष्ट रूप में समान समझना। परंतु आजकल सर्वधर्म समन्वय से जिस प्रकार का भाव लिया जाता है, वह कबीर में एकदम नहीं था। सभी धर्मों के बाह्य आचारों और अंतर संस्कारों में कुछ न कुछ विशेष देखना और सब आचारों संस्कारों के प्रति सम्मान की दृष्टि उत्पन्न करना ही यह भाव है। कबीर इनके कठोर विरोधी थे।" यहाँ यह स्पष्ट है कि द्विवेदी जी कबीर की बातों से समाज सुधार में मिलने की संभावनाएँ तो देखते हैं, लेकिन कबीर को समाज सुधारक मानने में संकोच भी करते हैं। क्योंकि, उनके अनुसार कबीर व्यष्टिवादी थे, तो फिर व्यक्तिगत साधना के अन्य प्रचारकों से कबीर भिन्न कहाँ थे? और यदि भिन्न नहीं थे तो समाज सुधार के लिए उनकी बातों का उपयोगी आधार ही क्या था? कबीरदास और तुलसीदास की तुलना करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि हिंदी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्ति केवल एक ही प्रतिद्वी जानता है और वो है तुलसीदास। परंतु तुलसीदास और

कबीरदास के व्यक्तित्व में बड़ा अंतर था, यद्यपि दोनों ही भक्त थे परंतु दोनों स्वभाव, संस्कार और दृष्टिकोण में एकदम भिन्न थे। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव, झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिंदी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया था। उनकी वाणियों में सबकुछ को छोड़ कर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व ही विराजता रहता है। उसी ने कबीर की वाणियों में जीवनरस भर दिया है। कबीर की वाणी का अनुसरण हो ही नहीं सकता है। अनुकरण करने की सारी की सारी कोशिशें बेकार सिद्ध हुई हैं। इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोताओं को अपनी तरफ खींचती हैं। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक सँभाल नहीं पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ता को कवि कहना ही सर्वोत्तम होगा।

कबीर ने कविता की प्रतिज्ञा करके अपनी बातें नहीं कही थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि- “प्रेमभक्ति को कबीरदास के वाणियों की केन्द्रीय वस्तु न मानने का यही परिणाम हुआ है कि अच्छे-अच्छे विद्वान उन्हें घमंडी, अटपटी वाणी का, बोलनहारा, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के बारीक भेद को न जानने वाला, अहंकारी, अगुण-सगुण, विवेक, अनभिज्ञ आदि कहकर अपने को उनसे अधिक योग्य मानकर संतोष पाते रहे हैं।”

कबीर की चेतना का बीज तत्व प्रेम है, कबीर को सतगुरु भी इसलिए भाते हैं कि वे सत्त प्रेम का प्याला भरते हैं, खुद पीते हैं और कबीर को भी पिलाते हैं। “साधो सतगुरु मोहि भावे, सत्तप्रेम का भर प्याला आप पीवै मोहि प्यावै”, “जिससे रहनि अपार जगत में, सो प्रीतम मुझे पियारा हो, जैसे पुरयिनी रहि जल भीतर, जलहि में करत पसारा हो।”

मनुष्य के प्रति निर्विशिष्ट और अगाध प्रेम कबीर के व्यक्तित्व का बीज तत्व है। कबीर के समय का बीज तत्व, धर्म और ईश्वर विचार में निहित था। इसलिए कबीर का मनुष्य प्रेम ईश्वर के आलंबन से भक्ति के परिसर में अभिव्यक्त हुआ है। कबीर ने ईश्वर विचार की चुनौती तो स्वीकारी परंतु साथ ही उन्होंने

धर्म को गहरी चुनौती भी दी। उन्होंने धर्म और ईश्वर - विचार दोनों को ही बदलकर रख दिया। कबीर के बाद हिंदी समाज के संदर्भ में न तो धर्म और न ही ईश्वर, विचार वही रह गया जो कबीर के पहले था।

आचार्य द्विवेदी उनकी भक्ति चेतना को ईश्वर प्रेम से जोड़कर उसका गहन और विलक्षण अध्ययन तो करते हैं, लेकिन सामाजिक प्रेम के प्रसंग का गुस्तर कार्य न जाने किसके सहारे छोड़ देते हैं? ईश्वरीय प्रेम तो अंततः और अनिवार्यतः मानव प्रेम के रूप में ही सार्थक हो सकता है। ईश्वरीय प्रेम और मानव प्रेम के बीच सूक्ष्म अबाध आवांतरण को ठीक से नहीं समझने पर न तो कबीर का आध्यात्म समझ में आ सकता है, और न ही उनके साहित्य के सामाजिक महत्व की बात ही समझ में आ सकती है। कबीर का प्रेम दूल्हा-दुलहिन का अंतर्मिलन है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी को कबीरदास के जटिल व्यक्तित्व के सच को खोज निकालने का दुरूह और दुष्कर कार्य करने का श्रेय प्राप्त है। द्विवेदी जी द्वारा सच्चे अर्थों में कबीर की आत्मखोज निकालना किसी अनुसंधान से कम नहीं है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रसिद्ध ग्रंथ ‘कबीर’ के रूप में उनके पुनर्जन्म की बात कही है। इस ग्रंथ में कबीर के बारे में जितना कुछ लिखा है, वह कबीर प्रेमियों के लिए अति महत्वपूर्ण है। कबीर को खोजने व समझने के लिए कबीर बनने की आवश्यकता थी। जो मानव मन के बीच के कृत्रिम भेद को मिटाकर जात-पाँत की दीवारों को तोड़ता है तथा बाह्यडंबर के जाल को तोड़कर इस नश्वर शरीर से ईश्वर के अमृत रस का पान कर सकता, जो आत्मा को परमात्मा का दर्शन करा, नरक को मोक्ष में बदल सकता था। कबीर के ज्ञान के सामने बड़े से बड़ा ज्ञानी भी नतमस्तक हो जाता है। यही कारण है कि जहाँ एक ओर कबीर समाज में भी लोकप्रिय बने रहे, वहीं दूसरी तरफ वे सहज बौद्ध और सर्वग्राह्य बने रहे। कबीर के इस बहुआयामी व्यक्तित्व और आत्मिक शक्ति के रहस्यों को हजारी प्रसाद द्विवेदी ने खोज निकाला है। “कबीर की वाणी वह लता है जिससे योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज अंकुरित हुआ। कबीर ने कभी अपने ज्ञान को अपने



गुरु को और अपनी साधना को कभी संदेह की नजरों से नहीं निहारा, अपने और अपनों के प्रति उनका विश्वास कभी विचलित नहीं हो सका। वे वीर साधक थे और वीरता अखंड आत्मविश्वास को अज्ञेय करके ही पनपती है। कबीर के लिए साधना एक विकट संग्राम स्थल के समान थी। जहाँ कोई विरला शूर ही टिक सकता है।”

कबीर निर्गुण निराकार ब्रह्म को मानते थे, इसलिए वे पंडित या मौलवियों पर आक्रमण करने में कभी पीछे नहीं रहे। कबीर उस समाज में पाले गए जो न तो हिंदुओं द्वारा समादृत था, न मुसलमानों द्वारा ही पूर्ण रूप से स्वीकृत था। कबीर सभी धर्मों पर अपनी सामान दृष्टि रखते थे। कबीर के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी थी कि वह मस्तमौला स्वभाव के फक्कड़, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य और कर्म से सदा वंदनीय थे। हजारी प्रसाद जी ने कबीर शायक सर्जक का रूप भी देखा होगा अन्यथा उनकी उलटबाँसियों में वे जीवन दर्शन क्यों ढूँढते-फिरते?

वस्तुतः हिंदी साहित्य के इतिहास में सूर और तुलसी के बाद कबीर साहित्य को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय द्विवेदी जी को ही जाता है। वे अपने लोकप्रिय ग्रंथ कबीर में लिखते हैं कि “कबीरदास का रास्ता उल्टा था, उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था, जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते थे, वे प्रायः सभी उनके लिए बंद थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, वे हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वे साधू होकर भी साधू नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान की ओर से सबसे न्यारे बनाकर भेजे गए थे। कबीर पर ईश्वर की अति अनुकंपा रही, जिसका उपयोग उन्होंने बखूबी निभाया।”

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना था कि कबीरदास मुसलमान वंश में पैदा होकर भी सत्संग के बल पर हिंदू शास्त्रीय मतों को इतना जान सके थे। यह सिद्धांत वस्तुतः किसी दृढ़ प्रमाण

पर आधारित नहीं है। यह कहना अनुचित है कि कबीरदास सत्संगी नहीं थे, किंतु हिंदू धर्म संबंधी उनका ज्ञान केवल सत्संग के बल पर प्राप्त नहीं किया गया था। परमात्मा विश्वास, निर्गुण निराकार की भावना, समाधि सहजावस्था आदि का संपूर्ण ज्ञान उन्हें अपने कुल परंपरा और गुरु परंपरा से ही प्राप्त थे। कबीर की साखियों का सीधा अर्थ कबीर के आत्मविचार को पहचान देना है। जब कबीरदास निर्गुण ब्रह्म का स्मरण करते हैं तो उनका उद्देश्य यह होता है कि भगवान के गुणमय शरीर की जो कल्पना की गई है, वह मात्र कबीर का ही नहीं है। कुल-परंपरा से द्विवेदी जी का आशय है कि नीरु और नीमा नामक जुलाहा दंपति ने कबीर का पालन-पोषण किया, वे नाथपंथी योगियों के शिष्य थे। द्विवेदी जी का मानना था कि कबीर के मुसलमान होने के बाद न तो जुलाहा जाति अपने पूर्व संस्कार से एकदम मुक्त हो सकी थी, और न तो उनकी सामाजिक मर्यादा ही बहुत ऊँची हो सकी थी। द्विवेदी जी के ही शब्दों में कहा जाए तो “कबीर मुसलमान नाम मात्र के ही थे। इस नाथ भावापन्न साधोधर्मातरित जुलाहा जाति में पालित होने के कारण कबीरदास में नाथपंथी विश्वास सहज रूप में विद्यमान था। उनका मन योगियों के संस्कार से सुसंस्कृत था। उन्हें यौगिक सिद्धांतों का ज्ञान अपनी धाय माता से प्राप्त हुआ। कुलगुरु परंपरा के संबंध में द्विवेदी जी का मानना है कि कुलगुरु परंपरा ईस्वी सन की पहली शताब्दी के अंतिम वर्षों में शुरू होती है, सब सहज मत में बौद्धगान व दोहे लिखे जाते थे। कबीरदास ने बाह्यचार मूलक धर्म की जो आलोचना की है उसकी भी एक सुदीर्घ परंपरा थी। इसी परंपरा को उन्होंने अपने विचार में स्थिर किया।”

द्विवेदी जी की दृष्टि में भक्ति ने कबीर को इतना महिमाशाली बना दिया कि वे जन-जन के कंठहार बन गए। ऐसी भक्ति जो न योगियों के पास थी, और न सहजयानी सिद्धों के पास, न कर्मकांडी पंडितों के पास थी और न तो काजियों के पास। राम और उनकी भक्ति ये कबीर के गुरु रामानंद की ही देन है। इन्हीं दो वस्तुओं ने कबीर को योगियों से

अलग कर दिया। हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में ज्ञान और भक्ति दोनों साथ-साथ चल सकते हैं, और ईश्वरी ज्ञान अर्थात् ईश्वर के बारे में जानने की इच्छा मानव की भक्ति है। कबीर की ज्ञान-भक्ति भावना पर लोगों ने तरह-तरह के सवाल खड़े किए हैं। लोगों को उत्तर देते हुए कबीर स्वयं लिखते हैं- “सतगुरु भक्ति ले आए है।”

कबीरदास ने आजीवन संप्रदायवाद, बाह्याचार और बाहरी भेदभाव पर कठोरतम आघात किया है। द्विवेदी जी का मानना है कि कबीरदास की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी। द्विवेदी जी ने उनके स्वभाव का बड़ा ही सटीक विवेचन कुछ इस तरह से किया है- “वे स्वभाव से फक्कड़ थे, अच्छा हो या बुरा, खरा हो या खोटा, जिससे एकबार चिपट गए उससे जिंदगी भर चिपटे रहे। वे सत्य के जिज्ञासु थे, और कोई मोह-ममता उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती थी। वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे। मस्त, जो पुराने कृत्यों का हिसाब नहीं रखता, वर्तमान कर्मों को सर्वस्व नहीं समझता और भविष्य में सबकुछ झाड़-फटकार कर निकल जाता है।”

कबीर की घर फूँक मस्ती, फक्कड़ाना, लापरवाही और निर्मम अकखड़ता उनके अखंड आत्मविश्वास का परिणाम थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को अपने युग का सबसे बड़ा क्रांतिकारी मानते हैं। वे लिखते हैं-सहज सत्य का सहज ढंग से वर्णन करने में कबीरदास अपना प्रतिद्वंदी नहीं जानते, वे मनुष्य बुद्धि को व्यवहृत करने वाली सभी वस्तुओं को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर उत्पन्न हुए।

पंडित, शेख, मुनि, पीर, औलिया, कुरआन, रोजा, नमाज, एकादशी, मंदिर और मस्जिद उन दिनों मनुष्य चित्त को अभिभूत कर बैठे थे। परंतु वे कबीरदास का मार्ग न रोक सके, इसलिए कबीर अपने युग के सबसे बड़े क्रांतिदर्शी थे। द्विवेदी जी ने कबीर की भाषा का भी सही मूल्यांकन किया था-

“भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। सच्चे अर्थों में वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया। भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार सी नजर आती है, उसमें मानों हिम्मत ही नहीं थी कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नहीं कर सके। जैसी ताकत कबीर की भाषा में थी, वैसी बहुत कम लेखकों में है। कबीर की छंद योजना, उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-विधान पूर्ण रूप से स्वाभाविक और अल्प साधिक है।”

द्विवेदी जी ने कबीर में शायद अपने सृजन का रूप देखा होगा। उन्होंने निर्गुण भक्तिधारा में कबीर की वाणी समाज को एक नई दिशा और नई चेतना देती है। कबीर की दृष्टि यहाँ समष्टिनिष्ठ की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठ अधिक जान पड़ती है। वह संसार को खाता-पीता तथा सुखी देखकर ईर्ष्या नहीं करता, वह दुख में भी रात-रात भर जागता रहता है, रोता रहता है। वह कार्ल मार्क्स की तरह रक्तरंजित क्रांति की बात नहीं करता और न श्रम को पूँजी मानता है। वह भारतीय समतावादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में संतोष रूपी धन को गले लगाकर बोल उठता है। कबीर की प्रगतिशील वाणी न किसी पूँजीपति को ललकारती है, और न ही किसी के आगे गिड़गिड़ाती है, और न तो जन-सामान्य को लालच से बचने के लिए ही प्रेरित करती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का आलोचना ग्रंथ ‘कबीर’ स्पष्ट करता है कि कबीर मानव के द्वारा बनाए गए भेदों के बीच भी मानवीय रूप ही स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने अपने संवादों से मानवीय एकता का बीज बोया है, जो पल्लवित-पुष्पित होकर विश्व को मानवता की भावना से ओत-प्रोत करने में समर्थ है। द्विवेदी जी ने जिस तन्मयता और अध्यवसाय के स्वरूप कबीर के संपूर्ण जीवन एवं व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण किया है, वह एक प्रकार की कबीर की साधना ही है।

संपर्क : डॉ. महात्मा श्रीनाथ पाण्डेय, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, साठेय कॉलेज, विले पार्ले

मुंबई, पिन : 4000057, मो. 8454028185

## आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक—नोम चोम्स्की

—योगेश तिवारी

भाषा, मानव सभ्यता की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है। सभ्यता-विकास के विभिन्न चरणों में भाषा ने भी अपना रूप बदलना जारी रखा। भाषा और मानव के संबंधों को समझने और समझाने का काम कई भाषाविदों ने किया। भाषा विज्ञानियों में जो नाम क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए जाने गए, नोम चोम्स्की उनमें से एक हैं। (पूरा नाम एवराम नोम चोम्स्की)। नोम चोम्स्की एक भाषाविद् के साथ ही दार्शनिक और इतिहासकार के रूप में भी जाने जाते हैं। उन्होंने अकादमिक तौर पर भाषाविज्ञान में नई स्थापनाएँ देने के साथ ही समकालीन वैश्विक राजनीति पर महत्वपूर्ण स्थापनाएँ दी हैं। अमेरिका की विदेश-नीति, भूमंडलीकरण, नव-उदारवाद, इजराइल-फिलिस्तीन संबंध, पूँजीवाद-साम्यवाद जैसे कई विषय हैं, जिन पर अपनी बेवाक टिप्पणियों के लिए चोम्स्की अपने समकालीनों में खासे चर्चा में रहे हैं।

‘आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक’ कहे जाने वाले चोम्स्की का जन्म 7 दिसंबर 1928 में संयुक्त राज्य अमेरिका के एक यहूदी परिवार में हुआ। वह अमेरिका के एरिज़ोना विश्वविद्यालय से एक भाषाविद् के रूप में जुड़े रहे। इसके साथ ही उनकी पहचान एक मुखर सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी रही। अकादमिक दुनिया में उनकी शुरुआती पहचान एक संरचनावादी भाषाविद् की बनी। संरचनात्मक भाषाविज्ञान के अध्ययन के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती भाषाविद् ज़ेलिंग हैरिस और दर्शनशास्त्री नेलसन गोडमैन के सिद्धांतों को आधार बनाया। इन सिद्धांतों के आधार पर ही उन्होंने अपने संरचनात्मक भाषाविज्ञान का पक्का ढाँचा खड़ा किया।

सोलह वर्ष की उम्र में चोम्स्की ने पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय में दाखिला लिया, लेकिन उनके राजनीतिक विचारों ने उन्हें विश्वविद्यालयी जीवन से विमुख करने का काम किया। कुछ वर्षों बाद ही

अमेरिका के शुरुआती संरचनात्मक भाषाविद् ज़ेलिंग हैरिस से मिलने के बाद चोम्स्की शिक्षा की ओर फिर से मुड़े। दरअसल, ज़ेलिंग हैरिस और चोम्स्की एक ही विचारधारा से जुड़े हुए थे। इस तरह चोम्स्की को ज़ेलिंग हैरिस के रूप में एक कुशल मार्गदर्शक और शिक्षक मिल गया। ज़ेलिंग हैरिस के सुझाव पर चोम्स्की ने नेलसन गोडमैन से दर्शनशास्त्र और नाथन फाइन से गणित की शिक्षा ली। ये सारे विद्वान उस समय के अपने क्षेत्र के बड़े विशेषज्ञों में से थे। चोम्स्की ने हैरिस के भाषा संबंधी और नेलसन के दर्शनशास्त्र से जुड़े विचारों को अपने सिद्धांतों के आधार के रूप में अपनाया। इनके आधार पर ही उन्होंने अपने मौलिक विचारों को विस्तार दिया।

संरचनात्मक भाषाविद् गोडमैन का मानना था कि जन्म के समय मानव मस्तिष्क एक खाली स्लेट की तरह होता है। एकदम कोरा। शिशु अभ्यास द्वारा भाषा और व्याकरण सीखता है। दरअसल, यह समाज की सामान्य मान्यता भी है कि मानव मस्तिष्क जन्म के समय एकदम कोरा होता है। चोम्स्की ने इस प्रचलित मान्यता को चुनौती देते हुए अपने तर्कों और आंकड़ों से सिद्ध किया कि शिशु के मस्तिष्क में भाषा ग्रहण करने और उसे व्यक्त करने की क्षमता जन्मजात होती है। यानी वह जन्म से ही अपने मस्तिष्क में भाषा सीखने के मौलिक तत्व लिए रहता है। शिशु की भाषा संबंधी यह क्षमता अपने आसपास के वातावरण से तादाम्य स्थापित कर अपना विकास करती है। यानी, भाषा सीखने और उसे व्यवहार करने में शिशु का परिवेश और संस्कृति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संक्षेप में कहें तो, चोम्स्की के अनुसार—

• मानव जन्म से ही भाषा और व्याकरण सीखने की क्षमता रखता है। यह गुण उसके भीतर जन्मजात होता है। यह नियम दुनिया के किसी भी शिशु पर लागू होता है।

- भाषा सीखने की क्षमता जन्मजात होते हुए भी उसके सिद्धांतों और तत्वों को विकसित करने में आसपास के परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

- दुनिया की सारी भाषाएँ तात्त्विक रूप से जुड़ी हुई हैं।

चोम्स्की का मानना है कि मानव मस्तिष्क का एक कोना 'भाषा अधिग्रहण उपकरण' की तरह काम करता है जिसे संक्षेप में LAD (Language Acquisition Device) कहते हैं।

1950 के दशक में उन्होंने भाषा और व्याकरण से जुड़े जिस क्रांतिकारी सिद्धांत को विकसित किया उसे उत्पत्तिवाद (Generativism) के नाम से जाना गया। भाषा की दुनिया में काम करने वालों के बीच यह सिद्धांत इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका एक अलग संप्रदाय ही बन गया। इस संप्रदाय (स्कूल) से जुड़े भाषाविदों को 'जनरेटिविस्ट' के नाम से जाना गया। 'जनरेटिव स्कूल' वाक्य रचना के अध्ययन पर केंद्रित सिद्धांत है। यह सिद्धांत भाषा की संरचना के अन्य पहलुओं का भी अध्ययन करता है जिसमें आकृति विज्ञान (Morphology) और ध्वनि विज्ञान (Phonology) शामिल हैं।

नोम चोम्स्की का काम भाषाविज्ञान के लिए जनवादी दृष्टिकोण का आधार बन गया। मूल रूप से यह सिद्धांत यह समझाने की कोशिश करता है कि मनुष्य पहली बार में भाषा कैसे प्राप्त करता है। यह सिद्धांत बताता है कि अपने सबसे बुनियादी रूप में, भाषा कुछ नियमों से बनी होती है जो सभी मनुष्यों और सभी भाषाओं पर लागू होते हैं। इस तरह यह सिद्धांत 'सार्वभौमिक व्याकरण' (Universal grammar) की वकालत करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो चोम्स्की के अनुसार, सभी मनुष्य व्याकरण सीखने में सक्षम हैं। चोम्स्की ने इसे भाषाविज्ञान के अनुशासन का प्राथमिक उद्देश्य बताया है। अतः अलग-अलग भाषाओं के व्याकरण भाषाविज्ञान के लिए वहीं तक महत्वपूर्ण हैं, जहाँ तक वे हमें सार्वभौमिक अंतर्निहित नियमों को समझने की अनुमति देते हैं। जिससे देखने योग्य भाषाई परिवर्तनशीलता उत्पन्न होती है। चोम्स्की का सिद्धांत इतना लोकप्रिय हुआ कि जल्द ही इसका उपयोग सभी प्राकृतिक भाषाओं में होने वाली विभिन्न घटनाओं की व्याख्या करने के लिए किया जाने लगा।

बीसवीं सदी में प्रभावी रही संरचनात्मक भाषाविज्ञान को कई मायनों में चोम्स्की ने नया रूप दिया। यहाँ तक कहा जाता है कि नोम चोम्स्की और उनके अनुयायियों ने भाषाविज्ञान को ही एक नया रूप देने का काम किया। 1957 में प्रकाशित किताब *Syntactic Structures* (वाक्यात्मक संरचनाएँ), चोम्स्की की भाषा-सिद्धांतों में सबसे चर्चित किताब मानी गई। चोम्स्की के भाषा-सिद्धांतों की लोकप्रियता का यह आलम रहा कि राजनीतिशास्त्र, कंप्यूटर साइंस, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्र में भी उनका व्यवहार हुआ।

भाषा सिद्धांतों के साथ ही चोम्स्की अपनी राजनीतिक समझ और सत्ता और पूँजीवाद विरोधी साहसिक टिप्पणियों के कारण भी चर्चा में बने रहे। इन्होंने भाषाई सिद्धांतों के साथ ही राजनीति और समाज के संबंधों पर भी खूब लिखा। उनके लेखन का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि अपने समकालीनों में वह सबसे अधिक उद्धृत होने वाले लेखक-विचारक रहे। अपने समकालीनों के साथ ही अपने बाद की पीढ़ी को भी उन्होंने गहरे प्रभावित किया है।

अपने विद्यार्थी जीवन से राजनीतिक गतिविधियों पर उनकी एक राय बनती रही। द्वितीय महायुद्ध (World War 2) और उसके परिणामस्वरूप दुनिया भर में हुए राजनीतिक-आर्थिक परिवर्तनों के बीच ही चोम्स्की की राजनीतिक-आर्थिक सोच का निर्माण भी हुआ। इसलिए, अमेरिका और सोवियत संघ (विघटन से पहले तक), इन दो महाशक्तियों की आर्थिक-राजनीतिक नीतियों का सीधा विरोध चोम्स्की के लेखन में दिखता है। उनकी राजनीतिक सोच सिर्फ किताबी दुनिया तक सीमित नहीं रही है। वह एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में भी अपनी पहचान बनाने में सफल हो सके हैं।

चोम्स्की के राजनीतिक विचारों को मुख्यतः चार-पाँच श्रेणियों में रखा जा सकता है, जैसे- भूमंडलीकरण, अमेरिका की विदेश नीति, पूँजीवाद और समाजवाद, इजराइल-फिलिस्तीन विवाद, प्रचारतंत्र में नई मीडिया की भूमिका आदि।

अपने जीवन के शुरुआती दौर से ही वे पूँजीवाद की मुखालिफ़त करते आ रहे हैं। इसके साथ ही उन्होंने सोवियत संघ की 'मार्क्सवादी-लेलिनवादी' नीतियों की आलोचना भी की है। वह कहते हैं कि पश्चिम के अधिकतर पूँजीवादी देश अपने स्वभाव में लोकत्रांतिक नहीं हैं। ऐसा इसलिए कि 'चोम्स्की के अनुसार' सही अर्थों में लोकतांत्रिक समाज वह है जहाँ समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सार्वजनिक आर्थिक नीतियों में भागीदारी का अवसर मिले।

भूमंडलीकरण पर चोम्स्की आम धारणा से अलग राय रखते हैं। उनका मानना है कि विकासशील और गरीब देशों का इस्तेमाल विकसित देशों के पूँजीपति अपनी सुविधा के लिए करते आ रहे हैं। अतः चोम्स्की 'भूमंडलीकरण' जैसे पद और प्रक्रिया को विकसित देशों के अपने पक्ष में सुविधा उत्पन्न करने का निमित्त मात्र मानते हैं। चोम्स्की के शब्दों में कहें तो भूमंडलीकरण 'नये बोटल में पुरानी शराब' का ही मामला है। वह भूमंडलीकरण को साम्राज्यवाद के नए रूप में देखते हैं। वह सीधे और साफ शब्दों में कहते हैं कि द्वितीय महायुद्ध के बाद जितने भी वैश्विक आर्थिक संस्थान बने, वे सभी 'वाशिंगटन सेंसस' के नियमों से ही बँधे रहे। चोम्स्की का मानना है कि विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन जैसे संगठनों-संस्थानों की स्थापना के केंद्र में विकासशील और गरीब देशों की सहायता करने का उद्देश्य दिखता है, पर वास्तव में ऐसा है नहीं। वह साफ शब्दों में कहते हैं कि ये संस्थाएँ गरीब देशों की उतनी ही सहायता करती हैं जिससे विकसित देशों को हर क्षेत्र के लिए सस्ता श्रम मिल सके। इसी क्रम में चोम्स्की का मानना है कि नव-उदारवादी नीतियाँ विकसित देशों के लिए गरीब देशों से सस्ता श्रम, कच्चा माल और अपने लिए विनिवेश के नए अवसर तलाशने के साधन मात्र हैं। इसका मतलब यह हुआ कि बड़ी कंपनियाँ गरीब या विकासशील देशों को परोक्ष रूप से अपने नियंत्रण में रखने की कोशिश करती हैं जिससे कि उनका अधिक से अधिक मुनाफा हो सके। नवंबर 1999 में विश्व व्यापार संगठन के विरुद्ध हुए व्यापक जन-आंदोलन में चोम्स्की के ऐसे ही विचारों की

महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। इन विचारों के कारण ही चोम्स्की को वैश्वीकरण (Globalization) का विरोधी भी कहा जाता है।

चोम्स्की का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी कि वह अमेरिका की साम्राज्यवादी युद्ध नीतियों का खुलकर विरोध करते हैं। उनका सीधा मानना है कि दूसरे महायुद्ध के बाद अमेरिका ने जितने भी युद्ध लड़े हैं, वह सिर्फ अपने बाजार को मजबूत करने के ही उसके उद्यम हैं। एक अमेरिकी नागरिक होते हुए भी उन्होंने अमेरिका की युद्ध और बाजार नीतियों का हमेशा ही विरोध किया है। वह कहते हैं कि अमेरिका की नीतियों को अपने विचारों के केंद्र में इसलिए रखते हैं कि अमेरिका सैन्य और आर्थिक रूप से पूरे विश्व पर हावी रहा है। उनकी स्थापना है कि अमेरिका की विदेश नीति दुनिया में 'मुक्त समाज' (Open Societies) को हमेशा बढ़ावा देती आई है। इसका कारण यह है कि ऐसे समाजों वाले देश परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अमेरिका के नियंत्रण में रहते हैं और वहाँ अमेरिकी कंपनियाँ अपना उद्योग स्थापित करने और माल बेचने में ज्यादा सफल होती हैं। इसलिए, अमेरिका ऐसे देशों में किसी भी ऐसे आंदोलन को दबाने की कोशिश करता है जिससे कि उसके हितों को नुकसान पहुँचता हो। हिंदी में कथाकार रणेन्द्र और महुआ माझी के उपन्यास ग्लोबल गाँव के देवता और मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-जैसे उपन्यासों में इन बातों को व्यवहारिक रूप में देखा जा सकता है। हिंदी में सिद्धांत के रूप में भले ही अमेरिका की इन नीतियों का उद्घाटन उतना न हुआ हो, पर कथा साहित्य में कई रचनाकारों ने सत्ता और पूँजी के इस तंत्र को समझाने की कोशिश अवश्य की है। यह हिंदी साहित्य की अपनी ताकत है।

चोम्स्की अमेरिका और सऊदी अरब की नजदीकियों का भी विरोध करते हैं। वह मानते हैं कि सऊदी अरब अनावश्यक रूप से यमन के मामलों में हस्तक्षेप करता है और अमेरिका इस प्रवृत्ति को शह देता आ रहा है। अमेरिकी नीतियों के इन विरोधों के कारण उन्हें धमकियाँ भी मिलती रही हैं। इसलिए कई बार उन्हें पुलिस सुरक्षा देने की बात भी कही जाती है, जिसे वे इनकार कर देते हैं। यह सोचने की

बात है कि आज भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में बड़ी शक्तियों के खिलाफ बोलकर चैन से रहना बहुत निरापद नहीं है। इसके कई कारण हो सकते हैं, पर एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि अब यहाँ के अधिकतर बौद्धिक एकतरफा राय देने लगे हैं। चोम्स्की के साथ ऐसी बात नहीं है। इसलिए चोम्स्की मार्क्सवाद जैसी क्रांतिकारी विचारधारा की खूबियों को स्वीकार करते हुए भी उसकी हठधर्मिता को उचित नहीं मानते। हालाँकि वह कहते हैं कि मार्क्सवाद के विचारों ने राजनीति के क्षेत्र में दुनिया को बहुत कुछ दिया है।

चोम्स्की जन्म से एक यहूदी हैं। वह बार-बार कहते हैं कि अपने धार्मिक व्यवहारों में वह एक आदर्श यहूदी हैं। हालाँकि वह यह भी मानते हैं कि उनका यहूदीवाद आज के यहूदीवाद के एकदम विपरीत है। इसी क्रम में वह इजराइल की फिलिस्तीन के प्रति नीतियों का खुलकर विरोध करते हैं। अपने उदार समाजवादी रुझानों के चलते उन्होंने कई बार इजराइल की भी आलोचना की है। इसलिए कई बार वे इस मुद्दे पर आलोचना के शिकार रहे हैं कि एक यहूदी होते हुए भी वे इजराइल की आलोचना कैसे कर सकते हैं? उनका मानना है कि इजराइल-फिलिस्तीन के बीच आकर अमेरिका ने इन दो देशों के बीच के शांति-समझौते की उम्मीद को सिर्फ खत्म करने का काम ही किया है।

राजनीतिक अर्थव्यवस्था में 'प्रोपगैंडा मॉडल' की चर्चा अक्सर होती है। यह मॉडल कार्पोरेट मास मीडिया द्वारा किसी बड़ी पूँजीवादी व्यवस्था या सत्तातंत्र के पक्ष में रचे गए प्रचारतंत्र की व्याख्या करता है। समकालीन परिदृश्य में इस मॉडल की दुनिया में खूब चर्चा होती है। कहना न होगा कि इस मॉडल की स्थापना का श्रेय अमेरिकी अर्थशास्त्री एडवार्ड एस. हर्मन के साथ ही नोम चोम्स्की को भी जाता है। 1988 में एडवार्ड एस. हर्मन के साथ संयुक्त रूप से लिखी अपनी किताब में चोम्स्की कहते हैं कि प्रायः कार्पोरेट घराने ही मुख्य धारा की मीडिया के मालिक हैं। इसलिए मुख्य धारा की मीडिया सबसे पहले उन्हीं के हितों को ध्यान में रखता है। इसके साथ ही उनका यह भी मानना है कि सत्ता, मीडिया

के साथ ही बौद्धिकों का इस्तेमाल भी अपने पक्ष में माहौल बनाने और अपनी नीतियों को सही ठहराने में करता है। चोम्स्की और हर्मन ने अपना यह सिद्धांत मुख्यतः अमेरिकी मीडिया के चरित्र को केंद्र में रखकर दिया था। लेकिन, उनका मानना है कि ये सिद्धांत दुनिया में किसी भी देश पर लागू किए जा सकते हैं।

चोम्स्की के विचारों ने दुनिया के अकादमिक जगत के साथ राजनितिक और आर्थिक क्षेत्र को भी गहरे प्रभावित करने में सफलता पाई है। संरचनात्मक भाषा संबंधी शुरुआती प्रकाशन ने चोम्स्की को अपार लोकप्रियता दिला दी। साथ ही उनके भाषा-सिद्धांतों पर आधारित एक स्कूल (संप्रदाय) भी बन गया। संरचनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में यह अपने दौर का सबसे प्रभावशाली स्कूल बना। 1970 के दशक तक आते-आते इस सिद्धांत का प्रभाव दर्शनशास्त्र पर भी पड़ने लगा।

चोम्स्की के राजनीतिक विचारों ने दुनिया के कई बौद्धिकों को प्रभावित किया। अस्ट्रेलिया के जाने-माने पत्रकार जॉन पिल्गर, प्राच्यवादी सिद्धांतकार एडवार्ड सैड और भारत की चर्चित अंग्रेजी लेखिका और सामाजिक कार्यकर्ता अरुंधती राय जैसे लोगों ने सीधे तौर पर चोम्स्की के विचारों की सराहना की है। अंत में, आयरिश लेखक फ्रेड हालिडे के शब्दों में कहा जाय तो इक्कसवीं सदी के शुरुआत में ही चोम्स्की दुनिया में पूँजीवाद और साम्राज्यवादी विरोधों के अगुवा बन गए थे। यह उनके दूरदर्शी विचारों का ही परिणाम था।

चोम्स्की किसी देश द्वारा दिए जाने वाले मृत्यु दण्ड के भी खिलाफ हैं। उनका मानना है कि सत्ता को किसी व्यक्ति का जीवन लेने का कोई अधिकार नहीं है।

चोम्स्की ने कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। भाषाविज्ञान पर करीब दस पुस्तकों के साथ ही राजनीति पर उनकी करीब दो दर्जन से अधिक किताबें छपी हैं। नब्बे पार की अपनी उम्र में भी चोम्स्की अपनी बौद्धिक सक्रियता बनाए हुए हैं। दुनिया की बौद्धिक और अकादमिक परिवेश के लिए यह सुखद खबर है। चोम्स्की सत्ता, पूँजी और मीडिया की धूल भरी आँधी में एक प्रकाश-स्तंभ की तरह खड़े नजर आते हैं। यह स्तंभ अपने समय के बौद्धिकों को सही रास्ते की ओर इशारा करने का काम करता है।

संपर्क : सहायक प्राध्यापक, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,  
दिल्ली, मो. 9711263905 ई-मेल : tyogeshh@gmail.com

## मृणालिनी: पुराने जीवन-मूल्यों की टूटन एवं नारी- सशक्तिकरण की छटपटाहट

—डा. पंकज साहा

डा. रूपसिंह चंदेल बहुआयामी प्रतिभा के धनी लेखक हैं। इन्होंने कहानी, उपन्यास, बाल-साहित्य, लघुकथा, आलोचना जैसी विधाओं में लेखन-कार्य किया है। 'लिया विषय जो हाथ, उसे दूर तक निबाहा' के तर्ज पर इन्होंने उपर्युक्त समस्त विधाओं में सार्थक एवं सशक्त लेखन किया है, लेकिन इनकी ख्याति उपन्यासकार एवं कहानीकार के रूप में अधिक हुई। इनके अब-तक अठारह उपन्यास एवं अठारह कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से 'मृणालिनी' इनका पंद्रहवाँ उपन्यास है। मृणालिनी इस उपन्यास की मुख्य पात्र है। चूँकि लेखक ने इस उपन्यास का शीर्षक 'मृणालिनी' रखा है, तब इसे बेझिझक चरित्र-प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है। परंतु, उपन्यास के प्रारंभ से लगभग तीन चौथाई भाग में कानपुर के आस-पास के गांवों (आधिकारिक गांव बसंतपुर) के विभिन्न पात्रों, घटनाओं एवं वहां के परिवेश का विस्तार से वर्णन है, अतः इसे देश-काल प्रधान या वातावरण प्रधान उपन्यास भी कहा जा सकता है। हालांकि पाठक मृणालिनी से उपन्यास के आरंभ में ही परिचित हो जाता है और बीच-बीच में प्रसंग-क्रम में उसकी चर्चा भी होती रहती है, परंतु बहुत दूर तक इसमें इतने अधिक पात्र, इतनी अधिक घटनाएं, इतने अधिक ग्रामीण चित्र हैं कि पाठक उन्हीं में उलझ जाता है। सबको दिमाग में सहेजकर आगे बढ़ने पर कथा एकत्रैखिक हो जाती है अर्थात् मृणालिनी की कथा बन जाती है।

बाबू श्यामसुंदर दास ने 'मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा' को उपन्यास माना है। परंतु इस उपन्यास में उपन्यासकार ने गांव के वास्तविक जीवन की घटनाओं, परिस्थितियों का चित्र इतनी बारीकी से उभारा है कि वे जीवंत लगती हैं। ग्राम्य-जीवन के छल-छद्मों से वे इतने अभिज्ञ हैं कि 'अहा! ग्राम्य-जीवन भी क्या जीवन है' जैसा आह्लादकारी भाव नहीं उभरता। गांव की बाह्य प्रकृति का मनोहारी चित्रण करने के बावजूद वे किसी कल्पनालोक में विचरण नहीं करते, अपितु यथार्थ की ठोस जमीन पर खड़े होकर ग्रामीण जीवन की कटुताओं और विडंबनाओं को, उसमें व्याप्त आपसी ईर्ष्या-द्वेष और कलह को, रमाशंकर सुकुल और रामधनी सिंह जैसे खल पात्रों की दुष्टताओं को, अंग्रेज फौज के अत्याचारों को, ग्रामीणों में फैले अंधविश्वासों को और संयुक्त परिवार की टूटन के दर्द को बड़ी ही सूक्ष्मता एवं सजीवता के साथ चित्रित किया है। उन्होंने आजादी के पूर्व एवं कुछ पश्चात के भारतीय ग्रामीण-जीवन एवं शहरी वातावरण का जो चित्रण किया है, वह आजादी मिलने के 76 वर्षों के बाद भी लगभग वैसा ही है। लेकिन नैतिकता एवं मानवता की बात करें तो हम पहले से काफी नीचे गिर गए हैं। आज समाज के अधिकांश लोग अपना नैतिक कर्तव्य भूलकर मानवता के स्थान पर दानवता का दामन थामने में संकोच नहीं कर रहे हैं। आज देश के नेताओं के चरित्र का इतना अधिक पतन हो गया है

कि वे देश का सौदा करने में भी नहीं हिचक रहे हैं। लेखक ने इस सच को मृणालिनी की सोच के बहाने इन शब्दों में व्यक्त किया है, “आजादी के बाद शायद देश में सबसे अधिक जो चीज छीजी है वह है मानवीयता। हम मानवीय नहीं रहे। इसका कारण राजनीतिक भी है और आर्थिक भी। राजनेताओं ने देश को रसातल में धकेल दिया। भ्रष्टाचार बढ़ता गया और इंसानियत मरती गई। कल तक जिन गाँवों में लोग एक दूसरे के लिए खड़े होते थे अब दूरी बनाने लगे हैं। हम क्या थे और क्या हो गए हैं।” (पृ. 160-161)

इस उपन्यास की कथा पाँच पीढ़ियों तक फैली हुई है। कथा का विस्तार गाँव से शहर तक है। विवेचन की सुविधा की दृष्टि से इसकी कथा को तीन भागों में बाँटकर देखना उचित लगता है — 1. रघुवर सिंह के पूर्व की कथा, 2. रघुवर सिंह के समय की कथा और 3. रघुवर सिंह के बाद की कथा।

रघुवर सिंह जब छोटे थे तब उन्होंने अपने पूर्वजों की कथा अपने पिता एवं दादी के मुख से सुनी थी। उन कथाओं में कहीं अंधविश्वास की, कहीं अंग्रेजों की क्रूरता की, कहीं ईर्ष्यावश गाँव में चलने वाले छल-छद्मों आदि की कथा है। किसी बात या चीज के सत्य को बिना जाने मान लेना अंधविश्वास है। यह सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है। सामान्यतः अंधविश्वास का कारण अशिक्षा, अज्ञान, डर, लालच, स्वार्थ आदि को माना जाता है। यह ग्रामीणों में अधिक पाया जाता है, परंतु शहर के पढ़े-लिखे बुद्धिमान लोगों, यहाँ तक कि वैज्ञानिकों, इंजीनियरों को भी अंधविश्वास के जालों में फँसते देखा गया है। सारे विश्व में सबसे अधिक अंधविश्वासी भारत में ही हैं। यों तो अंग्रेज अपने आपको बहुत बुद्धिमान समझते थे, परंतु भारत में अंधविश्वासियों के चक्कर में पड़कर

वे भी अंधविश्वास को मानने लगे थे। एक अंग्रेज इंजीनियर का अंधविश्वास के जाल में फँसने का वर्णन इस उपन्यास में हुआ है।

रघुवर सिंह ने अपने बाबा से सुना था कि बिनगवां रेलवे स्टेशन जाते समय गांव से छह फर्लांग दूर बुढ़वा नाले पर पुल बनाने के क्रम में एक अज्ञात व्यक्ति की बलि दी गई थी। वह पुल एक अंग्रेज इंजीनियर की देखरेख में बनाया जा रहा था, लेकिन नींव अधिक गहरा न करने के कारण दो बार पुल के खंभे दीवार सहित ढह गए। तब कहा जाता है कि एक तांत्रिक की बात पर यकीन कर इंजीनियर ने मानव-बलि चढ़ाने की अनुमति दे दी थी।

अंग्रेजों की क्रूरता के बारे में बताते हुए रघुवर सिंह के पिता ने उससे कहा था, “बेटा, अंग्रेजों की फौज ने सड़क किनारे पड़ने वाले गाँवों के कितने ही लोगों को पेड़ों से लटका दिया था। कुछ को गोली मारी थी। लाशों का ढेर लगा दिया था उन जालिमों ने। इलाहाबाद से कानपुर के बीच हजारों किसानों को मारा गया था।” (पृ. 37)

रघुवर सिंह के दादा रघुनाथ सिंह एवं उनके छोटे भाई शिवनाथ सिंह की गाँव में सबसे अधिक जोत थी। दोनों भाइयों में मित्रता भी खूब थी। इससे गाँव के कुछ लोग जलते थे।

रमाशंकर सुकुल एवं गाँव के मुखिया रामधनी सिंह सबसे बड़े जलनखोर थे। रमाशंकर सुकुल दोनों भाइयों के बीच फूट डालने एवं उस परिवार को नीचा दिखाने के फिराक में लगा रहता था और चालें भी चलता रहता था। गाँवों में चलने वाले ऐसे षड़यंत्रों को, बदला लेने की भावनाओं को लेखक ने अत्यंत विश्वसनीय तरीके से वर्णित किया है। रघुवर सिंह की दो पीढ़ाएँ मुख्य रूप से उभरकर आई हैं -



1. वे अपने बेटों को शिक्षित न कर सके और  
2. वे अपने परिवार को टूटने से नहीं बचा सके।  
रघुवर सिंह शिक्षा के महत्व को समझते थे। उन्हें इस बात का आभास था कि एक दिन देश आजाद होगा ही। देश आजाद होगा और अपने लोगों का राज होगा। अपने लोगों का राज होगा तब पढ़े-लिखे लोगों का महत्व बढ़ेगा। (पृ.10) लेकिन, एक तो उनके दोनों बेटे यशवंत सिंह और जोरावर सिंह पढ़ना नहीं चाहते थे। दोनों कहते, “पढ़ें-लिखें ते का होई...खेती करें तो गल्ला (अनाज) होई।” (पृ.10) दूसरी बात यह कि प्राइमरी स्कूल गांव से दूर था। लकड़बग्घे द्वारा उठा लेने की एवं अंग्रेजों द्वारा पुल-निर्माण हेतु नर-बलि देने की अफवाहों के कारण गांव का कोई भी व्यक्ति अपने बच्चों को स्कूल भेजने को तैयार नहीं था।

आधुनिक शहरी सभ्यता में भले ही छोटे (एकल) परिवार को सुख का आधार माना जाता है, परंतु कृषि आधारित भारतीय ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार स्थिर, टिकाऊ एवं शक्तिशाली होता था। यह न केवल देश की आर्थिक प्रगति को सुनिश्चित करता था, बल्कि सामाजिक गुणों का पालन भी करता था। बच्चों में व्यापक दृष्टिकोण और समायोजन की भावना, सहिष्णुता की भावना, बुजुर्गों को सम्मान देने की भावना, पारिवारिक परंपरा एवं रीति-रिवाज को बनाए रखने की भावना आदि संयुक्त परिवार के मुख्य गुण हैं। परंतु, इस परिवार के कुछ अवगुण भी हैं, जिनमें परिवार की महिलाओं के बीच झगड़े, ईर्ष्या, मनमुटाव, स्वार्थ, परिवार के चालाक सदस्यों की चालाकी, आलसी लोगों का आलस्य आदि मुख्य हैं।

अपने पुरखों की संपत्ति को रघुवर सिंह ने सहेजकर रखा था, जिसके कारण वह गाँव का न

केवल समृद्ध किसान था बल्कि सम्मानित व्यक्ति भी था। इस कारण गाँव के कुछ लोग उससे जलते भी थे और उसके परिवार में फूट डालने की कोशिश करते रहते थे, परंतु रघुवर सिंह के दृढ़ व्यक्तित्व के कारण उनकी दाल नहीं गलती थी। कहते हैं कि बाहर के दुश्मनों को परास्त करने वाला बड़ा योद्धा भी घर की अशांति के आगे परास्त हो जाता है। रघुवर सिंह के दोनों बेटे समझदार थे और उनमें भाईचारे की भी कमी न थी, परंतु छोटे बेटे जोरावर सिंह की पत्नी मधुलिका एक तो बहुत सुंदर थी, दूसरे वह जमींदार के घर की बेटी थी। वह अपने साथ बहुत दहेज लेकर आई थी, सो उसके नखरे भी बहुत थे। वह परिवार के कामों में हाथ नहीं बँटाती थी। अपनी बड़ी गोतनी सरला से बिना मतलब डाह करती थी। जोरावर सब देखता-समझता था, पर पत्नी की सुंदरता से वह इतना अभिभूत था कि उसके विरुद्ध मुँह नहीं खोल पाता था। अंततः पत्नी के उकसावे में आकर उसने पारिवारिक बँटवारे की बात कह दी। रघुवर सिंह को इससे बड़ा आघात लगा। गाँव में उसके परिवार की जो प्रतिष्ठा थी, वह मिट्टी में मिल जाएगी, यह जानते हुए भी रघुवर सिंह अंततः बँटवारा कर देता है। वह अपने परिवार के आगे हार जाता है। ‘गोदान’ का होरी भी जीवन के संघर्षों से लगातार जूझते हुए हार जाता है और मर जाता है। परंतु, वह अपनी हार से प्रसन्न था। प्रेमचंद के शब्दों में, “होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानों उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है? यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है।” (गोदान, पृ.357)

होरी गरीब किसान था। रघुवर सिंह बड़े किसान थे। होरी का मुख्य संघर्ष आर्थिक था, जबकि रघुवर

सिंह का पारिवारिक। दरअसल, इस उपन्यास में लेखक ने तत्कालीन युग-संदर्भों में सामाजिक-आर्थिक उथल-पुथल के बीच बड़े किसानों, विशेषकर ठाकुर परिवारों के बदलते संस्कारों एवं उनकी टूटन का आंखों देखा हाल प्रस्तुत किया है। बँटवारे के बाद रघुवर सिंह अपने कुनबे को अपनी आँखों के सामने बिखरते देखते हैं और रोज थोड़ा-थोड़ा मरते हुए इस दुनिया से स्खसत हो जाते हैं।

रघुवर सिंह की मृत्यु के बाद उपन्यासकार कथा को मृणालिनी पर फोकस करते हैं।

मृणालिनी यशवंत सिंह के नाती हरीश की पत्नी थी। वह सुंदर, सुशील एवं इंटर पास थी। शादी के समय हरीश कानपुर के डी.ए.वी. कॉलेज से एल.एल.बी. कर रहा था। वकालत पास करते ही उसकी नौकरी कानपुर के एलिंगन मिल में अफसर के पद पर हो गई। नौकरी मिलने के बाद हरीश का व्यवहार मृणालिनी के प्रति कटु होता गया। बात-बेबात वह मृणालिनी पर उखड़ जाता, उस पर हाथ उठा देता। मृणालिनी घुटती रहती, परंतु किसी से अपने पति के आचरण की शिकायत नहीं करती। पीड़ा सहते-सहते वह क्षय रोग से ग्रसित हो गई। तब हरीश उसे बसंतपुर छोड़कर चला गया।

हरीश की माँ यशोदा ने हरीश का पक्ष लेते हुए मृणालिनी को ही अकड़ू एवं घमंडी बता दिया। तब बीमार मृणालिनी को हरीश की विधवा मौसी सुभद्रा की सहानुभूति एवं सहारा मिला। सुभद्रा ने सगी माँ से भी अधिक उसकी सेवा-शुश्रूषा की, परंतु गाँव में क्षय रोग का समुचित इलाज न होने के कारण उसने मृणालिनी को अपने पिता को पत्र लिखने को कहा। पत्र पाकर मृणालिनी के पिता उसे ले गए और कानपुर के एक बड़े अस्पताल में उसका इलाज करवाया। इलाज के उपरांत मृणालिनी बिलकुल ठीक हो गई। ठीक होने के बाद उसने एम.ए. पास

किया और उसे एक कॉलेज में लेक्चरर की नौकरी मिल गई। पति-पत्नी के बीच जब 'वो' की एंट्री होती है तो दांपत्य जीवन में दरार उत्पन्न हो जाता है और परिवार टूटकर बिखर जाता है। हरीश के जीवन में अमरजीत कौर 'वो' बनकर आती है। वह हरीश के मिल में ही काम करती थी। पहले तो हरीश उसके साथ बाहर गुलछर्रे उड़ाता था, परंतु बाद में उसे घर भी लाने लगा। मृणालिनी विरोध करती तो उसे अनेक प्रकारों से सताया जाता। मृणालिनी की आपबीती सुनकर जब सुभद्रा रोने लगी तब उसने ही ढाढ़स देते हुए कहा, "मौसी, आप रोएं नहीं। इस दुनिया में मैं अकेली नहीं हूँ सतायी गई स्त्रियों में...आप भी हैं और लाखों करोड़ों हैं और अफ़सोस यह कि इनमें से आधी स्त्रियों द्वारा सतायी गई हैं किसी-न-किसी बहाने।" (पृ.107)

सुभद्रा भी इस सत्य को स्वीकारती है, क्योंकि वह भी अपनी सास द्वारा सतायी एवं भगाई गई थी।

कश्मिरी कवयित्री हब्बा खातून ने ससुराल में सास द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर अत्यंत मार्मिक शब्दों में अपनी पीड़ा व्यक्त की है —

“ससुराल में सुखी नहीं, मुझे उबारो  
मायके वालों, मेरा कष्ट निवारो।  
चर्खा कातते आँख जो लगी मेरी  
माल टूट गई चर्खे की  
सास ने तब बाल मेरे खींचे  
मौत-सी पीड़ा हुई, मुझे बचा लो...।”

आज हिंदी साहित्य में अनेक विमर्शों की भरमार है। विमर्शों की शुरुआत नारी-विमर्श से हुई। आज भी नारी-विमर्श दौड़ में सबसे आगे है। नारी-विमर्श के मूल में नारी-अस्मिता की प्रतिष्ठा एवं नारी-मुक्ति की चेष्टा है। मुक्तिबोध ने लिखा है —

“कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती  
यदि वह है तो सबके साथ है।”

परंतु, नारीवादियों की मुक्ति का रास्ता न तो परिवार-मुक्ति की ओर जाता है न समाज-मुक्ति की ओर, बल्कि इनकी मुक्ति-चेष्टा देह-मुक्ति और पितृसत्ता से मुक्ति के इर्द-गिर्द अत्यंत जोश के साथ घूमती रहती है। नारी द्वारा नारी के शोषणों, नारी द्वारा नारी पर हो रहे अत्याचारों पर कभी खुलकर आवाज नहीं उठायी जाती है। सुप्रसिद्ध कथाकार एवं नारी-विमर्श को बड़ा मंच देनेवाले ‘हंस’ के संपादक राजेंद्र यादव के ‘सारा आकाश’ उपन्यास का मूल कथ्य ही है कि नारी ही नारी के कष्टों का कारण बनती है।

इस उपन्यास में चंदेल जी ने मृणालिनी की पीड़ाकारक अमरजीत कौर के साथ-साथ उसकी सास यशोदा को भी बताया है। महादेवी वर्मा ने भारतीय नारी की मूल समस्या के संदर्भ में ‘शृंखला की कड़ियां’ में लिखा है, “भारतीय नारी की मूल समस्या असंतुलन है। उसमें कहीं असाधारण दीनता है और कहीं असाधारण विद्रोह।” परंतु इस उपन्यास की मृणालिनी में हम नारी का यह रूप नहीं पाते हैं। क्षय रोग से पीड़ित होने पर ही वह थोड़ी दीन नजर आती है। उसके पूर्व वह पति के कुकर्मा का विरोध करती नजर आती है। स्वस्थ होकर, आगे की पढ़ाई कर अपने पैरों पर खड़ी होने के बाद भी उसमें कोई विद्रोह की भावना नहीं दिखाई पड़ती है। अमरजीत के द्वारा ठुकराये जाने एवं मिल के बंद हो जाने पर दर-दर की ठोकरें खाने वाले अपने पति हरीश को क्षमाकर उसे अपना लेती है। स्पष्ट है कि यहाँ लेखक भारतीय नारी का उच्चादर्श प्रस्तुत करते नजर आ रहे हैं। वे यह बताना चाहते हैं कि नारी केवल पितृसत्ता द्वारा ही सतायी नहीं जाती, वह नारियों द्वारा भी सतायी जाती है। नारी-विमर्श का यह स्वर अभी मुखर नहीं हुआ है, परंतु इसकी आवश्यकता है।

इस उपन्यास में वास्तविक जीवन की घटनाओं एवं परिस्थितियों का जीवंत चित्रण हुआ है। कहीं-कहीं राष्ट्रीय चेतना की झलक भी दिखाई पड़ती है। इस उपन्यास की कथा गाँव के यथार्थ वर्णन से शहर

के यथार्थ वर्णन की ओर जाती है, परंतु इसका अंत आदर्शवादी है। इसमें गाँव के खेत, खुली हवा; गाँव की प्रकृति, संस्कृति जैसे—मेला, त्योहार आदि का वर्णन बहुत सुंदर ढंग से हुआ है। इसकी भाषा कहीं-कहीं चित्रमयी एवं काव्यमयी हो गई है, जैसे — “हवा नीम के पेड़ों पर चक्कर काट रही थी। पक्षी अपने बसेरों में व्यवस्थित हो चुके थे। आसमान में चाँद झाँक रहा था, जिसकी मद्धिम रोशनी पगुराती गाय पर पड़ रही थी। चारों बैल टांग पसारें निद्रालु हो रहे थे। उनके पेट भरे हुए थे और दिनभर की थकान से उसके बदन आराम मॉग रहे थे। चाँद की रोशनी उन्हें भी धो रही थी।” (पृ.33)

सूक्तियों, मुहावरों, सुंदर पदों, सुंदर वाक्यों आदि के प्रयोगों के कारण भाषा में स्वाभाविकता एवं सौंदर्य दोनों का समावेश हो गया है, जैसे—नहा, जगहर, सटोव, अथाई, ठंड की खुनक, कुदरत बहुत शक्तिशाली है, कोहरा वहाँ चहलकदमी कर रहा था, इत्यादि। इसकी शैली पेनोरमिक है।

इस उपन्यास में लेखक ने बदलते युग-संदर्भों को बड़े फलक पर चित्रित किया है, लेकिन उन्हें व्यक्त करने में वे उतावलापन का परिचय नहीं देते। हाँ, एक छटपटाहट उनमें अवश्य है। यह छटपटाहट पुराने जीवन-मूल्यों के लुप्त होते जाने की है। यह छटपटाहट नारी को समर्थ बनाने की है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा था, “सर्वप्रथम स्त्री-जाति को सुशिक्षित बनाओ, फिर वे स्वयं कहेंगी कि उन्हें किन सुधारों की आवश्यकता है।” (विवेकानंद साहित्य, खंड-6, प्रथम संस्करण, पृ.181)

इस उपन्यास की मृणालिनी अपने उद्यम से सुशिक्षित होकर अपने पैरों पर खड़ी होती है और पति हरीश जैसे पुरुष तथा सास यशोदा जैसी नारी को सुधारकर सही पथ पर ले आती है। यह इस उपन्यास का बड़ा मकसद है और इसमें लेखक को पूरी सफलता मिली है।

**संपर्क :** एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज,  
खड़गपुर -721305 (प. बंगाल) मोबाइल संख्या: 9434894190

## ‘चारुलता’ सत्यजित रे साहब की एक यादगार फिल्म

—रजत सान्याल

रवींद्रनाथ टैगोर के नाम के साथ एक अजीब सी मिठास जुड़ी है। 1901 में सियालदह से जमींदारी की लंबे समय तक देखभाल करते-करते थककर रवींद्रनाथ शांतिनिकेतन लौट आए और उन्होंने ‘नष्टनीर’ कहानी लिखी, जिसके बारे में विभिन्न विवाद हैं। कई लोग इस कहानी में रवींद्रनाथ की बाउड़ी कादंबरी देवी को मुख्य पात्र चारुलता देवी से मिलाने की कोशिश करते हैं और लगता है कि अमल का चरित्र खुद रवींद्रनाथ ने लिखा है। कहानी के बीच में ‘नष्टनीर’ को नब्बे के दशक (1890) का एक प्रेम त्रिकोण दिखाया गया है, जिसके आधार पर 1964 में, रे ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक - ‘चारुलता’ (एक अकेली पत्नी) बनाई। अपने पहले प्रकाशन के चौंसठ साल बाद, कहानी ने रे द्वारा ‘चारुलता’ के रूप में एक नया आयाम लिया है।

माधवी मुखर्जी ने चारुलता (चारु के लिए छोटा) की भूमिका निभाई है। सत्यजीत रे की ‘महानगर’ से डेब्यू करने के बाद उन्होंने ‘चारुलता’ में काम किया है। सत्यजीत रे ने पहली बार माधवी को मृणाल सेन की ‘बाइसे श्रवण’ में देखा था। एक इंटरव्यू में सत्यजीत रे ने माधवी मुखर्जी के बारे में कहा था कि वह बहुत ही बुद्धिमान और सहज अभिनेत्री हैं।

पहले सीन में चारुलता अपने हाथों से रूमाल पर सिलाई करती नजर आ रही हैं। उसके बाद समय गुजारने के लिए कभी बंकिम बजा रहा है, कभी ओपेरा शीशे से घर की खिड़की से देख रहा है, गली में अलग-अलग लोगों को देख रहा है, तो कभी पियानो पर टंग टैंग बजा रहा है। चारुलता के पति भूपति (शैलन मुखर्जी) को एक अमीर, फैंसी, राजनीतिक रूप से जागरूक व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो अपनी पत्रिका में बहुत व्यस्त हैं।

अगले दृश्य में, भूपति कमरे के बीच में व्यस्त है और एक किताब के साथ बाहर जाता है, लेकिन चारु का ध्यान नहीं जाता, चारु, भूपति को ओपेरा ग्लास के बीच से देखती है। इस सीन के आखिरी

हिस्से को जूम लेंस पर कैद किया गया है, जिसे जल्दबाजी में काफी दूर से दिखाया गया है। इसी बीच भूपति की व्यस्तता की भीड़ में चारु का अकेलापन और दोनों के बीच दूरियाँ सामने आ गईं।

भूपति ने चारु के दादा उमापद को पत्र लिखकर अपनी पत्नी के साथ आने के लिए उन्हें अखबार के प्रबंधन की जिम्मेदारी दी। लेकिन, उमापद की पत्नी मंदाकिनी के बीच दूरियाँ चारु की शुरुआत से ही थीं। तो अकेलापन यही खत्म नहीं हुआ, लेकिन मंदा की जोर-शोर से चारु काफी नाराज हो गई होंगी। फिर तूफान के बीच भूपति के चचेरे भाई अमल (सौमित्र चटर्जी) पहुँचे। अमल को देखते ही वह चारु से पूछता है कि क्या उसने आनंदमठ पढ़ा है, जिसके माध्यम से साहित्य का सूत्र उनकी लंबी दोस्ती का संकेत देता है।

तूफान के बीच अमल का आगमन; कहानी के क्रम में बगीचे के बीचों-बीच अमल की साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ पालने पर बैठी चारु और ओपेरा के शीशे में उसे देखते हुए धीरे-धीरे उनकी दोस्ती गहरी होती गई। अमल चारु द्वारा बनाई गई किताब में गीत, शब्द, कहानी लिखी गई है। यह साहित्यिक गतिविधि केवल उन दोनों के बीच निजी होने के लिए थी और भले ही इसे अखबार में प्रकाशित न करने की शर्त थी, अमल ने इसे अखबार में भेज दिया और छपाई के बाद चारु को बताने से पहले मांडा बौदी को बताया।

चारुलता ने गर्व से अपने बचपन के गाँव के बारे में एक लेख अखबार में भेजा, जो प्रकाशित भी हुआ। पत्रिका के साथ अमल के सामने खड़े होकर, चारुलता ने अपनी साहित्यिक स्थिति को फिर से स्थापित किया; लेकिन जब अमल उसे अपनी साहित्यिक गतिविधियों को जारी रखने के लिए कहता है, तो चारुलता अमल को आँसुओं से भर देती है क्योंकि उसकी दोस्ती गर्व से परे है; उसने तुरंत फिर से अपना ख्याल रखा। चारुलता ने केवल अमल को समझाने के लिए लिखा, इसने उसकी साहित्यिक

गतिविधियों में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई - अमल इसे पहले नहीं पकड़ सकता।

एक सीन में अमल और चारु, इस बीच, जब उमापद को वित्त की जिम्मेदारी दी गई, तो वह बिना कर्ज चुकाए पैसे लेकर भाग गए, जिसका पता भूपति को बहुत बाद में लगा। इस विश्वासघात से भूपति को बहुत पीड़ा होती है, अमल कोई और परेशानी नहीं उठाना चाहता और बिना किसी को बताए घर से निकल जाता है। अगली सुबह जब चारुलता उठी और अमल के जाने का पता चला तो वह दौड़कर उसके घर गई और देखा कि चारु अपने हाथों से बना बोरी छोड़ गई है, मानो बाउदी की कोई याद अमल को रखना ही नहीं चाहती।

इन सब के बाद, चारुलता और भूपति ने समुद्र के चारों ओर घूमने का फैसला किया और चर्चा के बाद, उन्होंने पत्रिका के दो भागों अंग्रेजी और बंगाली को प्रकाशित करने का फैसला किया। चारुलता इसका बंगाली हिस्सा देखेगी। जब भूपति वापस आया और अमल का पत्र मिला, तो उसने उसे पढ़ा और चारु के हाथ में देकर चला गया। चारुलता अपने हाथ में पत्र लेकर रोती है, भूपति दृश्य देखता है और महसूस करता है कि अमल के लिए चारु का प्यार अब सिर्फ दोस्ती नहीं है।

इससे पीड़ित होकर भूपति ने बाहर अपना काम खत्म किया और जब वह घर लौटा तो चारु ने उसकी तरफ हाथ बढ़ाया। भूपति जब थोड़ा झिझकते हुए हाथ उठाते हैं तो दोनों के बीच कुछ दूरी होते ही सीन ठप हो जाता है। उनके हाथों के बीच की दूरी दोनों के बीच की दूरी का प्रतीक होनी चाहिए। उनके हाथों के बीच का खालीपन कभी भरा नहीं लगा।

इस फिल्म के दृश्यों की विशेष रूप से सराहना की जा रही है। 'चारुलता' में रे ने सबसे पहले कैमरा हैंडल और पहले जूम लेंस का इस्तेमाल किया था। चारुलता का बगीचे में झूले पर बैठे और खिलखिलाकर गाते हुए का दृश्य असाधारण छायांकन का एक अनूठा उदाहरण है। जब इस दृश्य को कैद किया गया तो माधवी मुखर्जी गाना नहीं गा सकीं। रे ने उन्हें कविता की तरह एक निश्चित लय में गाना गाने के लिए कहा। इस गाने को बाद में स्टूडियो में डब किया गया लेकिन इसे इतनी कुशलता से किया

गया है कि जब आप इसे फिल्म में देखते हैं तो इसे समझने का कोई तरीका नहीं होता है।

रे ने कैमरे का निर्देशन किया, इस फिल्म में रवींद्रनाथ की धुन पश्चिमी संगीत के साथ विलीन हो गई है, फिल्म के पात्र ऐसे ही लगते हैं। जिस घर में चारुलता की शूटिंग का सेट लगा वह करीब तीन-चार मंजिल ऊँचा था। लेकिन, इसे फिल्म में बिल्कुल भी कैद नहीं किया गया था और इसके मूल में बंशी चक्रवर्ती का कौशल था।

रवींद्रनाथ के अमल और रे के अमल में कई अंतर हैं। रवींद्रनाथ का अमल काफी जिद्दी और मांग वाला था। उसकी तुलना में, रे के अमल का चरित्र अधिक सहानुभूतिपूर्ण और विचारशील है। 'चारुलता' में अमल के दृष्टिकोण से चारु के प्रेम या स्वीकृति का कोई संकेत नहीं है, लेकिन दादा के परिवार में और अधिक अशांति न हो, इसके लिए उनकी भावना मुख्य बात बन जाती है।

कहानी के अंत में भूपति चारु से कहते हैं, 'चलो, चारु, मेरे साथ आओ।' चारु इसके विपरीत कहती है, 'मत ठहरो।' लेकिन रे के आखिरी शब्द स्क्रिप्ट में नहीं लिखे गए थे। सीन को फ्रीज करने का ख्याल रे के दिमाग में अनायास ही आ गया। राय संवाद में नहीं, भावना दिखाना चाहते थे। यह दिखाने में माहिर थे। फिल्म केवल संवाद और चरित्र के बारे में नहीं है, बल्कि इसके साथ देखने और महसूस करने के बारे में भी है - और यही रे ने अपनी फिल्मों में बार-बार समझाया है।

फिल्म का अंतिम दृश्य चारुलता को अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में विशेष रूप से प्रशंसित किया गया है और अभी भी प्रशंसा की जाती है। फिल्म ने 1974 में बर्लिन फिल्म समारोह में पुरस्कार जीते, और 1985 में भारत में राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार सहित कई अन्य पुरस्कार जीते। आलोचकों के अनुसार 'चारुलता' रे की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

रे की सभी कृतियों में 'चारुलता' में एक अलग मिठास है, हर फ्रेम एक बेदाग कहानी है। अपने एक साक्षात्कार में सत्यजीत ने खुले तौर पर स्वीकार किया कि चारुलता अब तक का सबसे कम दोषरहित काम है।

**संपर्क :** फ्लैट 101, योगीसेवा 2, 12ए, सेवाश्रम सोसाइटी एल्लोरा पार्क, वडोदरा,

पिन : 390023, दूरभाष : 9898783519, 9664698130, ई-मेल : mail@rajatsanyal.co.in.

## मनोहर श्याम जोशी के साहित्य में उत्तर आधुनिक तत्व

-ऋषिकेश राय

मनोहर श्याम जोशी हिंदी साहित्य के ऐसे विरल कथाकार हैं, जिन्होंने कथा साहित्य को अपने भाषिक प्रयोगों की विशिष्टता और उत्तर आधुनिक मुहावरे के अभिनिवेश द्वारा एक नया स्वर और आयाम प्रदान किया। जोशी जी की इकलौती सबसे बड़ी खासियत है, उनका अतिशय नवाचारी नजरिया। प्रयोगधर्मिता और प्रचलित साँचों को तोड़ने की तीव्र ललक उन्हें भाषा के मोर्चे पर एक अवांगार्ड लेखक सिद्ध करती है। कथा साहित्य के अलावा अपने निबंधों में भी वे नए राह के पथिक हैं। हिंदी निबंध की परिभाषा के आधुनिकतावादी परिप्रेक्ष्यों का वे सर्जनात्मक पुनर्संयोजन करते हैं। लकीर का फकीर बने रहने की जड़ता उनमें नहीं है। हिंदी निबंध में कई परंपराएँ एक साथ चलती रही हैं। इनमें हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय और रमेशचंद्र शाह के ललित निबंधों की परंपरा, परसाई और शरद जोशी के व्यंग्यात्मक अंतर्धारा में पगे निबंध और निर्मल वर्मा तथा अज्ञेय के गंभीर विवेचनात्मक निबंध की परंपरा शामिल है। जोशी जी इनमें से किसी परंपरा के ध्वजवाहक नहीं बनते। वे किसी भी ढंग के फार्मूलाबद्ध और स्टीरियोटाइप लेखन से प्रभावित नहीं होते और अपनी सर्वथा मौलिक और नवीन राह बनाने के आकांक्षी हैं। उनका लेखकीय व्यक्तित्व उत्तर आधुनिक और उत्तर औपनिवेशिक मनःस्थितियों की उपज है, जिसमें बेबाकी, स्वतंत्रता और एक अभिनव परिप्रेक्ष्यमूलकता का विलक्षण संयोग है। जीवन-जगत की गहरी धुन को अत्यंत कलात्मक दृष्टि में पुनर्सृजित करने के उपक्रम में वे भूमंडलीकरण, लोकप्रिय संस्कृति (पापुलर कल्चर) नव औपनिवेशिकता, मीडिया साम्राज्यवाद आदि के तत्वों का फ्यूजन कर अपनी रचनात्मकता को एक प्रासंगिक आधारभूमि पर प्रतिष्ठित करते हैं। उनका लेखन गरम, मसालेदार और अपनी

रचनात्मकता में एक नए आस्वाद का अनुभव प्रदान करता है।

उत्तर औपनिवेशिक स्थितियों में बदलते हुए युगीन संदर्भों में वे माननीय संबंधों के बदलते समीकरणों को नई भाषा प्रयुक्ति में सिरजने वाले रचनाकार हैं। बदलते मानवीय संबंधों पर उत्तर आधुनिक स्थितियों का प्रभाव पड़ा है। इन प्रभावों का विवेचन श्री जोशी अपने निबंधों में करते हैं, जबकि उनके कथा साहित्य के पात्र इन स्थितियों से आक्रांत हैं।

अपने निबंध संग्रह '21 वीं सदी' और 'उस देश का यारों क्या कहना' में वे अपने समय और समाज पर भूमंडलीकरण के पड़ते प्रभावों के आलोक में संस्कृति, परंपरा धर्म और राजनीति में आने वाले रूपांतरणों को चिह्नित करते हैं। परिस्थितियों एवं परिदृश्य के तनावों और दबाव की उनको सूक्ष्म पहचान है। अपनी सुपरिचित व्यंग्य वक्रोक्ति और व्यंजनात्मक भाषा-भंगिमा में वे विवेच्य विषय का नए ढंग से प्रस्तुतीकरण करते हैं। विषयों का उनका ट्रीटमेंट नवजागरण के दृष्टिकोण का कायल नहीं है। वे 21 वीं सदी के नए यथार्थ की संगति में सभ्यता दर्शन, उपभोक्तावादी संस्कृति, इतिहास और जातीय स्मृति की परख करते हैं। 20 वीं सदी के इतिहास, राजनीति और संस्कृति के प्रत्ययों पर उठाए जा रहे सवालों का जोशी जी नए ढंग और भंगिमा से जवाब देते हैं। इस मनोभूमिका में जोशी का 'पत्रकार' सामयिक परिदृश्य के सुलगते सवालों को हल करने के लिए बिलकुल नए ढंग से उनसे मुखामुख करता है। वे भारतीय धर्म और राजनीति में व्याप्त हिंसा, सेक्स, ग्लोबल संस्कृति, स्त्री एवं दलित विमर्श, अमेरिकी संस्कृति का वर्चस्व और उसका आतंक, मीडिया और बहुराष्ट्रीय चैनलों की दुनिया और नवसाम्राज्यवाद आदि विषयों को अपने विमर्शों के केंद्र में लाते हैं। माइकल जैक्सन, मैडोना,

सौंदर्य प्रतियोगिताओं में नारी छवि के उभार के अलावा पर्यावरण, प्रगति और विकास जैसे समय सापेक्ष मुद्दे भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होते। इन विवेचनों की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है, उनका भारतीय चिंतन परंपरा के तत्वों की दृष्टि से मूल्यांकन। उत्तर-आधुनिक विमर्शों में भी भारतीय चिंतन की परंपरा का सार्थक एवं समीचीन अभिनिवेश जोशी जी का महत्वपूर्ण कृतित्व है। यह एक किस्म का जोखिम भी है जिसे उठाना जोशी जी के बूते की ही बात है।

जोशी जी ने रूप और अंतर्वस्तु दोनों स्तरों पर निबंध के परंपरागत ढाँचे पर चोट की है। हमारी सभ्यता-संस्कृति में भी पीड़ा और यातना के क्षण रहे हैं। जोशीजी उन स्थलों का बार-बार हमें स्मरण कराकर, उनकी पुनरावृत्ति से मानों हमें विरत करने को उद्यत हैं। समस्याओं के मर्मस्थल की सटीक पहचान उनके निबंधों की विशिष्टता है, जो अपनी भूमिका में सशक्त राजनीतिक-सांस्कृतिक हस्तक्षेप प्रस्तुत करते हैं। इन निबंधों की रचना प्रक्रिया के क्रम में जोशी जी विचारों की यातना को महसूस करते हैं। नई पीढ़ी को याद दिलाने को वे भारतीय धर्म संस्कृति, राजनीति और साहित्य के स्मृति संकेतों, अंतःप्रक्रियाओं, अमानवीकरण के संत्रासों और आत्मनिर्वासन के दृष्टांतों और प्रत्ययों की नई व्याख्या और नव्य संदर्भों में प्रस्तुतीकरण करते हैं। कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है, “मशजो के ये निबंध भारतीय अस्मिता और स्मृति को पुनः अर्जित करने का एक मूल्यावान यत्न हैं।” (सृजन का अंतर्पाठ-उत्तर आधुनिक विमर्श, सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 353)

ग्लोबल संस्कृति के विविध आयामों और उनके निहितार्थों का जोशी जी ने अत्यंत सूक्ष्मता से पर्यावलोकन किया है। उनमें निहित वास्तविकताओं का वे पुनरीक्षण करते हैं। इसे केवल भाषा के खेल में न्यूनीकृत करने का सुविधाजनक मार्ग वे नहीं चुनते। मीडिया और राजनीति के सतह पर घटनेवाली घटनाओं के पीछे बहुराष्ट्रीय निगमों के स्वार्थों और

हितों को बेनकाब करने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। नव पूँजीवाद की धन, सत्ता और बुद्धि के गठजोड़ से चलने वाले खेल को जोशी जी भली-भाँति समझते हैं। उनका चिंतन और विवेचन मैकलुहान, ल्योतार चामस्की और आल्विन टॉफ़लर के चिंतन से अलग है। नव उपनिवेशवादी वर्चस्व को भाँपने और उजागर करने का जोशी जी का अंदाज बिलकुल जुदा है। संस्कृति पर परम्परागत मंथन उन्हें क्रंदन प्रतीत होता है। वे उत्तर औपनिवेशिक संस्कृति को उसी की शब्दावली एवं भंगिमाओं में प्रश्नांकित करते हैं। उत्तर आधुनिक साहित्यिक विवेचनों में ऑयरनी, विट, ह्यूमर और सेटायर को इस प्रवृत्ति की प्रमुख विशेषता के रूप में अभिस्वीकृत किया जाता है। जोशी जी के निबंधों में इन भाषिक एवं जेनेरिक प्रविधियों का प्रचुर इस्तेमाल किया गया है। इन निबंधों के शीर्षक भी भाषाई एवं कथ्यात्मक स्तर पर एक नया मुहावरा गढ़ते हैं। ‘उस देश का यारो क्या कहना’ में ‘रहिमन सिट सायलेंटली’ ‘हार्ट पुटिंग कौशलपुर किंगा’ ‘बोटहि क्लब पर बनि है बजरंग बली का मंदिर’ और ‘हैपन सर्टन वॉट राम डेस्टीना’ जैसे निबंध पत्रकारिता की भाषा प्रविधि से लिखे गए अद्भुत निबंध हैं। इन निबंधों में देश की राजनीति, संस्कृति और पॉप कल्चर पर बौद्धिकतावादी स्झान और पत्रकारीय शैली में तलस्पर्शी बातें अत्यंत विदग्धतापूर्ण शैली में विन्यस्त हैं। ये निबंध हिंदी परंपरा में एक अलग तह की सोच और भाषिक संरचना के लिए पहचाने जाते हैं। मनोहर श्याम जोशी भाषिक सर्जनात्मकता के स्तर पर अपने कौशल और जीनियस के लिए अलग से पहचाने जाते हैं। भाषाई अर्थ विविधता, ध्वन्यात्मक एवं सांस्कृतिक बहुलतावाद का हिंदी कथा एवं निबंध साहित्य में उदारतापूर्वक प्रयोग करने वाले वे इकलौते लेखक हैं। हिंदी की रचनात्मक शक्ति की अभिवृद्धि के लिए वे कुमाऊँनी, उर्दू, अवधी, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी शब्दों एवं मिश्रित शैली का विस्मयकारी पटुता से प्रयोग करते हैं। इस मामले में वे हिंदी की एक अनन्य प्रतिभा हैं। भूमंडलीकरण के दौर में

बहुसांस्कृतिकता के परिदृश्य में विभिन्न सांस्कृतिक पहचानों की अंतःक्रिया भाषाई मोर्चे पर अधिक सुचारु रूप से प्रतिफलित हुई है।

देश की राजनीति में ओछेपन, लुंपेनाइजेशन और कमीनगी की जो आमद हुई है, उसकी अत्यंत बारीक समझ, 'कुरु कुरु स्वाहा' के सत्य में अंतर्ध्वनित हुई है। 'इस देश का यारो क्या कहना' में इसका विमर्शात्मक विस्तार है।

जोशी जी के लेखन का पाट काफी चौड़ा है। उसमें परंपरा, इतिहास और संस्कृति के साथ-साथ समय और समाज की उत्तर आधुनिक पैरोडी और पेश्टीच भी समाहित है। उनमें भर्तृहरि और आनंदवर्धन के साथ टी.एस. एलियट और टामस मान से लेकर लाकां, ल्योतार और देरिदा भी विद्यमान हैं। उनके लेखन में भारत और इंडिया के साथ हॉलीवुड और बॉलीवुड के चेहरे गुंथे हैं। उत्तर आधुनिक पेश्टीच की तर्ज पर वे विधाओं की सतबझरा खिचड़ी बनाकर षटरसी चटनी के साथ परोसते हैं। संवाद, गद्यगीत, कहानी, रेखाचित्र, रिपोर्टाज और संस्मरण सभी विधाएँ अपने-अपने रंगों में एक विशाल केलियोडिस्कोप का निर्माण करती हैं। अपने लेखों तक में विधाओं की पवित्रता को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। विधाओं की बाड़ उनकी विरल सर्जनात्मकता के प्रवाह को नहीं थाम पाती। विधा एवं अंतर्वस्तु के सम्मिश्रण से वे एक नया अर्थ निष्पन्न करते हैं। विधाओं के व्याकरण का भंजन करने के अलावा जोशी परंपरागत सौंदर्याभिरुचि पर जोर से चोट करते हैं। उनकी रचनाशीलता में देरिदा के डीकंस्ट्रक्शन के बरक्स मनोहर, श्याम और जोशी का कंस्ट्रक्शन साथ-साथ मौजूद है। उनकी रचनाओं के पाठों और उपपाठों का निर्वचन करने के लिए धर्म, संस्कृति और राजनीति के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखना नितांत आवश्यक है। इस संदर्भ में पालीवाल लिखते हैं, 'थोड़ा सा चूके नहीं कि अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया अंतहीन हो जाती है। दुस्सह, जटिल और चिढ़ानेवाली। मशजो ने यह नुक्ता शायद डिल्थे की 'स्टडीज ऑफ मैन' से सीखा है।'

राजनीति, धर्म और संस्कृति में बड़बोलापन एवं वायवीयता एक सहज प्राप्य प्रवृत्ति है। जोशी जी अपने क्षुरधार व्यंग्यात्मक कथनों एवं तर्कपटु उक्तियों से इस दिखावटी नकलीपन को अनावृत्त कर देते हैं। बने-सजे चेहरों को नकोट कर उनका लिजलिजापन सबके सामने रख देना जैसे उनका प्रिय शगल है। अपनी व्यंग्यात्मक उक्तियों में उनकी बेबाकी और ढीठपन इतनी गहराई से बिंधा होता है कि वे इसमें किसी को नहीं बख्शाते। उनकी वचन भंगिमाओं की निर्ममता का आलम यह है कि उनकी प्रतिबद्धता को पहचानना अत्यंत दुष्कर होता है। उनकी रचनाशीलता में रचने वाली मनीषा और भोगने वाले भोक्ता को अलगाना सहज नहीं है। हास्य और व्यंग्य की मीठी चाशनी में घुली उनकी अर्थ मीमांसा बालमुकुंद गुप्त की परंपरा का उत्तर-आधुनिक आरोहण प्रतीत होती है। कबीर की 'परकाया प्रवेश' की प्रक्रिया को जोशी जी ने सहज ही साध लिया है। 'बिहार में माइकल जैक्शन' शीर्षक व्यंग्यात्मक संवाद में वे एकांकी नाटक की विधा को ध्वस्त कर उसे निबंध की अंतर्वस्तु से रंजित कर डालते हैं। विधाओं की तोड़फोड़ और विसंगति-विडंबना की भाषिक परिणतियों की प्रयोगात्मकता की दृष्टि से जोशी जी के समकक्ष हिंदी का कोई भी दूसरा लेखक नहीं ठहरता। भाषा में एक विशिष्ट लहजे और वक्रोक्ति के चमत्कार द्वारा यथार्थ के बिंबों को 'हाइपर रियलिटी' में ढाल देने की कला में वे माहिर हैं। उनके लेख महावृत्तांतों की समाप्ति कर सभी विचारधाराओं को खोखला साबित कर देते हैं। लेखक भी एक तुच्छ संकलनकर्ता के रूप में न्यूनीकृत हो जाता है। परोक्ष रूप में यह रोलांबार्थ की 'डेथ ऑफ ऑथर' की अवधारणा का रचनात्मक नमूना है। मूर्तिभंजक लेखन जोशी जी की विशिष्टता है। धर्म, संस्कृति, दर्शन, राजनीति और साहित्य में स्थापित अवधारणाओं को वे तोड़कर धूल-धूसरित कर देते हैं। वे अवांगार्ड लेखकों की तरह भाषा को अवचेतन स्तर पर ही बरतते हैं। भाषा स्वतंत्र रूप में प्रवाहित होती है, उस पर कोई बंधन आयद नहीं किया जाता।



भाषा की यही स्वायत्तता पाठ को भी मुक्त करती है। भाषा में संकेतक और संकेतित की पुरानी भूमिका को जोशी पूरी तरह बदल डालते हैं। इससे परंपरागत अर्थ और उसके रूप, छवि, वस्तु, प्रत्यय और मिथक जोशी जी की प्रतिभा के संस्पर्श से अभिनव प्रारूप में प्रकाशित हो उठते हैं। विज्ञान की भाषा में कहा जाए तो जोशी जी का लेखन केंद्रापसारी अर्थोन्मुखता से संचालित है। ऑयरनी के सूक्ष्म प्रयोग से वे परंपरागत भाषिक स्थापत्य को तहस-नहस कर डालते हैं।

वे सांस्थानिक विचारों के बाड़े में बंद बुद्धिजीवी नहीं हैं। विचारधाराओं के आतंक के सामने वे घुटने नहीं टेकते। अभिव्यक्ति के लिए वे हर जोखिम उठाने को तैयार हैं। आपातकाल में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी का बेबाक इंटरव्यू इसका प्रमाण है। उनके लेख पाठकीयता के रचनात्मक आनंद से भरे-पूरे हैं। निबंधों की इतिवृत्तात्मक शैली के विपरीत उनके लेख पाठकों को अपनी गिरफ्त से छूटने नहीं देते। उनके निबंधों में कविता का चुस्त विन्यास, कहानी का खुलापन और संस्मरणों की आत्मीयता एक साथ उपलब्ध होती है। पाठक एक साथ विधाओं के संश्लिष्ट आस्वाद में डूब जाता है। अपनी इस विशिष्ट और अनन्य रचनात्मकता के कारण मनोहर श्याम जोशी वादग्रस्त एवं संकीर्ण घेरे में क्रियाशील हिंदी आलोचना की नजर में नहीं चढ़ सके। भारतीय आख्यान परंपरा का उपयोग करने के बावजूद वे 'जादुई यथार्थवाद' के चक्कर से दूर ही रहे। पश्चिमी ढंग की आधुनिकता की नकारात्मक भूमिका से वे सहज रूप में परिचित हैं तथा उसकी विडंबनाओं को अपने लेखन से उजागर भी करते हैं। देशज आधुनिकता के पक्षधर होते हुए भी वे जड़ परंपरापूजक सर्जक नहीं हैं। अपने निबंध संग्रह '21 वीं सदी' के एक लेख, 'एक नदी जिसका नाम प्रगति, एक सदी जिसका नाम विडंबना' में वे लिखते हैं, 'प्रगति की एक उफनती नदी सी बहती रही है बीसवीं सदी में। एक मिथकीय भविष्य की ओर उसी तरह से बढ़ती हुई जिस तरह से अमेरिका में यूरोपीय प्रवासी पुरानी

दुनिया और सभ्यता को तहस-नहस करते हुए पूरब से पश्चिम की ओर बढ़े थे। प्रगति की यह नदी सारे संसार में हर किसी को प्राच्य से पाश्चात्य की ओर बहती ले चली गई है। प्रोटेस्टेंट ईसाई धर्म को और यूरोपीयता को आधुनिकता का पर्याय बनाया उसने। यूरोपीय आधुनिकता से पहले की तमाम समस्याएँ अतीत पूजक थीं। उनके लिए होना ही गिरना था। उनके स्वर्ग यहाँ धरती पर नहीं, किसी कल्पना लोक में हुआ करते थे।'

यूरोपीय आधुनिकता भविष्य पूजन की अवधारणा के साथ फैली। भविष्य पूजन के इस उपक्रम में अतीत की स्मृतियों का विनाश नैसर्गिक रूप से अंतर्निहित है। जोशी रेखांकित करते हैं कि तमाम प्रगतिमूलक दावों और भविष्यपरक आश्वासनों के बावजूद बीसवीं सदी असमानता, अत्याचार और नृशंसता की सदी रही है।

लाखों लोगों के नरसंहार, दो-दो विश्वयुद्धों, महाविनाश के हथियारों वाली इस सदी का आख्यान यातना, पीड़ा और विडंबना की स्याही से लिखा गया है। यूरोपीय आधुनिकता का उदय नवजागरण की कोख से हुआ है, जिसमें फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शों की रक्त-मज्जा सम्मिलित है। स्वतंत्रता और स्वाधीनता की बुनियाद पर खड़ी यूरोपीय आधुनिकता साम्राज्यवाद और पराधीनता की पोषक कैसे बन जाती है। एक तरफ तो यह आधुनिकता लोकतंत्र को जन्म देती है तो दूसरी ओर यह पूँजीवाद की भी जननी है, जो असमानता के दर्शन पर खड़ी मुनाफाखोर प्रवृत्ति है। जोशी जी, लोहिया जी की उस धारणा को दोहराते हैं, जिसमें वे समाजवाद को भी उसी यूरोपीय आधुनिकता की उपज मानते हैं।

उत्तर औपनिवेशिक दौर में 'इंडियन' मानसिकता मूल्यों, कलादृष्टि और जीवन दृष्टि में पश्चिम की अंधी नकल में फँस चुकी है। हम हर क्षेत्र में पश्चिम की उत्तरन पहनकर गर्व का अनुभव कर रहे हैं। समाजवाद भी अंततः उसी यूरोपीय आधुनिकता का एक और संस्करण सिद्ध हुआ जिसमें सर्वहारा के नाम पर निरंकुश तानाशाही स्थापित की गई। पश्चिमी

पूँजीवाद, आधुनिकतावाद, मानवतावाद और समाजवाद को लेकर जोशी और निर्मल वर्मा के विचारों में समानता के कई सूत्र मिलते हैं। जोशी की '21 वीं सदी' और वर्माजी की कृति 'भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र' में उपर्युक्त प्रत्ययों को लेकर विचार साम्य परिलक्षित होता है। निर्मल वर्मा ने 'धुंध से उठती धुन' में जॉन बर्गर के एक कथन को उद्धृत किया है। जोशी जी भी बर्गर के विचारों की सहमति में हैं। बर्गर ने लिखा है, 'पूँजीवाद की यह ऐतिहासिक भूमिका रही है, जिसकी एडम स्मिथ और मार्क्स ने कल्पना तक नहीं की थी कि वह इतिहास को ही नष्ट कर देती है। यह भूमिका वह किसानों को नष्ट करने में पूरी करता है, क्योंकि किसानों का ही एक ऐसा वर्ग है जो परंपरा को कायम रखता है। अतीत का बोध इतिहास की चेतना से जुड़ा होता है। पूँजीवाद अतीत से जुड़ी हर शृंखला को तोड़ देता है। किसान जीवन के तंतुजाल में पैठकर उसे उन्मूलित कर देता है। उन्हें शहरों की तरफ धकेल देता है। वे अपने समस्त कर्मकांडों, पर्व-अनुष्ठानों को भूल जाते हैं।'

पूँजीवाद और आधुनिकतावाद इसी प्रक्रिया का अनुसरण कर परंपरा को विनष्ट कर देते हैं। परंपरा में निहित सातत्य भी टूट जाता है जो सामूहिक स्मृति विनाश की स्थिति उत्पन्न करता है। सामूहिक अस्मिता को अंतर्ग्रन्थित करने और एक सूत्र में आबद्ध करने का कार्य भाषा, स्मृति और मिथक अपने अंतर्संबंधों के द्वारा संपन्न करते हैं। आधुनिकता इन अंतःसूत्रों को विच्छिन्न कर सामूहिक विचलन की स्थिति ले आती है। मानस में अंकित आदिम स्मृति (आर्किटाइपल मेमोरी) की आंतरिक लय को आधुनिकता सोख लेती है।

आधुनिकता को प्रश्नांकित करने के साथ-साथ जोशी परंपरा के तानाशाही और अमानुषिक पक्षों को भी कठघरे में खड़ा करते हैं। जब उन्होंने एक नवयुवक की तरह साहित्य में कदम रखा तो उनके सामने उपनिवेशवाद और समाजवाद रूपी दो विफल देवता मौजूद थे। तीसरे विकल्प के रूप में गांधीवाद भी था

जिसे देश विभाजन के रूप में जोरदार झटका लग चुका था। नई सदी की भविष्योन्मुखता के लिए उसमें कुछ तलाशना दुष्कर था।

तीसरी दुनिया के देशों ने प्रतिगामी और पिछड़ा मान लिए जाने के भय से आर्थिक-सांस्कृतिक नियोजन में यूरोपीय आधुनिकता के मानकों को स्वीकृति दी। सोवियत संघ के पतन के साथ यूरोपीय आधुनिकता की विडंबनाएँ गहराने लगी थीं। इस परिदृश्य पर टिप्पणी करते हुए जोशी जी ने समाजवादी आधुनिकता पर तंज कसा कि खुले बाजार की बात करके हर चीज को बाजारू बनाने वाले, लोभ को मानवीय गुणों का सिरमौर मानने वाले जिस पूँजीवाद को उसने खलनायक बनाया था, वह सारी दुनिया में महानायक बना घूम रहा है और जिस साम्यवाद को उसने महानायक ठहराया था वह न केवल खलनायक सिद्ध हो चुका है, बल्कि 'द एंड' के पहले अपनी हार स्वीकार करते हुए पूँजीवाद के चरणों में जा गिरा है। जोशी जी के ये कथन निर्मल वर्मा के इस संदर्भ में व्यक्त विचारों की अद्भुत संगति में हैं।

जोशी जी की इन उक्तियों के कारण कतिपय मार्क्सवादी आलोचक उनकी तीखी आलोचना करते हुए अज्ञेय की तरह उन्हें अमेरिकी पूँजीवादी संस्कृति का दलाल ठहराते हैं। इन प्रगतिशील आलोचकों ने जोशी जी के चिंतन को 'लुम्पेन' और उनके लेख को 'पोर्न साहित्य' तक कह डाला है।

अपने लेखों में जोशी जी समय की ऐतिहासिकता की सूक्ष्म पड़ताल और उसकी रचनात्मक व्यंजना करते हैं। इस ऐतिहासिक सत्य की पुनर्चना के प्रकल्प में समय का एक 'एंटीथीसिस' तैयार करते हैं। उनके निबंधों में सत्ता एवं नारी विमर्श, बाजारवाद, पूँजीवाद, हिंसा, सेक्स और भूमंडलीकरण के नए अर्थ संदर्भ निहित हैं। भारतीय युवा पीढ़ी का नकलचीपन, चरम व्यक्तिवादिता और ग्लोबल मीडिया के वर्चस्व में घटित होने वाले सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिदृश्य का तथ्यपरक विश्लेषण उनके लेखों में मिलता है। इस नई दुनिया में करुणा का विलोपन

और एकांतिक स्वार्थपरकता का उदय मनुष्य का बोनसाईकरण कर रहा है। अपनी क्षुरधार तीक्ष्णता और लेजर की तरह अंतःभेदी शिल्प के कारण उनके लेख विधाओं के मिश्रण द्वारा हिंदी निबंध परंपरा में एक नया प्रतिमान पैदा करते हैं।

निबंधों की तर्ज पर अपने कथा साहित्य में भी जोशी परंपरागत कथ्य के साँचे को तोड़कर उसे एक नया उत्तर आधुनिक मुहावरा प्रदान करते हैं। इस मुहावरे से वे हिंदी साहित्य में सर्जनात्मकता और व्यंजक शैली के मानकों पर, एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लेते हैं। समकालीन यथार्थ को एकदम अलग और जादुई अंदाज में पकड़ने वाला कथाकार। वे गंभीर एवं पॉपुलर साहित्य को करीब लाते हैं और उनके मर्म के नए अर्थ प्रकाशित करते हैं। कथा साहित्य में भी जोशी जी विमर्श के बिंदुओं का लगातार उद्घाटन करते हैं। इस संदर्भ में वे मिशेल फूको के समान हैं। प्रश्नाकुलता, समकालीन परिदृश्य के प्रति सतर्क जागरूकता और यंत्रणाओं से आहत मानसिकता के स्तर पर उनका साम्य रोलांबार्थ से है। जोशी जी के उत्तर आधुनिकतावादी मानस का सबसे सक्षम प्रमाण है, उनकी निरंतर प्रयोगशीलता और बिंदास खिलंदड़ा अंदाज। उनका मानना था कि उत्तर आधुनिकता, आधुनिकता के भीतर घटी एक दुर्गति है, जो विकास और प्रगति के लुभावने सपने लेकर आई थी। कंप्यूटर और इंटरनेट की संस्कृति से पैदा हुए जीवनगत परिवर्तनों की विश्लेषक वर्जीनिया पोस्ट्रेल की किताब 'एनीमीज ऑफ दि फ्यूचर' से शुद्धाती दौर में जोशी जी प्रभावित रहे। भविष्य के शत्रुओं को ताड़ित-शापित करने में उन्होंने कोई कसर बाकी न रखी। वर्जीनिया की ही शब्दावली में उन्होंने पुरातनपंथियों और भविष्यद्रोहियों का श्राद्ध करने की ठान ली। '21वीं, सदी' की आधारभूत संवेदना यही है। उनकी दृष्टि में वर्तमान को अतीत से श्रेयस्कर मानना और भविष्य की संभावनाओं के प्रति आशावान बने रहना ही आधुनिकता का बीजभाव है। अतीतपूजा के बरक्स आधुनिकता भविष्य की प्रतिश्रुतियों के प्रति आशान्वित रहती है। परंपरा और

संस्कृति व्याकुलता के नाम पर प्रगति और विकास की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती। आधुनिकता, नगर केंद्रित, तर्कप्रवण और वैज्ञानिक चिंतन की समर्थक होती है। परंपराओं के भंजन में उसे असीम सुख मिलता है। प्रयोग, विकास और प्रगति चेतना में आधुनिकता की विशेष आस्था होती है।

जड़ पुरातनपंथी और अतीतपूजक समुदाय आधुनिकता का विरोधी होता है। मध्ययुगीन मानसिकता और सामंती मूल्यों की श्रेष्ठता में यकीन रखने वाला वर्ग परंपरा भंजन को महाविनाश का आह्वान समझता है। आधुनिकता के प्राचीन संस्करण के पैरोकार नई आधुनिकता पर खौंखिआए और बौराए रहते हैं। उसकी अतिशय भोगवादिता और देह केंद्रिकता उनमें झल्लाहट पैदा करती है। जोशी जी ने लिखा है, 'संस्कृति का प्रश्न हो, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रश्न हो। विज्ञान पर अंकुश लगाने का प्रश्न हो, इन बूढ़े पूँजीपतियों और समाजवादियों की राय में कोई खास फर्क नहीं रह गया है। वे दोनों प्रतिक्रियावादी तेवर अपनाते हैं।' (भविष्य और उसके दुश्मन)

21वीं सदी के इस दौर में, जब विचारधाराओं के अंत की घोषणा की जा चुकी हो, राष्ट्र राज्य की शक्ति क्षीण हो रही हो और बहुराष्ट्रीय निगम ही विश्व नियंता बन चुके हों, दक्षिणपंथ और वामपंथ का विभाजन निरर्थक हो चुका है। अब तो विभाजन के पक्ष यथास्थितिवाद के पोषक स्थितिजवादियों और परिवर्तनकामी गतिवादियों के बीच खड़े हैं। एक समय प्रगति और परिवर्तन के पोषक वामपंथी भी ठहराववादियों के खेमे में शामिल होने को बाध्य हो चुके हैं। उनको लगता है कि उत्तर आधुनिकता की विचारधारा ने उनका बधियाकरण कर दिया है। वे आज भी विचारधारा के प्रति एक मोहग्रस्त स्मानी दृष्टिकोण से आक्रांत हैं। दूसरी ओर प्रकृति पर विजय का आधुनिकतावादी अभियान उस चरम को छूने को बेताब है, जहाँ मानवता अस्तित्व के खतरे का सामना करेगी। ग्लोबल के शोर में उपभोक्ता संस्कृति और युवा संस्कृति नए सीमांतों का स्पर्श

कर रही है। मास मीडिया का रोलर सांस्कृतिक विवधताओं को पीसकर एक सम कर रहा है। अपने जीवन के आखिरी दशक में जोशी जी अमेरिकी संस्कृति के संदर्भ में सूक्ष्म चिंतन करते रहे। नई पीढ़ी में अमेरिकी संस्कृति के प्रति दुर्दमनीय आकर्षण को वे उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में जानने, समझने के प्रयत्न में लगे रहे। 'हिंदी आउटलुक' में छपे उनके आलेख एवं टिप्पणियाँ इसके प्रमाण हैं।

मनोहर श्याम जोशी के रचनात्मक मनोभूमि की पड़ताल से उसमें निहित अंतःसूत्रों को समझने में मदद मिलती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एवं अन्य उपन्यासों के परिशीलन से जोशी जी के मन मस्तिष्क में यह तथ्य घर कर चुका था कि साहित्य तथ्य नहीं, बल्कि एक 'गप्प' है। द्विवेदी जी की तरह ही जोशी जी का साहित्य 'गप्प' को ही आधारभूमि के रूप में ग्रहण करता है। द्विवेदी जी की तर्ज पर ही जोशी जी के साहित्य में संस्कृति, यथार्थ, स्वप्न, मिथक, इतिहास और आकांक्षा का एक घुलामिला रूप अभूतपूर्व सर्जनत्मकता के साथ विन्यस्त हुआ है। कृष्णदत्त पालीवाल 'बाणभट्ट.....' और 'कुरु कुरु स्वाहा' में समानता के सूत्रों को उपलब्ध करते हैं।

जोशी जी का सर्जनात्मक मानस 20वीं सदी के उठान में बना और इस सदी के अवसान के साथ ही वे इस 'कलिमल ग्रसित धराधाम' को छोड़कर चले गए। यूरोपीय आधुनिकता की विराट विडंबना को प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने अनुभव किया। उनकी सृजनात्मक भूमिका में आधुनिकता को स्थानापन्न करते हुए बाजारवाद, नव्य पूँजीवाद, नव साम्राज्यवाद की विश्व व्यापी खलनायकी भूमिका का अनुभव संपन्न आख्यान है। राष्ट्र राज्य को तेजी से अपदस्थ करने वाला बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा संचालित वैश्विक पूँजीवाद लेखक, महावृत्तांत और इतिहास की अंतवादी घोषणाएँ कर रहा है। ईश्वर की जगह लेता हुआ यह वृद्ध पूँजीवाद मुनाफे का दर्शनशास्त्र गढ़कर

धर्म, संस्कृति, परंपरा, नैतिकता और इतिहास सबका कुपाठ रच रहा है। ग्लोबल पूँजी के वर्चस्व वाले इस परिदृश्य में मानवीय संबंध उपभोक्तावादी कचरे में तब्दील होते जा रहे हैं। मूल्य कमीनेपन से प्रभावित लुम्पेन तत्वों के आगे आत्मसमर्पण की भूमिका में हैं। केलिक्रीड़ा, भोग और उड़ाने की एपिक्यूरियन मानसिकता समाज में हावी होती जा रही है। इस संस्कृति का सबसे बड़ा पोषक अभिकर्ता मास मीडिया है, जिसके आदर्श हैं भोगवाद, देहवाद, उद्दाम यौनिकता और जनजातीय उन्मुक्तता का फूहड़ प्रदर्शन।

जोशी जी 21वीं सदी में इस विध्वंसक उत्तर आधुनिक संस्कृति के दुष्परिणामों को लेकर चिंतित तो जरूर हैं, परंतु उनकी चिंता दक्षिणपंथियों और वामपंथियों के विधवा विलाप से अलग है। वे उत्तर आधुनिकता के आधार सूचना क्रांति एवं संचार सुलभता को अच्छी तरह समझना चाहते हैं, जिससे उनके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों का सम्यक विश्लेषण किया जा सके। 21वीं सदी की विडंबनाओं की संरचना जटिल और बहुस्तरीय है। पूँजीवाद की गहरी समझ रखने वाला वामपंथ भी 'काँपी लेफ्ट' में बदल चुका है। इस बदले हुए समय की धड़कन को कथा तत्व में गूँथने के लिए कथा परंपरा की रूढ़ियों को तोड़ना आवश्यक था। हजारी प्रसाद द्विवेदी की कल्पनाशील आख्यान परंपरा से प्रभावित होने पर भी एक अलग ढंग की गप्प कथा और कल्पना तत्व के संयोजन की कुमाकुंजी रचनाशीलता जोशी जी में विद्यमान है। उनकी रचनात्मक विशिष्टता है, एक कथा के भीतर अनेक कथा संसारों को अनुस्यूत करना। इन कथा संसारों में परम्पराओं, अनुभवों, मिथकों, इतिहास और प्रतीकों के अलावा जोशी जी की तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि में समाए और उससे गुजरते इस दृश्यमान जगत के नानारूप हैं।

आधुनिकता और उत्तर आधुनिकतावाद को अपने लेखन का अनिवार्य संदर्भ बनाने वाले जोशी जी उसके चर्चित संस्करणों दलित एवं स्त्री विमर्श के फेर में नहीं पड़ते। वे हर तरह के फार्मूले को तोड़ने वाले लेखक हैं। एक विलक्षण प्रतिभा संपन्न लेखक

होने के कारण जोशी जी भारतीय समाज के तीव्र अमेरिकीकरण और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की अनेक छवियों, रूपों, मिथकों तथा आख्यानों की अंतर्वस्तु से परिचित हैं।

परंपरा और आधुनिकता रूपी संस्थाएँ सांस्कृतिक जगत में विभिन्न विरोधी संरचनाओं के मध्य सामंजस्य और संतुलन स्थापित करने में सहयोगी होती हैं। उत्तर संरचनावाद के हस्तक्षेप ने इस सत्य को बदल डाला है। इसने निरंतरता और नवीन भावबोध दोनों को विपर्यस्त किया है। लेखन अब सृजन से हटकर एक पाठ में बदल चुका है। हर पाठ में कई अन्य उपपाठों की भी अवस्थिति होती है, जो बहुकोणीय व्याख्या सापेक्ष हैं। अब साहित्यिक लेखन को विशेष गरिमा हासिल नहीं है। एक पाठ मात्र में न्यूनीकृत होकर वह अपनी अलौकिकता, विलक्षणता और अध्यात्मिकता से च्युत हो गई है। दार्शनिक अर्थ संदर्भ से वंचित होकर वह सामान्य और साहित्येतर बन चुकी है। लेखन के इस परिदृश्य में जोशीजी एक नए यथार्थ का चित्रण करना चाहते थे जिसमें कथा साहित्य और व्यंग्य की उपलब्ध परंपराओं से उन्हें कोई सहूलियत हासिल नहीं होनी थी। उनका कथा साहित्य न प्रेमचंद की परंपरा में है न रेणु, अज्ञेय और अमृतलाल नागर की। उनके व्यंग्य का तेवर भी हरिशंकर परसाई और श्रीलाल शुक्ल से भिन्न है। रघुवीर सहाय के शब्दों में, अपनी एक मूर्ति गढ़ने वाला और उसको तोड़कर हँसने वाला। नई राह का अन्वेषी एक प्रयोगधर्मी लेखक।

आरंभ में जोशी जी ने कविताएं भी लिखीं जो परिमल की पत्रिका 'नई कविता' में प्रकाशित हुई थीं। अजमेर में जन्मे और लखनऊ में पढ़े-लिखे जोशी जी के संपूर्ण रचनात्मक व्यक्तित्व का प्रतीकीकरण कैक्टस के रूप में कृष्णदत्त पालीवाल ने किया है। विभिन्न स्रोतों से जीवन रस खींचकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रहने वाला संघर्षशील अस्तित्व। आपातकाल में भी सत्ताविरोधी,

दबंग लेखन करने वाले हिम्मती पत्रकार। मुक्तिबोध और धूमिल के साहित्य में वर्तमान मोहभंग की चेतना को उन्होंने अपने सीरियल-पटकथा लेखन के माध्यम से आगे बढ़ाया। 'मुंगेरी लाल के हसीन सपने' और 'नेताजी कहिन' जैसे व्यंग्य सीरियलों के द्वारा आजाद भारत में आम आदमी की वंचना का आख्यान रचा गया है।

उत्तर आधुनिक सैद्धांतिकी के एक प्रमुख प्रवक्ता ल्योतार ने अपनी कृति 'पोस्ट माडर्न कंडीशंस' में 'मेटानैरेटिव' अथवा 'ग्रैंड नैरेटिव' के समाप्त होने की घोषणा की थी। रोलांबार्थ ने 'लेखक के अंत' की घोषणा की। जोशी जी अपने लेखन के माध्यम से इन अवधारणाओं को चुनौती देना चाहते थे। अंतिम समय में उन्होंने 'वार एंड पीस' की तर्ज पर 'कपीश जी' शीर्षक से एक विशालकाय महाख्यानात्मक उपन्यास लिखना शुरू किया था। इस उपन्यास में वे पूर्व एवं पश्चिम के वैचारिक एवं चिंतनात्मक अंतर को भारत और अमेरिका की सात पीढ़ियों के महाख्यान के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहते थे। जोशी जी का उपन्यास 'कसप' हिंदी की अनूठी प्रेमकथा है। बेहद पठनीय होने के अलावा संवेदना में प्रेम के विषाक्त प्रभाव से पूर्ण। उत्तर संरचनावादी दृष्टि से हर रचना का पाठ एक कुपाठ यानी 'मिसरिडिंग' होता है। आलोचना की यह दृष्टि मानती है कि लेखन ही लेखन को लिखता है। 'कसप' में जोशी जी 'पोर्नो नॉवेल' और जॉन लैंका की अंतर्दृष्टि का सूक्ष्म संयोजन करने में सफल हैं। हिंदी के शुद्धतावादी माहौल से अलग हर वर्जना को खंडित करता जोशी जी का यह उपन्यास उत्तर आधुनिकता के अर्थ संदर्भ से युक्त है। ऊपर से देखने पर कॉमिक प्रतीत होने वाला जोशी जी का लेखन एक गहरी ट्रैजिक दृष्टि से संपन्न है। उनके लेखन की वास्तविकताओं को पकड़ने के लिए सूक्ष्म पर्यवेक्षण की जरूरत है।

जोशी जी ने हिंदी साहित्य के आख्यान के साँचे और उसकी पारंपरिकता को उत्तर संरचनावादी प्रविधि से खंड-खंड कर दिया। 'प्रोफेसर' और 'क्याप' पाठ की जटिल संरचना की निर्मिति की रचनाएं हैं।

कथाख्यान की इस संरचना में सामाजिक सूत्र नए रूपों में विन्यस्त हैं जिनमें गंभीर सांस्कृतिक अर्थ ध्वनियाँ हैं। जोशी जी ने अपने रचनाकर्म में समायिक विकृतियों, विडंबनाओं, व्यतिक्रमों, अवसाद, मानसिक रोगों, पश्चिमी जीवन पद्धति और प्रतिमानों के अविवेकपूर्ण स्वीकरण और समाज-संस्कृति के उत्तर उपनिवेशवादी स्थितियों का विवरण व्यंग्य और वक्रोक्ति की भाषा में दिया है। ब्रिटिश औपनिवेशिकता और देशी साम्राज्यवादियों के शोषण ने आमजन को बदहाल कर दिया है। किस्सागोई के अद्भुत अंदाज में वे इन अनुभवों का रचनात्मक अनुवाद करते हैं। अपने कथा और चरित्रों को प्रभावी बनाने के लिए वे फिल्मी प्रविधि का उपयोग करते हैं। इस का विकास कर वे हिंदी सोप ओपेरा के प्रवर्तक बने। पटकथा लेखन के गुरु पर किताब लिखने के अलावा व्यावहारिक स्तर पर उन्होंने इसके मायने बदल दिए। हिंदी कथा लेखन में भी जोशी जी ने परंपरागत कथातत्व और नायक संबंधी अवधारणाओं को पूरी तरह बदल दिया और उदात्तता की निःसारता सिद्ध कर दी। परिष्कृत मानक भाषा के स्थान पर बोलियों की जनसंपृक्ति और व्यंजकता से कथा भाषा का एक ऐसा मुहावरा रचा जिसको दुहराना किसी भी अन्य लेखक के लिए दुःसाध्य है। विट् ऑयरनी और गहरी व्यंग्यात्मकता से भरी-पूरी उनकी भाषिक प्रयुक्ति ने कथ्य और संवेदना में एक अनूठी नव्यता का नमूना पेश किया। आलोचना के क्षेत्र में भी उन्होंने पुराने ढरों को तोड़ दिया। ‘रघुवीर सहाय रचनावली’ की समीक्षा में वे उत्तर संरचनावादी पाठकवादी आलोचना की नींव

रखते दिखाई पड़ते हैं। ‘पाठ’ की नई विनिर्मिति के द्वारा वे रचना के एकल स्वायत्ततावादी रुझान को तोड़कर हिंदी आलोचना में एक नया डिस्कोर्स ले आते हैं। हिंदी में पाठक केंद्रित सर्जनात्मक आलोचना का यह पहला नमूना है। इस पर तुरा यह कि प्रतिमान गढ़ने की कहीं कोई बेकली नजर नहीं आती। अग्निधर्मा लेखन के पुरस्कर्ता जोशी जी व्यवसायिक और शुद्ध साहित्यवादी लेखन के फेर-फार में नहीं पड़े। अपने को व्यावसायिक पत्रकार और व्यावहारिक प्राणी कहने वाले जोशी जी कभी भी सत्ता प्रतिष्ठान के सम्मुख नतशिर नहीं हुए। मीडिया, साहित्य और तकनीक के बीच एक अभिनव संश्रय और संबंध स्थापित करने के मामले में कोई उनका सानी नहीं। इन तीनों क्षेत्रों में उन्होंने अपने जीनियस से हिंदी में एक नए किस्म की बौद्धिक पाठकीय मानसिकता को पाल-पोसकर बड़ा किया। उनका लेखन एक विस्तृत प्रयोगशाला है जिसमें टी.एस. इलियट, फूको, गोल्डमान, मारक्वेज, मैकलुहान, ल्योतार और रोलांबार्थ के अलावा अज्ञेय, नागर, निर्मल वर्मा और भर्तृहरि की स्मृतियाँ नवीकृत होती हैं।

साररूप में यह कहा जा सकता है कि जोशी जी की प्रतिभा मीडिया, साहित्य और तकनीक के संश्रय को एक अनोखी भावभूमि में अंतर्ग्रथित करती है, जो परंपरा एवं आधुनिकता का पोषण करने के साथ उनको अतिक्रमित भी करती है। उनकी संवेदना में एक बेचैन उत्तर आधुनिक मानस की पहचान की जा सकती है।

**संपर्क :** उपनिदेशक, राजभाषा, टी-बोर्ड इंडिया, 14, ब्रेबोर्न रोड,  
कोलकाता - 700001 मो. 9903700542

## कोरोनाकाल और आभासी-पटल को उजागर करती कहानियाँ

-स्नेहा सिंह

हिंदी की वरिष्ठ कथाकार और संस्मरणकार ममता कालिया का कहानी-संग्रह 'दो गज की दूरी' 2022 में प्रकाशित कोरोनाकालीन दौर में होने वाले परिवर्तनों एवं उपलब्धियों को बारीकी से निरीक्षण करता है। कोरोना काल में सुरक्षा-व्यवस्था की दृष्टि से लगाये गए 'दो गज की दूरी', 'मास्क है जरूरी' जैसे जुमले अब हमारी दिनचर्या के अनिवार्य अंग बन गए हैं। जो इत्तेफ़ाक से इस कहानी संग्रह का शीर्षक भी है, औचित्यपूर्ण भी। गौरतलब है कि कोरोना संक्रमण से बचाव के लिए 'दो गज की दूरी', 'मास्क', 'आइसोलेशन' तथा 'सोशल डिस्टेंसिंग' की एहतियात बरती गयी थी। इसका अनुपालन भी किया गया। किन्तु हमारी सतर्कताओं ने कब इसे मानसिक स्तर पर भी ग्रहण कर लिया, हमें आहत भी नहीं मिली। इस दृष्टि से संग्रह की कहानियाँ हमें आत्मालाप, आत्म-निरीक्षण का स्पेस भी देती हैं। इस पुस्तक में कुल 14 कहानियाँ हैं, जो परस्पर गुँथी हुई हैं। पहली कहानी से अंतिम कहानी तक का पाठ, चारित्रिक बुनावट, विषय, भाषा आदि किसी औपन्यासिक-संरचना का आभास देता है। यह कहानीकार की सफलता है।

ममता कालिया एक सुलझी हुई लेखिका हैं। विचारों का सहज सम्प्रेषण उनकी रचनाओं की विशेषता है। अपने समय की गतिविधियों से शिरकत करना, उसके सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों के प्रति सजग रहना व सतर्क करना साहित्यकारों का धर्म है। यूँ तो पिछले दो दशकों से यांत्रिकीकरण ने समाज पर व्यापक प्रभाव डाला है। किन्तु 'कोरोनाकाल' में यांत्रिकी- निर्भरता की घोषित अनिवार्यता ने हमें 'रोबोट' बना दिया है। हम मोबाइल के चंद बटनों के घेरे में आबद्ध हो चुके हैं। बेतार से जुड़े इन यंत्रों ने वस्तुतः आभासी-दुनिया का एक नया संसार रचा है। जिसके अपने ही यथार्थ हैं।

साहित्यकारों ने शिद्दत से इस यथार्थ को पहचानने की कोशिश की है। कथा साहित्य में इसे व्यापक 'स्पेस' मिला है।

लगभग तीन दशकों से भूमंडलीकरण, मशीनीकरण, औद्योगिक - क्रांति, सूचना- तंत्र तथा संचार- माध्यम की अवधारणायें व विशेषताएँ हमें लगातार प्रभावित करती आ रही हैं। लेकिन मार्च 2020 में 'कोरोना वायरस' के संक्रमण को नियंत्रित करने के उद्देश्य से आनन-फानन में लगाये जाने वाले 'लॉकडाउन' ने संचार-क्रांति जगत में विस्फोट पैदा कर दिया। वैश्विक स्तर पर डिजिटल-क्रांति की परिभाषाएँ गढ़ी जाने लगीं। भारत अब 'डिजिटल भारत' बन गया है 'ऐसा दावा किया गया। इन्टरनेट, मोबाइल, लैपटॉप, चैट, व्हाट्सप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ऑनलाइन शापिंग, ओला, उबेर, रोड शो आदि तमाम तकनीकी संसाधन सहचर रूप में हमारी अनिवार्यता बन गए हैं जो हमारी दिनचर्या को गतिशील बनाते हैं, उसमें अर्थ भरते हैं। इनके अभाव में जीवन थम सा जाता है। इन मशीनों के साथ हमारा मानसिक ताल- मेल भी बन गया है। ममता कालिया ने इसी मशीनी सहजता, जरूरत और आदतों से भरी दिनचर्या को यथावत उकेरने का प्रयास किया है। संग्रह की पहली और प्रतिनिधि कहानी 'दो गज की दूरी' में ही लेखिका ने इसकी पृष्ठभूमि और संकेतों को स्पष्ट कर दिया है जो अगली कड़ी के रूप में हर अध्याय के साथ स्पष्ट होता जाता है। इस कहानी में कहानीकार ने 'कोरोनाकाल' के दौरान कोरोना से बचाव व रोक- थाम के लिए निर्देशित सरकारी अभियानों को दोहराते हुए हमें सतर्क एवं सावधान भी किया है। टेक्नोलॉजी आश्रित, विशेषतः मोबाइल केन्द्रित, भाग-दौड़ की आपा-धापी में संबंधों के रंग भी काफी बदल गए हैं। कहानीकार ने इसके महीन धागों को पकड़ने और सुलझाने की

कोशिश की है। यह कहानी यह बताने में समर्थ है कि आज हमारी जिंदगी मोबाइल के ‘चंद बटनों’ में सीमित हो गयी है। समस्त सूचना-स्रोत, सेवा-केंद्र, मंडी-बाज़ार, चिकित्सा, मनोरंजन, संपर्क-सूत्र सिमट कर तथाकथित मोबाइलनुमा एक यन्त्र में तब्दील हो गया है। कथा नायिका समिधा के शब्दों में—“पिछले दस साल में यह उसका जीवनसाथी बन गया था। अब तो यह उसका पत्र-कोष, मित्र-कोष, शब्द-कोश, सूचना तंत्र सब था। यहाँ तक कि अब मोबाइल उसका दूधवाला, सब्जीवाला, दवाईवाला और पंसारी भी।” 1 मोबाइल ने संबंधों को पनपने का एक ‘स्पेस’ अवश्य दिया है। यह दो व्यक्तियों के आपसी संकोच व झिझक की दूरी को कम करके सहज संवाद के लिए उत्साहित करता है। किन्तु इसका एक दूसरा पक्ष भी है। बेतार से जुड़े इन संबंधों के गाम्भीर्य व स्थायित्व को लेकर मन में एक संदेह सदा बना रहता है। साक्षात्कार के दौरान हम औपचारिकता का सहारा लेने लगते हैं अथवा जितनी सहृदयता, आत्मीयता एवं संवेदना का जुड़ाव इन्टरनेट के माध्यम से हमें अनुभूत होती है, हकीकत में वह कभी-कभी बिलकुल बेमानी, निर्मूल और अर्थहीन लगने लगता है। कथा नायिका ने इसकी ओर भी संकेत किया है। उन्होंने चैट और डिलीट की मशीनी दिनचर्या में संबंधों के हल्केपन व बढ़ते अलगाव को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। दरअसल यांत्रिक-संस्कृति ने हमें विरोधाभासी मूल्य दिए हैं। एक तरफ जहां ‘चैट’ मात्र एक शगल है, डिलीट बटन दबाते ही सब कुछ भुला दिया जाता है, वहीं ‘सेल्फी’ लेना एक जुनून बन गया है, यह एक नशा है जो विशेषतः युवा-वर्ग को अपनी गिरफ्त में ले चुका है इसका प्रभाव मादक-पदार्थों से भी गहरा है। कभी-कभी यह जानलेवा भी साबित हो रहा है। इस दृष्टि से संग्रह की कहानी ‘मोबाइल मुहब्बत’ साक्ष्य रूप में देखी जा सकती है।

आलोच्य कहानी-संग्रह कोरोनाकालीन परिस्थितियों का दस्तावेज है। ‘कोरोनाग्रस्त समाज’ एक तरफ

जहां लाशों से पटा हुआ था, तो दूसरी तरफ पूरे देश की अर्थव्यवस्था चरमरा रही थी। जनसामान्य बेरोजगार हो रहे थे। भूख और बदहाली चरमावस्था को छू रही थी। तो वहीं कुछ अवसरवादी लोग ऐसे भी थे जो मौके का फायदा उठाने की ताक में लगे रहते थे। इस दृष्टि से ‘आखिरी लिबास’ कहानी बेहद संवेदनात्मक हो उठी है। लेखिका के शब्दों में “अपने ही घर में ऐसे बच-बचकर रहने लगे जैसे अपने ही सजीव, निर्जीव हर स्पर्श में संक्रमण है। मकान बंद, दुकानें बंद, डॉक्टर के दवाखाने बंद।” 2 सभी बंद दुकानों के बीच कब्रिस्तान से लगा ‘आखिरी लिबास’ दुकान के सारे माल बिक गए थे। अंततः दैत्याकार ‘कोरोना’ ने उस दुकानदार को भी लील लिया “जाने कहाँ से अब्बाजान को कोरोना लग गया। अब्बू का इंतकाल हो गया। दुकान बंद हो गयी।” 3 यह कहानी एक तरफ जीवन और मृत्यु के संघर्ष को गहरा करती है तो दूसरी ओर बुद्धिजीवियों द्वारा रचना-जगत में फैले पुरस्कारों और उपलब्धियों की प्राप्ति में निहित संघर्ष की वास्तविकता को उजागर करती है।

कथाकार ममता कालिया ने न केवल समाज-व्यवस्था की विविध परतों को उधेड़ा है बल्कि तेजी से बदलते संबंधों के नए समीकरण को भी संवेदनशीलता के साथ विश्लेषित किया है। कहानी ‘कच्चे होते धागे’ अपने मूल कथ्य में जीवन-ऊष्मा के शिथिल पड़ जाने की ‘टीस’ को कई सवालियों के साथ प्रस्तुत करती है। जिसमें एक तरफ नौकरीपेशा बेटा-बहू द्वारा वृद्ध माता-पिता की अवहेलना है तो दूसरी तरफ कामकाजी माता-पिता के बच्चों की परवरिश सम्बन्धी समस्याएँ। मूलतः लेखिका के चिंतन-केंद्र में भावी पीढ़ी का भविष्य निहित है। ‘सन 1950 के नल-दमयंती’ शीर्षक कहानी पितृसत्तात्मक-मूल्य और स्त्री के स्वाभिमान, प्रेम व संघर्ष की जद्दोजहद को प्रस्तुत करने में सफल हुई है। यह स्त्री के आंतरिक सौंदर्य, उसके व्यक्तित्व की गरिमा एवं अस्तित्व को स्थापित करती है। साथ ही



यह संयुक्त परिवार की परंपरागत संकल्पना को सुदृढ़ करने में भी सहायक है।

‘कोरोना वायरस’ ने विश्व के इतिहास में भारी उथल-पुथल मचाई है। यों कहें कि कोरोना काल ने एक नए युग की शुरुआत की है, तमाम तरह की सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रवृत्तियों, प्रतिक्रियाओं व प्रभावों को साथ लेकर। इसने एक तरफ भारत को ‘डिजिटल भारत’ बनाकर विकास की ऊँचाइयों को छुआ है तो दूसरी तरफ भुखमरी और बेरोज़गारी से तड़पते मेहनतकश मजदूरों-किसानों को आत्महत्या के लिए विवश भी किया है। ‘डिजिटल भारत’ ने डिजिटल क्रांति कर दी है। पूरे विश्व में कार्य ‘ऑनलाइन’ किये जा रहे हैं। भारत भी किसी से पीछे नहीं है। सभी दुकानें ऑनलाइन खरीद-बिक्री कर रही हैं। मोबाइल, ‘व्हाट्सएप पे’, ‘गूगल पे’, ‘फ़ोन पे’, ‘पेटीएम’, ‘होम डिलीवरी’, ‘फ्री डिलीवरी’ आदि के माध्यम से आज व्यावसायिक लेन-देन किये जा रहे हैं। जो व्यापारी इसके मद्देनज़र खुद को अपडेट कर चुके हैं, दरअसल वे ही जीवोकोपार्जन में समर्थ हो रहे हैं। इसके अभाव में जिन्दगियाँ कुलबुला रही हैं।

ममता कालिया ने अपने रचनात्मक कलेवर में गाँवों का शहरीकरण, गाँवों से पलायन, महानगरीय जीवन की ऊब, एकाकीपन, व्यस्तता, तनाव, एकरसता, संवादहीनता, संबंधों के टूटन तथा समय के साथ उभरते नए मूल्यों को न केवल पहचाना है बल्कि उन्हें संजीदगी से उभारा भी है। ‘छुट्टी का एक दिन’, ‘छूट गए जो घर’, ‘भाषा का भूत’, ‘कच्चे होते धागे’, ‘सन 1950 के नल-दमयंती’, ‘अंगूठी’, ‘जागी आँखों के सपने’, ‘दूसरा मेघदूत’, ‘विकास’ आदि उनकी संदर्भित कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ अपने गाँव, अपने घर और जमीन से छूटने के दर्द की ‘टीस’ को व्यक्त करती हैं। अक्सर देखा जाता है कि उच्च-शिक्षा, रोजगार, नौकरी की तलाश में जो लोग एक बार घर से निकल जाते हैं, वे जीवनपर्यंत परिदों की भांति ही स्थायित्व को तलाशते रह जाते हैं। अपनों का मोह उन्हें बार-बार घर की ओर

उन्मुख करता है किन्तु उनके लिए घर, ‘घर’ नहीं रह जाता। वह मात्र एक ‘राहत-स्टेशन’ बन जाता है जहाँ परिन्दे की भांति वे कुछ देर विश्राम करके पुनः अपने गंतव्य की ओर उड़ान भरने लगते हैं। इस दृष्टि से कहानी ‘छूट गए जो घर’ मर्मन्तक हो उठी है। कथा लेखिका के शब्दों में—“आज भी कोई पूछता है तुम्हारी ननिहाल कहाँ थी, ददिहाल कहाँ थी, मैं हकबकायी देखती रह जाती हूँ क्या कहूँ। कहाँ छूट गए मामाघर, बाबाघर ?” 4 त्रासदी यह कि अस्तित्व की तलाश में घर से दूर महानगरों का अकेलापन इनमें ऊब और बेचैनी की झुंझलाहट ही भरता है, स्थायित्व का सुकून नहीं। लेखिका का विचार है कि शहरों का बड़ापन हमें कुछ नहीं देता, परन्तु हम इन पर मुग्ध रहते हैं। बड़े-बड़े शहरों में, महानगरों में, अपने अलावा और कोई ‘अपना’ नहीं होता। इसलिए यहाँ रहने वाले लोग छुट्टियों के दिन भी अपने किसी पूर्व-निर्धारित कार्यक्रमों में व्यस्त रहना ही उचित समझते हैं—“अगर आपके पास पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम न हो तो रविवार आप पर हावी हो जाता है और रविवार के आगे आप परास्त हो जाते हैं।” 5 संग्रह की बहुत ही महत्वपूर्ण कहानी है ‘दूसरा मेघदूत’। यह एक लम्बी कहानी है। कई परतों में संगुफित इसका कथा-विन्यास औपन्यासिकता लिए हुए है। यह आज के जटिल जीवन-यथार्थ को मूर्त करती है। बेतार के यंत्रों से जुड़े आभासी-संबंधों का यथार्थ, स्थायित्व, जिज्ञासा एवं आकर्षण को लेखिका ने मानसिक ताल-मेल के साथ जोड़ते हुए इसकी समस्याओं को भी उभारा है। आज की युवा पीढ़ी वैवाहिक संबंधों के मामले में काफी स्वच्छंद है। आभासी संचार-स्रोतों के जरिये बनाये गए संबंधों में उनका विश्वास भी अधिक है। आज फेसबुक, मैसेंजर, व्हाट्सएप, चैट आदि द्वारा सर्वाधिक मात्रा में वैवाहिक सम्बन्ध जोड़े जा रहे हैं। किन्तु यह उसी अनुपात में टूट भी रहे हैं। फलतः विवाह-संस्था का ह्रास हो रहा है। ममता जी ने इसकी ओर भी इशारा किया है। वस्तुतः यह आभासी-दुनिया आज हमारी जरूरत बन गयी है। महानगरीय जीवन की

आपा-धापी में सुकून की तलाश और एकाकीपन को भरने का यह सहज माध्यम बन गया है। कहानी में समिधा और श्यामल दोनों चैट करते हुए एक-दूसरे के खालीपन को भरते नजर आते हैं। इसके बावजूद यह क्षणिक संतोष ही दे सकता है। समिधा की यह अनुभूति कि—“यह टुकड़ा-टुकड़ा संग साथ जिसे वह क्या नाम दे, दोस्ती या कटपीस परिचय। आभासी सम्बन्ध जो एक क्लिक पर है या नहीं है।” 6 वस्तुतः यह एक ‘क्लिक बटन’ उस ‘मेघदूत’ की तरह है जो हमारे मनोभावों को हमसे दूर, हमारे किसी अपने तक तुरंत पहुंचा देता है। जिसकी सहायता से हम उनके साथ भावात्मक स्तर पर जुड़ाव महसूस कर पाते हैं। ‘बर्थडे विशेष’, ‘न्यू ईयर विशेष’, ‘क्षमा-याचना’ तमाम तरह की ‘बधाइयां’, ‘शुभकामनाएं’ ‘मनुहार’ आदि पारस्परिक संबंधों की प्रगाढ़ता को अभिव्यक्त करने का माध्यम ही बन गया है।

‘आभासी-पटल’ पर पनपने वाले सम्बंधों में मनुष्य वस्तुतः ‘रोबोट’ बन गया है। तकनीकी-सभ्यता ने हमें ‘विकल्पों का बाज़ार’ दिया है। विकल्पों के इस बाज़ार में अन्य संसाधनों की भांति ‘संबंध’ भी भावात्मक आलंबन बनकर आसानी से प्राप्त होने वाली ‘वस्तु’ बन गयी है। जिसमें न तो उम्र की कोई सीमा है न सरहद की। जीवन की एकरसता से जब

मनुष्य बोझिल हो जाता है तो वह निःशब्द इस ओर मुखातिब हो अपनी दिनचर्या में नई ऊर्जा, उत्साह व स्फूर्ति का संचार कर पाता है। वह अपनी विविध संवेदनाओं के लिए संकेत-चिह्नों का प्रयोग करता है, किन्तु निःशब्द। चैटिंग के दौरान ‘इमोजी’ का बढ़ता प्रयोग साक्ष्य है। कहानीकार ने ‘एकाक्षर प्रेम’ शीर्षक कहानी में संकल्प और खुशी के जरिये इस तथ्य का उद्घाटन किया है “उसने देखा चंद दिनों में उसके सैंकड़ों मित्र बन गए। उसे लगा जैसे वह युवा होता जा रहा है। ..... इसमें सबसे अच्छी बात थी कि सब कुछ घटित होता निःशब्द। यहाँ ध्वनि की जगह चिह्न चलते। हर भूमिका का एक छोटा सा आइकन या चिह्न।” 7 समग्रतः कहा जा सकता है कि ‘दो गज की दूरी’ ‘आभासी-पटल’ पर विकसित संबंधों को नए सिरे से देखने की अपील करती है। यह विशेषतः 2020 के ‘लॉकडाउन’ के दौरान और उसके बाद की स्थितियों के मद्देनजर सामाजिक-संरचना में आए बदलावों का आकलन करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। ‘लॉकडाउन’ के दरमियान घटित जीजीविषामूलक-संघर्ष का दृष्टांत प्रस्तुत करती है। यह हमारी वर्तमान दिनचर्या में ‘आभासी-दुनिया’ की अंतरंगता के महत्त्व को रेखांकित करने में पूर्णतः सक्षम है, सफल भी।

**संदर्भ- सूची - 1.** कालिया ममता, दो गज की दूरी, सेतु प्रकाशन प्रा. लि., पटना - 800004, प्रथम संस्करण-2022, पृष्ठ - 18-20,

2. वही, पृष्ठ- 43,
3. वही, पृष्ठ-43,
4. वही, पृष्ठ- 81,
5. वही, पृष्ठ-70,
6. वही, पृष्ठ- 156,
7. वही, पृष्ठ- 60

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, वीमेंस कॉलेज, कोलकाता - 700003,  
पिन: 800004, मो. 9475396089.

## प्रतिबंधित और गुमनान हिंदी साहित्य

-राजवंती मान

26 जनवरी 1930 को “स्वतन्त्रता दिवस” के रूप में मनाने के लिए सोनीपत (हरियाणा) में तत्कालीन म्यूनिसिपल कमिशनर कांशीराम जुलूस के साथ एक आयोजन में शामिल होते हैं, तिरंगा फहराते हैं और एक नज्म गाते हैं :-

“शहीदों के खूँ का असर देख लेना/ मिटायेंगे जालिम का घर देख लेना किसी के इशारे के मुन्तजिर हैं / बहा देंगे खूँ की नहर देख लेना”। इस नज्म के गाये जाने से ब्रितानी हकूमत की भवें तन जाती हैं। कांशीराम को यह नज्म पढ़ने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया जाता है। इल्जाम लगाया जाता है कि नज्म राष्ट्र-विरोधी है जिसे प्रतिबंधित किया जा चुका है। कांशीराम अपनी सफाई में कहते हैं कि यह नज्म सिर्फ “जोशीली” है राष्ट्र विरोधी नहीं और जिस पुस्तिका से पढ़ी गई है वह अभी तक प्रतिबंधित या जब्त नहीं की गई है। परन्तु उनकी कोई दरखास्त नहीं सुनी गई और उन्हें तुरंत पद से बरखास्त कर दिया गया।

यह प्रशासनिक या राजनीतिक घटना तो थी ही परन्तु यह अंग्रेजी ऐतिहासिक सन्दर्भों और दस्तावेजों के इतर का वह देशी नैरेटिव भी था जिससे ब्रितानी सरकार भयभीत हो उठती थी। क्योंकि यह देशी साहित्य अधिक मुखर और अधिक जन-पक्षीय था इसलिए अविलम्ब न सिर्फ इस साहित्य को प्रतिबंधित कर देती बल्कि अधिकांश कृतियों को जब्त करके देश की सीमाओं से बाहर अर्थात् इंग्लैंड ले जाकर पटक देती। इस साहित्य की खोज में तीन दशक का मेरा सफर भारतीय अभिलेखागार, राज्य अभिलेखागारों और अंततः आखिरी पड़ाव के रूप में

इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी लंदन (अब ब्रिटिश लाइब्रेरी) तक पहुँचा।

यह संकेत भी देती चलूँ कि इस प्रतिबंधित और जब्त साहित्य की अन्वीक्षा के दौरान लन्दन स्थित इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी से मुझे उक्त नज्म भी मिली और वह दो पुस्तकें भी जिनमें यह नज्म प्रकाशित हुई थी। ये दोनों ही पुस्तकें जब्त कर ली गई थीं। एक “शहीदे वतन” जो कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी तथा दूसरी अबोहर पंजाब से छपी “राष्ट्रीय गान” थी। नज्म के रचनाकार खुजंदी थे। अंग्रेजी हुकूमत की आँख में खटकती और जन-मानस को तरंगित और झंकृत करने वाली देशी रचनाएँ यहाँ-वहाँ कई पुस्तिकाओं में कई बार प्रकाशित होती रहती थीं।

‘मर रहे हैं कुत्तों से लोग, फैलते जाते भीषण रोग ।  
भोगते श्रम जीवी दुख भोग, चल रहे हैं झूठे अभियोग ॥  
मिट रहा प्यारा हिंदुस्तान ।

जवानों उठो ! देश की जान’ ॥

व्यवस्थाएँ रचनाकार को सृजन की मानसिक भूमि प्रदान करती रही हैं, वह जिस दुर्व्यवहार का अनुभव करता है, गुजरता है, पीड़ा-व्यथाओं का भोगी होता है, वही अनुभव एवं स्मृतियाँ उसे लिखने को प्रेरित करती हैं। पर जब वह सृजन करता है तो ये ही व्यवस्थाएँ उसे गुनाहगार बना देती हैं क्योंकि यह लेखन उस तरह का नहीं होता जो जन-भावनाओं की उपेक्षा करके मनभावन एहसासों या वाणिज्य की केंद्र में रखकर रचा जाता है। इस साहित्य का महत्व और उद्देश्य भिन्न होता है जो सुकोमल मनोभावों पर

सृजित साहित्य से भी बड़ा हो सकता है और उसका अपना विशेष पाठक वर्ग होता है।

हमने जिसे पढ़ा नहीं, जाना नहीं, देखा भी नहीं, उस प्रतिबंधित और जब्त साहित्य की आँच को लगभग एक सदी बाद महसूस करने के लिए प्रस्तुत है यह लेख। अंग्रेजी हुकूमत की हजार यातनाओं, प्रताड़नाओं से गुजरते हुए रचा गया और तुरंत आँखों से ओझल कर दिया गया यह साहित्य ब्रितानी हुकूमत के लिए भयभीत करने वाला और असहनीय था। अतः उन्होंने उन कृतियों/ रचनाओं को सीआईडी तथा 1860 में बने आई.पी.सी कानून की धारा 124 ए के तहत प्रतिबंधित/जब्त कर लिया। कलमकारों, प्रकाशकों व मुद्रकों को यातनाएं दी गईं, मुद्रणालयों पर छापे डाले गये, जुर्माने और दण्ड दिये गये मगर वे अपने नाम-पते के साथ आगे आते रहे।

यूँ तो अंग्रेजों के भारत में काबिज होते ही प्राच्य ज्ञान, संस्कृति और मूल्यों पर पाश्चात्य असर दृष्टिगोचर होने लगा था। सभ्यताओं के बीच की खाई से जागरूक लोग भारतीय जनता के एक हिस्से के उदीयमान राष्ट्रीय प्रतीक बन रहे थे परंपरागत चिंतन और पाश्चात्य प्रभाव से राष्ट्रीय चेतना का ढांचा गुना-बुना जाने लगा जिसको साहित्य, कला, राजनीतिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों और बौद्धिक-साहित्यिक संगठनों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली। अनेक भाषाओं में भारतीय साहित्यकारों ने अंग्रेजों के अन्यायकारी कुकृत्यों को उजागर करने और जनचेतना जगाने का बीड़ा उठाया।

आजादी के संघर्ष में जलियाँवाला बाग हत्या-काण्ड (1919) और भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की फांसी (1931) इन दो घटनाओं ने पूरे देश को झकझोर कर दिया था। पंजाब से लेकर कलकत्ता तक अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध तीव्र आक्रोश को वर्नाकुलर

और ओरिएण्टल साहित्य में प्रकट किया गया। इन साहित्यकारों में अधिकतर बुद्धिजीवी लेखक नहीं अपितु जनभाषा में लिखने वाले रचनाकार थे जो स्थानीय तौर पर बहुत लोकप्रिय थे। अंग्रेजों की इन नृशंस घटनाओं को हिन्दुस्तानियों ने अपनी आँखों से देखा, अपनी आत्माओं पर झेला और साहित्यकारों ने उसे ही अपनी लेखनी से उकेरा। यह साहित्य जनता का साहित्य था, जनता के द्वारा और जनता के लिए लिखा गया साहित्य।

जालियाँवाला बाग की नृशंसता पर लेखिका को इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी लंदन से प्रतिबंधित और जब्त हिन्दी साहित्य की कई पुस्तकें हासिल हुईं। इनमें बनारस से छपी “जलियाँवाला बाग का महात्म्य”; जबलपुर से 1922 में प्रकाशित “पंजाब का खून”; हाथरस से 1923 में “बागे जलियाँ-सांगीत”; बुलन्दशहर से 1921 में लाला रतनलाल “जमर्द” लिखित “पंजाब का हत्याकाण्ड”; सूरजभान मटेर राजपूत की अमृतसर से “ओडायर शाही यानी मजलूम ए पंजाब” आदि हैं। लाला किशनचन्द ज़ेबा द्वारा 1922 में लिखा और लाहौर से प्रकाशित एक झामा “जख्मी पंजाब” भी है। इसका एक अंश:-

अगर चलती रही गोली, यूँ ही निर्दोष जानों पर।  
तो कौए और कबूतर ही, रहेंगे इन मकानों पर ॥  
मिट डालेंगे गर इस तरह, हाकिम अपनी प्रजा को।  
हुकूमत क्या करेंगे फिर वह, मरघट और मसानों पर ॥  
(“जालियाँ बाग की कराहें” शीर्षक से यह प्रतिबंधित और जब्त साहित्य शीघ्र ही पुस्तक रूप में पाठकों को उपलब्ध होगा।)

साहित्य समाज का दर्पण होता है, दीपक भी होता है और मशाल भी होता है। साहित्य समाज की विचारधारा का प्रतीक भी होता है और अक्स भी होता है। भारत के स्वाधीनता संग्राम के दौरान गुलाम

देश की कलम से जो क्रान्ति-ज्वाला निकली उसने देश की समस्याओं, दुर्गति, अन्यायों, अत्याचारों को उजागर करने, आमजन में जागृति और चेतना उत्पन्न करने के उद्देश्य से जो वृहत, निर्भीक और रक्त-रंजित साहित्य रचा उसने अंग्रेजी सरकार की नींद हराम कर दी। हकूमत पूरी तत्परता से उसे प्रतिबंधित करने के नोटिफिकेशन जारी करती रही और इन प्रकाशनों को चुन-चुन कर जब्त करती रही।

यह साहित्य उसी दौर में लिखा जा रहा था जिस दौर में यूरोप के साहित्यक्षेत्र के कला सम्बन्धी सिद्धांतों को लेकर देश में भी मधुमयी कल्पना, अभिव्यंजनावाद और चित्रमयी भाषा में प्रेम की हृदयस्पर्शी कविताएं लिखी जा रही थीं और पसंद भी खूब की जा रही थी। छायावाद की भूमि नम और उर्वर थी और प्रगतिवाद अपनी उपयोगिता व अर्थवाद के पन्ने खोल रहा था। वहीं दूसरी तरफ कुछ अनजाने अबूझ साहित्यकार देश में गुलामी की छटपटाहट को गम्भीरता से महसूस कर रहे थे और उन बेड़ी-बंधनों को तोड़ने के लिए हर तरह से प्रयासरत थे। ये रचनाएं क्रान्ति-वीरों की देशप्रेम में हिलोरें मारती जवानियों को हवा दे रही थी-‘हमें उनकी तिरछी नजर देखना है/ ये ढाती है क्या क्या कहर देखना है। उधर देखना है सफाई निगाह की/ इधर आजमायशे जिगर देखना है’।

अगरचे इस प्रतिबंधित और जब्तशुदा साहित्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास में वह स्थान नहीं मिला जो मिलना चाहिए था जबकि देश की अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी में सबसे अधिक लिखा गया। देश के मुक्ति-आन्दोलन में हिन्दी स्वदेशी की पहचान के तौर पर बरती जा रही थी। लेकिन हिन्दी के इतिहास की कोई पुस्तक उठाकर देख लीजिए इस साहित्य की मात्र निशानदेही मिलती है और

कहीं तो वह भी नहीं मिलती। यह अचम्भित करता है। अफ़सोस है कि हम आज भी हिन्दी को उस समावेशी स्वरूप में नहीं देख रहे हैं। हिन्दी-प्रेमियों की ओर से जो थोड़ी-बहुत आवाजें यदा-कदा उठती हैं उनके आशय भी अस्पष्ट हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो क्या इतना विपुल साहित्य भण्डार जिसने ब्रितानी हकूमत की चूल्हे हिला दी थी आज तक हिन्दी साहित्य की किताबों, साहित्य के इतिहास, हिन्दी के शोध-प्रबंधों या पाठ्यक्रमों में अपनी महती भूमिका की वजह से सम्मिलित नहीं होता? क्या राष्ट्र, राष्ट्रीय, राष्ट्रवाद और हिन्दी का मंचों से गुणगान करने वालों द्वारा उसे खोज कर प्राप्त करने और शिक्षण-संस्थानों व पुस्तकों में राष्ट्रीय-अस्मिता के प्रतीक इस साहित्य को यथा-योग्य स्थान दिया जाना आपेक्षित नहीं है? इसमें लोक है, जन है, जन-भावना है, जन-साहित्य है, जन-चिन्तन है और उत्कट राष्ट्र-भक्ति है- ‘कब तलक ए नौजवानों मार खाते जाओगे/ हिन्द माता को कहो कब तक रुलाते जाओगे। देश पर कुर्बान होने की तमन्ना चाहिए / नाम क्या कायर कपूतों में लिखते जाओगे’।

बेशक इस साहित्य के गुमनाम रहने के कई कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि इस साहित्य को प्रकाशित होते ही जब्त करके या तो देश के चंद अभिलेखागारों में बन्द कर दिया गया या फिर देश में छोड़ा ही नहीं गया तो क्योंकि ऐसे साहित्य को इतिहास का हिस्सा बनाया जाता। दूसरे यह कि हिन्दी-प्रेमियों ने इस क्रान्तिकारी-साहित्य को इतिहास का हिस्सा मान कर हाथ नहीं डाला, उधर इतिहासकारों ने इसे साहित्य मान कर अपने पारम्परिक स्त्रोतों में बहुत अधिक स्पेस नहीं दिया। मगर साहित्य समाज का दर्पण, दीप, या मशाल है तो समाज, साहित्य और इतिहास भी आपस में जुड़े हुए हैं। वे एक दूसरे

के विरुद्ध नहीं, अपितु पूरक हैं। इतिहास के बगैर साहित्य अधूरा है और साहित्य के बगैर इतिहास अध्ययन सम्पूर्ण नहीं।

### साहित्यिक धरोहर के प्रति उदासीनता

यह कहने में भी कोई हर्ज नहीं की हम अपनी ऐतिहासिक साहित्यिक धरोहर के प्रति अति उदासीन हैं। यहाँ एक उल्लेख पाठकों के समक्ष रखना चाहूंगी। आपको शायद याद हो कि निर्मल वर्मा ने उनके यात्रावृत्तांत “चीड़ों पर चांदनी” में सागा-ग्रन्थों का जिक्र किया है। इन ग्रन्थों का सम्बन्ध आइसलैंड से है। यहाँ उस छोटे से देश आइसलैंड की मिसाल देना प्रासंगिक है। उनके 11-13वीं सदी के दौरान रचे गये सागा-ग्रन्थों को 17वीं सदी में डेनमार्क ले गया। आइसलैंड के बाशिंदों के लिए उनके साहित्यिक धरोहर से बिछोह टीस की तरह था। तथ्यात्मक जानकारी जुटाने की गरज से लेखिका ने इस सम्बन्ध में आइसलैंड के पांडुलिपि विभाग से पत्राचार किया। मेरी ईमेल के उत्तर में (जिसे मैं यहाँ अनुवादित कर प्रस्तुत कर रही हूँ) उन्होंने लिखा —

“आइसलैंड की मध्यकालीन पांडुलिपियाँ डेनिश किंग के कहने पर 17वीं शताब्दी में डेनमार्क ले जाई गई। एक आइसलैंडी व्यक्ति अर्नी मग्नसुन (Arni Magnusson) द्वारा इन्हें 17वीं सदी के आखिर और 18वीं सदी के शुरू में अवाप्त भी कर लिया था परन्तु यहाँ कोई ऐसी संस्था न थी (जो उन्हें संरक्षित कर पाती) सो यह संग्रह उनकी इच्छानुसार कोपेनहेगेन यूनिवर्सिटी को दान कर दिया। परन्तु 20वीं सदी के प्रारम्भ से ही आइसलैंडियों द्वारा बारम्बार यह मामला उठाया जाता रहा और अंततः उनका प्रयास सफल हुआ। 1971-1996 के बीच सारी तो नहीं लेकिन अधिकतर पांडुलिपियाँ उन्हें मिल ही गईं”।

सारांश यह कि उन्होंने अपने निरंतर प्रयासों से बीसवीं शताब्दी में इन्हें पुनः प्राप्त करके ही चैन लिया।

हम अपनी स्वतन्त्रता की 75वीं वर्षगाँठ पर अमृत महोत्सव मना रहे हैं, क्या अभी तक किसी सरकारी संस्था, विश्वविद्यालय के हिन्दी या इतिहास विभागों या अन्य संगठन द्वारा ऐसी कोई कोशिश हुई है कि गुलामी के दौर में तलवार की धार पर चलकर रचनाकारों ने जो चेतनता का मूल-साहित्य रचा जिसमें आमजन की छटपटाहट है, आकांक्षाएँ हैं, दुःख-दर्द हैं उन हजारों जब्त पुस्तकों को खोज निकाला जाए ? और जो प्रकाशन ब्रिटिश हुकूमत यहाँ से ढोकर ले गई उन्हें वापिस लाने के प्रयास किसी स्तर पर किये जाएँ ? क्या यह हमारी सोच, इतिहास-बोध, परम्परा, साहित्यिक-दृष्टि पर प्रश्न चिह्न नहीं है कि आज तक हम उन कलम-साधकों के नामों और रचनाओं से अनभिज्ञ हैं ?

### इंडिया आफिस लाइब्रेरी लंदन

अगर देखा जाए तो 1905 से लेकर और विशेषकर 1919-21 व 1931-32 में राजनीतिक सरगर्मियों पर सबसे अधिक साहित्य रचा गया। इसने आजादी के संघर्ष को धार देने में विशिष्ट भूमिका निभाई। ब्रितानी हुकूमत द्वारा देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से सरकार के विरुद्ध जो भी साहित्यिक पुस्तकें और पेम्फलेट छपीं, उन्हें आपत्तिजनक मान कर जब्त करके इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी लंदन में स्थानांतरित कर दिया गया था। विभिन्न भाषाओं का विस्तृत संग्रह दशकों तक उनकी अलमारियों में तालाबंद रखा गया। 1947 के बाद ही इसे अलमारियों से निकाला गया और इसके विस्तृत कैटलॉग तैयार करने का सिलसिला शुरू किया गया। परन्तु 1967 तक इसको अलग ही ‘गोपनीय संग्रह’ के तौर पर

रखा गया। अस्सी के दशक में यह सारा साहित्य ब्रिटिश लाइब्रेरी लंदन में शिफ्ट कर दिया गया जो अब शोधकर्ताओं के लिए खुला है। यहाँ पूरे भारतवर्ष से जब्त किये गये हिन्दी भाषा के उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में प्रकाशित तथा प्रतिबंधित प्रकाशनों, दस्तावेजों-पुस्तिकाओं की संख्या अट्ठाईस हजार से भी अधिक है।

1930 से 1932 तक विशेषकर सरदार भगत सिंह और साथियों की फांसी के विरोध में जो क्रान्तिकारी हिंदी काव्य साहित्य लिखा गया और जिसे प्रतिबंधित कर जब्त कर लिया गया उसे मैंने अपनी सद्य प्रकाशित पुस्तक “कलम की आँच” में समाहित किया है। कुछ प्रतिबंधित और जब्त पुस्तकें यथा-बलिवेदी पर ‘सरदार’, 1931; आजादी की तोप, काशी, 1930; अंग्रेजों की बोलती बंद, आगरा, 1931; चंद्रशेखर आजाद, कानपुर, 1931; राष्ट्रीय आल्हा यानी भगतसिंह की लड़ाई, कानपुर 1931; कजली बमकेस उर्फ भगतसिंह की फांसी, गया और बनारस, 1931; खून के आंसू, कोलकाता, 1931; जिगर के टुकड़े, हावड़ा, 1931; क्रांति का पुजारी, 1931; मर्दाना भगत सिंह,

अलीगढ़, 1931; वीरों का झूला, काशी, 1931; फांसी के शहीद, प्रयाग 1931; सरदार भगतसिंह की नई कजरी, बनारस 1931; खून के आंसू, मथुरा 1931; अंग्रेजों की अकड़फूँ निकल गई, आगरा, 1931; शहीदे पंजाब, 1931; लाहौर की सूली, गया, 1931; लाहौर की फांसी अर्थात् भगतसिंह का तराना, बनारस, 1931; शहीदों की गर्जना, दिल्ली, 1931; राष्ट्रीय गान, अबोहर (पंजाब), 1931 आदि इस पुस्तक में शामिल हैं।

अतः हिन्दी की राष्ट्रीय धारा का प्रतिबंधित काव्य साहित्य जो पंजाब से लेकर बंगाल तक रचित-प्रकाशित हो रहा था यह उन अनचिन्हे कलम-साधकों के उद्गारों को सामने लाता है जो हर तरह की यातनाएं/प्रताड़नाएँ सहन करते हुए जन-आकांक्षाओं के संवाहक बने रहे। उम्मीद है कि हमारे हिन्दी साहित्यकार इस राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत साहित्य की प्रासंगिकता, अर्थवत्ता, अवदान और उपादेयता का आकलन जरूर करेंगे।

**सम्पर्क :-** डॉ राजवंती मान ; मोब. : 98146 76936 ; ईमेल : dr.rajwantimann@gmail.com  
एफ 2 / 301, माया गार्डन सिटी ; चंडीगढ़-अम्बाला रोड़, जीरकपुर 140603 (पंजाब)

### स्मृति-शेष

साहित्यक जगत के सुप्रसिद्ध लेखक एवं विचारक **रमेश कुंतल मेघ**  
व **डॉ. धनंजय वर्मा** के दुखद अवसान पर मुक्तांचल परिवार मर्माहत है  
और उनके प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि ज्ञापित करता है।

## शैक्षिक क्षेत्र में साहित्यिक शोध: सीमाएँ, समस्याएँ और संभावनाएँ

-डॉ. एस कृष्ण बाबू

अनादि काल से खोज और अन्वेषण मानव मात्र की सहज प्रवृत्ति रही है। उसकी इसी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे अनेक सभ्यताएँ विकसित हुईं और उन सभ्यताओं के लिए उपयुक्त रूपरेखाएँ बनीं। मनुष्य ने प्रारंभ में भाषा का आविष्कार किया और उसके द्वारा मानवीय विचारों का आदान-प्रदान संभव हुआ। मानव संचार के लिए एक सुविधाजनक मार्ग निर्मित हुआ। मनुष्य ने आए दिन चर्चा-परिचर्चाओं और तर्क-वितर्कों, संगोष्ठियों तथा सम्मेलनों द्वारा अपार ज्ञान का भंडार विकसित किया। लिपियों का आविष्कार किये जाने के पश्चात ज्ञान का यह अपार भण्डार लिपिबद्ध किया गया। वर्तमान समाज में उपलब्ध हर वस्तु मनुष्य की शक्तिशाली जिज्ञासा और उत्सुकता का ही परिणाम है। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि मनुष्य ने अपनी इस जिज्ञासा को तृप्त करने के लिए ही शोध का सहारा लेना प्रारंभ किया।

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में मनुष्य की आँखों के सामने दिखाई देनेवाली हर वस्तु गवेषणा करने की मानवीय प्रवृत्ति का ही परिणाम है। इसी प्रवृत्ति के कारण आए दिन प्रौद्योगिकी का विस्फोटक विकास हुआ जिसमें मानव की शोध करने की उत्कट अभिलाषा का अद्भुत योगदान है। 21वीं सदी में तो टेलीविजन, कंप्यूटर, इंटरनेट, फेसबुक, यूट्यूब, मोबाइल आदि अनेकानेक नव्यतम उपकरण अथवा आयाम और उनके नये-नये मॉडल बाजार में मिल रहे हैं जो ऊपर कही गई मानवीय प्रवृत्ति के त्वरित गति से अग्रसर होने के संकेत माने जा सकते हैं। लेकिन इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि केवल प्रवृत्ति के रखने मात्र से खोज अथवा गवेषणा सफल नहीं होती

और विकास संभव नहीं होता। इसके लिए मानव को शिक्षा का सहारा लेना अत्यन्त आवश्यक होता है, जो मानव व्यक्तित्व में सकारात्मक संस्कार एवं आदर्श मूल्य विकसित करती है। विश्व मानव संस्कृति के वर्तमान स्तर तक पहुँचने के लिए शिक्षा का योगदान स्वतः स्पष्ट है। एक आर्योक्ति के अनुसार-

“नास्ति विद्या समं चक्षुः। नास्ति सत्यं समं तपः।

नास्ति रागं समं दुःखं। नास्ति त्यागं समं सुखं॥

इस श्लोक में शिक्षा को मनुष्य का सही चक्षु माना गया है, क्योंकि वही उसे सामनेवाली वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति को देखने और सही दिशा में परखने की क्षमता प्रदान करती है। एक अन्यतम सूक्ति का कथन है,

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं पच्छन्नं गुप्तं धनम्?

विद्या भोगकरी यशस्सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः

विद्या बंधुजनः विदेशगमने विद्या परा देवता

विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्या विहीनःपशुः

इस श्लोक के अनुसार शिक्षा ही मानव के आन्तरिक सौन्दर्य की श्री वृद्धि करती हुई उसे बौद्धिक रूप से संपन्न बनाती है। वही उसे यश के साथ-साथ मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करती हुई उसे संपन्न बनाती है। वास्तव में कहा जाय तो वह मनुष्य के लिये गुरुओं का भी गुरु है। शिक्षित व्यक्ति अपनी संप्रेषण क्षमता के कारण विदेशों में जाकर भी अपना काम भली भाँति कर पाता है चाहे वहाँ उसके कोई बंधुजन हों या न हों। राजा लोग संपन्न लोगों की नहीं परन्तु विद्यावान लोगों की पूजा करते हैं। इसीलिये कहा गया है कि विद्याविहीन व्यक्ति पशु के समान है।



मानव जीवन को सार्थक बनाने की दिशा में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली शिक्षा को इतना महत्व दिये जाने के कारण ही भारतीय संस्कृति विश्व विख्यात हो पाई।

केयूरवान न भूषयंति पुंस्त्रं हारं चन्द्रोज्ज्वला  
न स्नानं, न विलेपनं, न अलंकरोति मूर्दजाः  
वाण्येकं समलंकरोति पुंस्त्रं या संस्कृताधार्यता  
क्षियंते अखिलभूषंति सततं वाक्भूषणम भूषणम्।  
लेकिन आज के जमाने में शिक्षा क्षेत्र को कई विकृतियों और विसंगतियों का सामना करना पड़ रहा है। मानव जीवन के अन्य क्षेत्रों की ही तरह इसमें भी मूल्यह्रास और मूल्यहीनता का व्यापक प्रसार दिखाई दे रहा है। इस दिशा में सबसे खटकने वाली बात तो विद्यार्थियों के ज्ञान के स्तर की है। यह बात आज के विद्यार्थियों में ही नहीं, बल्कि अतीतवाले कल-परसों के बच्चों में भी देखने को मिलती है जो आज के बच्चों के अध्यापक बने हुए हैं। इस प्रकार स्तर की कमी की बीमारी का क्या भविष्य हो सकता है, इसका हम आसानी से अन्दाजा लगा सकते हैं।

जहाँ तक वैज्ञानिक शोध का संबंध है, उसमें भाषाई ज्ञान के स्तर का कोई विशेष महत्व नहीं रहता। तथ्यों पर तर्क-वितर्क करके विविध समीकरणों के आधार पर उपयोगी निष्कर्ष निकालने का इस क्षेत्र में विशेष महत्व रहता है। इसलिए इस क्षेत्र में भाषाई ज्ञान, मानवीय भाव-बोध और संवेदनशीलता के लिए कोई स्थान नहीं होता। लेकिन साहित्यिक शोध के क्षेत्र में बात कुछ भिन्न ही होती है। उत्कृष्ट ग्रंथों को पढ़ने की आवश्यकता तो वैज्ञानिक एवं साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में किये जानेवाली शोध के लिए अनिवार्य है। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि साहित्यिक क्षेत्र में शोध करनेवाले शोधार्थी और उनके निर्देशकों में भी अध्ययनशीलता की कमी पायी

जा रही है। शैक्षिक क्षेत्र में शोध कार्य करके उपाधियाँ प्राप्त करने की और उन उपाधियों के आधार पर आजीविका प्राप्त करने अथवा अपने व्यवसाय में पदोन्नतियाँ हासिल करने की अभिलाषा मात्र देखी जा रही है। ऐसी स्थिति में अध्ययन को गंभीरता से लेनेवाले शोध निर्देशक और शोधार्थियों का मिलना बहुत ही मुश्किल हो गया।

साहित्य यदि लोक कल्याण के उद्देश्य से रचा नहीं जाता और उसके कथ्य द्वारा मानव हित संभव न हो तो उस साहित्य का सृजन व्यर्थ माना जा सकता है। इसी प्रकार साहित्य शोध की यदि कोई विशेष उपादेयता न हो तो वह शोधार्थी को उपाधि दिलाने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता। लेकिन विचारणीय बात यह है कि इस साहित्यिक शोध का क्या लक्ष्य होगा? उत्तर में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गुणवत्तापूर्ण निष्कर्ष निकालते हुए मानव व्यक्तित्व को और उसकी संप्रेषण क्षमता को विकसित करने की शक्ति और विविध समस्याओं से जूझनेवाले उसके मन को सुकून पहुँचाने का सामर्थ्य रखते हुए ही साहित्यिक शोध किया जाना चाहिए। वास्तव में साहित्यिक शोध की यह प्रक्रिया उसके लिए विषय चयन से ही शुरू हो जाती है। कहा जाता है कि विषय शोधार्थी की रूचि के अनुकूल ही निर्धारित किया जाना चाहिए। लेकिन जब साहित्यिक शोधार्थी किसी साहित्यिक सामग्री का अध्ययन ही नहीं करता तो उसमें कोई रूचि कहाँ से पैदा होगी? शोध निर्देशक भी उसे रोचक एवं उपयोगी सामग्री पढ़ने के लिये बाध्य नहीं करता। वह तो अपनी रूचि के अनुसार कोई न कोई संगत अथवा असंगत विषय दे देता है जिसके लिए सामग्री जुटाने में ही शोधार्थी का बहुत समय व्यतीत हो जाता है। अन्त तक आते-

आते शोधार्थी जल्दबाजी में रहता है और शोध प्रबंध प्रस्तुत हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत अनेकानेक शोध प्रबंध विश्वविद्यालयों में देखने को मिलते हैं जिन्हें कोई सहृदय पाठक पढ़ नहीं सकता अथवा पढ़ना नहीं चाहता।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शैक्षिक क्षेत्र में साहित्यिक शोध करने वाले और कराने वाले दोनों व्यक्तियों को शोध कार्य के लिए उद्यत होने के पहले ही उपर्युक्त विविध बातों पर ध्यान देना चाहिए और ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों को साधने में सुविधा हो सके। स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद भी यदि किसी शोधार्थी की भाषा में व्याकरण की गलतियाँ हों और शैलीगत आकर्षण न हो तो उसे पहले गहरे अध्ययन के द्वारा अपने भाषाई स्तर को बढ़ाना चाहिए। शोध निर्देशक भी अन्य प्रशासनिक कार्यों की तुलना में अध्ययन

कार्य और शोध निर्देशन के लिए अधिक समय दे पायें तो कितना अच्छा होगा। लेकिन ऐसा कहाँ हो रहा है? अपनी महत्वाकांक्षाओं को साधने की उनकी ललक के सम्मुख यह कार्य उन्हें बिल्कुल नगण्य एवं व्यर्थ दिखाई देता होगा। जब तक इन स्थितियों में सुधार नहीं आएगा, तब तक शैक्षिक क्षेत्र में साहित्यिक शोध की गुणवत्ता नहीं बढ़ेगी। लेकिन यह सुधार लाने के लिए आजकल के समाज में कोई व्यक्ति अथवा अभिकरण निर्दिष्ट नहीं है। ऐसी स्थिति में शोधार्थियों और शोध निर्देशकों को अपने आप यह कार्य करना होगा। स्वैच्छिक संस्थाएँ इस दिशा में कुछ कार्य कर सकती हैं। लेकिन उनमें प्रतिबद्धता बढ़ाने के लिए सरकार को उनका समर्थन करना चाहिए। उन्हें उचित दिशा में प्रेरित और प्रोत्साहित करना होगा।

**संपर्क :** फ्लेट न0 201, डोर न0 4-62-19/3, श्री शुसीलियम, लवसनवे कॉलोनी,  
एम.भी.भी. बील्डर्स ऑफिस के किनारे, लवसनवे कॉलोनी के सामने, विशाखापट्टनम,  
पिन न0 530017, मोबाइल नंबर : 8885990444

### स्मृति-शेष

सुप्रसिद्ध प्राध्यापक, लेखक एवं विचारक **डॉ. आशुतोष सिंह, डॉ. रेखा सिंह व डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य** के दुखद असामयिक निधन पर मुक्तांचल परिवार मर्माहत है, और उनके प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि ज्ञापित करता है।

## स्त्री अस्मिता की मौन अभिव्यंजना : सुधा अरोड़ा की कहानियाँ

-मनोज कुमार दास

सातवें दशक की चर्चित कथाकार, कवयित्री और सामाजिक कार्यकर्ता सुधा अरोड़ा स्त्री लेखन की एक सशक्त स्तंभकार हैं। उन्होंने अपनी लेखनी में जहाँ शोषित, दमित स्त्री की त्रासदी को उजागर किया है, वहीं समाज के विभिन्न पक्षों को बड़ी बेबाकी से उभार कर उसे प्रतिरोधी स्वर देने का भी प्रयास किया है। सुधा अरोड़ा का रचना संसार ज्यादातर हमें उन परिस्थितियों से अवगत कराता है जो हम देखते हुए भी देख नहीं पाते। चार दीवारों में लिपटी मानसिक प्रताड़ना बंद दरवाजे के दरकते दरारों से बाहर निकलने की कोशिशें करती हुई नजर आती हैं। उनकी अनुभवी जीवन दृष्टि उनके लेखन को सजीव बनाती है।

सुधा अरोड़ा की आत्मसजगता, लेखकीय प्रयोजन, चुनौतियाँ ये सभी उनके पक्ष तथा प्रतिरोध की ओर प्रत्यक्ष संकेत करते हैं। उनके लिए लेखन मन बहलाने का साधन कभी नहीं रहा। सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते उन्होंने स्त्री पक्ष को बखूबी देखा-महसूस किया है। अनुभवी सर्जक होने के नाते उनकी कहानियाँ समकालीन रचना परिदृश्य के मापदंडों में अग्रणी हैं। 'बुत जब बोलते हैं' की भूमिका में उन्होंने लिखा है— "इसी लेखन ने मुझे अपने-आपसे लड़ना और अकेले जीना सिखाया है। सामाजिक संस्कारों और द्वंद्वों से उबारकर लेखन ही यथार्थ की खुरदुरी ज़मीन पर चलने को मजबूर करता है और संवेदना को खंडित होने से बचाता भी है वरना ज़िन्दगी के हथौड़े तो हमें हर वक्त पटखनी देने को तैयार खड़े रहते हैं। एक

लेखक के लिए कलम एक बड़ी भूमिका अदा करती है— एक सच्चे हमदर्द और थेरेपिस्ट की।"

'बुत जब बोलते हैं' कुल दस छोटी-बड़ी कहानियों का संग्रह है, जिसका प्रकाशन लोकभारती से 2015 में हुआ। संकलन की कहानियाँ स्त्री जीवन की विविध पक्षों को तराशती हैं। सभी कहानियों के केंद्र में स्त्री है, जो नए-नए किरदार और चेहरे लिए सामने आती है।

संकलन की पहली कहानी 'उधड़ा हुआ स्वेटर' प्रेमपरक कहानी है। कहानी दो वैवाहिक जीवन की विपरीत परिस्थितियों को बयान करती है। कहानी के केंद्र में आशीष कुमार और शिवा है, जो उम्र के ऐसे पड़ाव में ठहर चुके हैं जहाँ प्रेम में देह के आकर्षण का कोई विशेष महत्व नहीं है। जरूरत है तो सहज अपनत्व की, एक दूसरे के प्रति ईमानदारी की, आत्मीयता की, पारदर्शी मानवीय संबंधों की जिसके सहारे वह आगे का सफर पूरा कर सकें। कहानीकार ने प्रेम की मांसल तस्वीर को जिस लहजे से पूरी कहानी में नाकारा है उसे हम निम्न उद्धरण में देख सकते हैं— "उस मुरझाये चेहरे को दो बूढ़ी हथेलियों ने भीगे पत्तों की तरह जैसे ही थामा, चेहरे ने अपने को उस अँजुरी में समो दिया। गुलाब की पंखुरियों—सा इतना मुलायम स्पर्श जैसे कोई रूई के फाहों से घाव सहला रहा हो।" 2 सुधा जी ने 'उधड़े हुए स्वेटर' को जिस कौशल से बुना है, उसकी बुनावट की प्रेम के मायने ही बदल दिए हैं। यह कहानी एक तरफ शिवा के माध्यम से पुरुष प्रधान व्यवस्था में कसमसाती स्त्री की व्यथा कहती है तो दूसरी तरफ आशिष

कुमार के माध्यम से एक सफल वैवाहिक जीवन को प्रस्तुत करती है। एक ओर प्रेम के ऐसे गहरे निशान उभरते हैं जो पीड़ादायक और असहनीय हैं जिनके निशान समय के साथ-साथ और गहराने लगते हैं, वहीं प्रेम का ऐसा स्वरूप विद्यमान है जहां बड़े सलीके से उसे धागों में समेट कर एक स्वेटर बनाया गया है, जिसके उधड़ने के बाद भी रिश्तों की गरमाहट हमेशा बरकरार है। वैवाहिक संबंधों के टूटने-बिखरने से नहीं बल्कि उसके जुड़े रहते भर ही उनमें आयी दूरियाँ रिश्तों में संवेदनाओं को मारती चलती है और अंततः –“कितनी औरतें अपने पतियों के लिए ऐसे स्वेटर बुनती हैं पर वे उधड़ने के बाद ऐसे सहजनेवाले हाथों में कहाँ पहुँच पाते हैं। सारे स्वेटर हवा में तैरते रहते हैं और कोई हाथ उन्हें लोकने के लिए आगे नहीं बढ़ता। एक दिन वे सारे स्वेटर पूरे आसमान को ढंक लेते हैं और उजाले की एक किरण को भी धरती तक पहुँचने नहीं देते।”

संकलन की शीर्षक कहानी ‘बुत जब बोलते हैं’ में सुधा जी ने पूँजी और बाजारवाद की विकृतियों, क्रूरताओं एवं षड्यंत्र का प्रतिपक्ष रचा है। प्रोफेशनलिज्म की अंधी दौड़ एवं बाजारी प्रतियोगिता के प्रतिस्पर्धा की वेदी पर डॉक्टर युगल देवाशीष और देवयानी का बड़ा बेटा सिद्धार्थ आत्महत्या की त्रासदी को भुगतता है। इस घटना से आहत माँ जहाँ बुत बन जाती है, वहीं पूँजी और प्रतिष्ठा के चकाचौंध में अन्धे पिता के ऊपर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। पूँजी की सर्वशक्तिमान सत्ता ने आज रिश्ते-नातों की गरिमा एवं आत्मीयता को बेहद मलिन कर दिया है। किन्तु कहानीकार ने देवयानी और उसके छोटे बेटे अभिजीत के मार्फत इसका प्रबल प्रतिकार किया है। कड़ाके की सर्दी की रात में विवाहोत्सव के इवेंट मेनेजर द्वारा गरीब बच्चे को केवल बाघंबर पहनाकर शिव की भूमिका में खड़ा देखकर देवयानी

की आहत ममता तड़प उठती है। वह न केवल उस बालक के पक्ष से आयोजकों को लताड़ने को प्रस्तुत होती है बल्कि दयार्द्र होकर पति द्वारा वैवाहिक जोड़े को गिफ्ट में दिया जाने वाला लिफाफा बच्चे को दे देती है। पति के जवाबतलब के बदले में देवयानी का आक्रोश पूँजीवादी व्यवस्था के मुँह पर करारा तमाचा जड़ता है –“हाँ पैसे! तुम्हारे पैसे? शर्म आती है यह कहते हुए? यही पैसे थे न तुम्हारे, जब नोटों के बण्डल पे बण्डल भर कर ले गए थे सिद्धू को मेडिकल में एडमिशन दिलाने।....तुम्हारे इन नोटों ने मेरे बेटे की जान ले ली।...बाप नहीं हत्यारे हो तुम।”

शाही अंदाज में मनाए जा रहे विवाहोत्सव प्रसंग के बहाने कहानीकार ने पूँजीवादी धन संपन्न वर्ग की गरीब मानसिकता पर जबर्दस्त नोटिस लिया है। जहाँ एक तरफ निर्लज्ज पूँजी प्रदर्शन के फिजूल प्रयासों पर पैसे पानी की तरह बहाए जाते हैं वहीं दूसरी तरफ नीलकंठ बनाये गए निर्धन-लाचार बच्चे को महज पाँच सौ रुपये में भीषण सर्दी की रात में खड़ा करवाया जाता है। तमाम सांस्कृतिक अवरोधी परिस्थितियों के मध्य सुधा अरोड़ा का कहानीकार अपने कथा साहित्य के ब्याज से भारतीय संस्कृति में अपनी गहन आस्था प्रकट करता है। विशेषतया उनकी स्त्री पात्र प्रेम, संवेद, स्नेह, कोमलता, दया, कल्याण जैसे मानवीय मूल्यों की रक्षा बाजारी समय में भी कर ले जाती है। माँ शब्द से गहरी आत्मीयता और अनुरक्ति का अनुभव करती देवयानी का उक्त कथन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है – “मुझे ममी मत बोला कर तू। माँ ममी से ज्यादा अच्छी लगती है।”

काँसे का गिलास ‘कहानी’ वर्तमान पीढ़ी के अन्दर उपज रही अत्याधुनिकताबोध और असंवेदनशीलता को उजागर करती है तथा पुरानी पीढ़ी जो इस संवेदनात्मक गतिरोध के प्रत्यय को तोड़ती नजर आती है, का आख्यान किया गया है। कहानी का कथ्य

कुछ इस प्रकार से चलता है कि चिल्की के काँच का गिलास टूटने पर दादी उसे काँसे की गिलास की कहानी सुनाने लगती है, जो दादी की दादी का था। दादी को इस गिलास के प्रति विशेष लगाव था जिसे वह अपने जी जान से संभाल कर रखती हैं। एक दिन गिलास के गुम हो जाने पर दादी की अवस्था खराब हो जाती है पर मिलते ही वह प्रसन्न हो उठती हैं। असल में यह गिलास स्त्रियों के अपने मायके से लगाव को दर्शाता है, जो हर भारतीय स्त्री के मन में एक अमूल्य निधि के रूप में विद्यमान है और वह उसे समेटे रहती है—“तुम लोगों के लिए वह एक पतरे का गिलास है। मेरे लिए तो वो मेरा लाहौर है, मेरा वेड़ा है, मेरा पेका (मायका) है।”

कैरियर, भविष्य की ओर इशारा करते हुए वर्तमान के लीक से हटती जा रही मनुष्यता रिश्ते और संवेदनाओं को भी दरकिनार करने लगी है। वह नहीं जानती कि भविष्य का सीधा सम्बन्ध उसके और उसके ही वर्तमान से सम्बंधित होंगे। नेहा और निखिल का भी सम्बन्ध आधुनिकता और भूमंडलीकरण के चपेट में नजर आता हुआ दिखता है। कहानी में दादी इस मसले को बखूबी समझती हैं। इसलिए वे संबंधों को हर संभव जोड़ने का प्रयास करती हैं—“रिश्तों को इस तरह मत तोड़ो नेहा! अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है। कैरियर बनाने के बहुत-सारे मौके आयेंगे। निखिल नहीं चाहता तो मत जाओ। साम-दाम-दंड-भेद हर तरह से समझाने की कोशिश की थी मैंने उसे—कम-से-कम चिल्की के बारे में सोचो, वह माँ के बगैर रह पायेगी ?”

पर आज कल के औपचारिक संबंधों ने जीवन को बाहर से गति तो दे रखी है, पर भीतर-भीतर उसे उतनी ही खोखली करती जा रही है, जिससे थोड़ी सी हलचल में वह छटपटाती नजर आती है—“बाद में पता चला, कैरियर और जॉब का तो बहाना था,

इसकी तह में नेहा और निखिल की आपसी अनबन थी। नेहा गई तो चिल्की को गोद से उतारकर ऐसे रखा जैसे चाभी-भरा प्लास्टिक का खिलौना ज़मीन पर धर देता है।”

‘काँच के इधर-उधर’ कहानी महानगर में रहने वाले लोगों की सोच और उनके बौद्धिक होने का अविवेक प्रमाण प्रस्तुत करती है। यह एक दादी और पोती चिल्की के माध्यम से रोजमर्रा जीवन जीने को मजबूर मजदूर और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले अभिजात्य वर्ग की अपनी स्वार्थसिद्धि और घरेनुमा संकुचित मानसिकता की कथा है। लेखिका इस कहानी के सन्दर्भ की भूमिका में लिखती हैं— काँच के इधर-उधर’ में मोबाइल क्रेश में मूक बधिर मजदूर के दो बच्चों से मुलाकात और उनकी मासूम आँखें ज़ेहन में कहीं दबी रह गयीं। ग्यारह साल बाद जब अपने टावर की ऊपरी मंज़िल पर मक्खियों के एक बड़े-से छत्ते को तोड़ने की क़वायद होते देखी तो जाने कैसे इतने लंबे अन्तराल में भीतर दर्ज हुई दोनों घटनाएँ एकाकार होकर एक कहानी के वितान में समा गयीं।”

जिस निष्ठुरता से वह मधुमक्खियों को अपने घरों में आने नहीं देते ठीक उसी तरह उनके बच्चे भी अगर किसी मजदूर के बच्चों से दोस्ती कर लेते हैं तो वह सम्बन्ध फ्लैट के बाहर तक ही सीमित रखें। अगर वह आएँ भी तो नौकरों के लिए बने लिफ्टों का प्रयोग करें क्योंकि उससे वहाँ रहने वाले लोगों को असुविधा होती है पर यह वही लोग हैं—“जो हर नवरात्र में अष्टमी के दिन ऐसी कुँवारी कन्याओं को दूँद-दूँदकर लाने और उनके चरण प्रक्षालन की क़वायद करती हैं, उन्हें पूरी, छोले और हलवे के प्रसाद के साथ लाल चुनरी और चूड़ियों का उपहार भी देती

हैं, पर बाक्री के दिन उनसे अपने कपड़े समेटकर चलती है।”

पर्यावरण के प्रति इस उच्च वर्गीय धनाढ्य लोगों की उदासीनता और संवेदनहीनता उस समय भी दिखाई देती है जब वे मधुमखियों को फ्यूमिगेटर के जहरीली गैस से उनका खात्मा करने में थोड़ा भी नहीं सोचते—“सामने के पूरे रास्ते पर हजारों मखियाँ बिछी पड़ी थीं। मृत। बेजान। निश्चेष्ट। दूर कोने में मोटे झाड़ू से एक स्वीपर उन्हें बुहार रहा था। हवा में अब भी छितरायी गयी गैस की गंध थी।”

वर्तमान पर्यावरणीय संकट के सन्दर्भ में कहानी गंभीर संवीक्षा की मांग करती है।

नारी जीवन अनेक विसंगतियों से विद्यमान हैं। एक छोटी बिटिया से स्त्री बनने तक के सफ़र में न जाने कितनी पड़वों को पार करते हुए उसे आगे बढ़ना पड़ता है। सहज स्नेह की आकांक्षा रखने वाली स्त्री मन अनगिनत बार दबोची, सतायी जाती है। वह घरेलू हिंसा की शिकार बनती नजर आती है तो कभी अपनी अस्मिता की रक्षा करती, कभी विवशता के कठघरे में मौन दिख जाती है। कभी व्यक्त आक्रोश से लिप्त विद्रोही भी करार दी जाती है। ‘एक माँ का हलफनामा’ और ‘पीले पत्ते’ में इसी तरह नारी की व्यथा कथा व्यक्त हुई है। ‘एक माँ का हलफनामा’ स्त्री जीवन की अनुभूतियों को साझा करती बयान है। ‘तेजस्विनी’ जैसी लड़कियाँ अपने मायके में अल्हड़, बेफिक्री, जिन्दादिली, निश्चिन्त और मस्ती भरी जिंदगी जीती हैं लेकिन जब वे वैवाहिक जीवन में प्रवेश करती हैं वह उतनी ही शांत होने लगती हैं। उनके जीने का मकसद कब खत्म होने लगता है पता ही नहीं चलता। औसत विवाहित लड़कियों की भांति तेजस्विनी भी ससुराल जाने के बाद बदली-बदली और कम बोलने लगती है—“हमने उसके कम बोलने से छूट गयी दरारों से उसके अन्दर झाँकने की कोशिश ही नहीं की। नहीं पता था कि कम बोलने के

साथ वह कम जीना भी शुरू कर देगी और एक दिन...एक दिन आप मुझसे पूछेंगी कि उसकी मौत का जिम्मेदार मैं किसे ठहराऊँ। सच, उसने कभी किसी के बारे में कुछ नहीं कहा। अपने सास-शौहर, ननद-जिठानी किसी की कभी कोई शिकायत नहीं।”

अतः आज ऐसी कई तेजस्विनी संकट के घेरे में हैं और उनके मौत का जिम्मेदार सबसे निकटतम व्यक्ति ही ठहरता है। पर यह समाज का चिरपरिचित अनभिज्ञ सत्य है। समाज में बेटियों को बेटे की तुलना में कम आंक कर देखा जाना, बेटे द्वारा वंश चलने की जो रूढ़िवादी सोच है, कहानी इसका प्रतिरोध करती नजर आती है - “अब उस ज़माने की औरतें तो ऐसे ही मिज़ाज की होती थीं, मानती थी बेटों से ही कुल-वंश चलता है। मैंने तो ऐसा कभी नहीं सोचा, न इन्होंने। हमने उसे बेटों की तरह ही पाला। किसी चीज़ पर हाथ धर दे, वह हाज़िर।”

अफसोस का कीड़ा न सिर्फ़ दिमाग को नोचता-खसोटता है बल्कि शरीर को भी खाता चला जाता है। इसलिए लेखिका बच्चियों को सुरक्षा के प्रति संकेत करती नजर आ रही हैं। वर्ना न जाने कई तेजस्विनी के माता-पिता की रूआंसी आवाजें यही कहेंगी - “यह ज़िन्दगी भी कितनी नामुराद चीज़ है, सब कुछ लुटा-पुटाकर भी आदमी जीता चला जाता है। कभी-कभी अपने एक हाथ से अपने जिस्म को छूकर महसूस करती हूँ, कुछ महसूस नहीं होता, सिर्फ़ एक मुर्दा जिस्म का अहसास। साँस आती है, जाती है और हम अपने ही होने को जैसे दूर से देख रहे हैं।”

कहानी स्त्री की घुटन की व्यथा-कथा है।

संग्रह की अधिकतर कहानियों के केंद्र में अपने जीवन की आधी दौड़ लगा चुके और प्रौढ़ पात्र हैं या फिर वे हैं जो अपने परिवार, समाज से उपेक्षित, अपनी दुनिया में अकेले हैं। ‘पीले पत्ते’ कहानी पति

के प्यार के लिए तरसती उपेक्षित मन्दाकिनी की कहानी है जिसे लोग पगली अम्मा के नाम से जानते हैं। मन्दाकिनी से पगली अम्मा बनने का कारण पति द्वारा उपेक्षित होना ही है। हरे भरे जीवन को प्रेम से सींचने के बजाय उसे सूखने और झड़ने के लिए छोड़ देने की एक मात्र वजह पुरुष सत्ता का मनमानी होना है जो पीले पत्ते तोड़ती हुए पगली अम्मा बनकर रह जाती है। जीवन के इस मुश्किल दौर की सच्चाइयों ने हमसे और हमारे समय से कई सवाल खड़े किये हैं जिनके जवाब हमेशा रिक्त रहे हैं, एक सजग लेखक भी इन सच्चाइयों से बच नहीं सकता। वह इन सवालों का जवाब नहीं देता पर हमारे समाज को इन सच्चाइयों से रू-ब-रू और उन्हें आईना जरूर दिखता है।

‘खिड़की’ कहानी एक तरफ आपसी संबंधों से मुँह फेरती और दूसरी तरफ प्रेम, विश्वास जैसी संवेदनशील आस्था को हर हाल में बचाती नजर आती है। माँ जो अपने पति के छोड़ जाने पर अकेलेपन से ग्रसित थी, अपने अन्दर एक तरह की टीस लिए हुए है। बाहर से शांत दिखने वाली माँ के अंतर्मन का दुःख बाहर नहीं आ पाता पर अनचाहे वह झलक उठता है। माँ कहती हैं—“आजकल कितना अच्छा है न, जो चीज पसंद न आए, उसे एक क्लिक में फूँट कर दो!...और यह कहते ही अचानक उनके चेहरे पर भयावह सन्नाटा पसर गया।”

बाहर विदेश में चिकित्सा करा आयी माँ के मन को बेटी बखूबी जानती है। आए दिन माँ की सेहत गिरती जा रही है पर इस स्थिति से उनके बेटे बहू को कोई फर्क नहीं पड़ता। इस संवेदनाशून्य हो चुके रक्त संबंधों के बीच कहीं हल्की सी एक खिड़की खुली हुई है जो उस पार से इस पार रक्तवाहिनियों को सींचती नजर आती है। माँ का सारा शरीर निष्क्रिय हो चुका है जिन्दा लाश की तरह। केवल एक जोड़ी आँखें हैं जो खुली हैं खिड़की की तरह।

पुस्तक की अंतिम तीन कहानियों के लिए सुधा जी ने एक ही शीर्षक दिया है ‘एक कहानी तीन आख्यान’ इसमें ‘भागमती पंडाइन का उपवास...’, ‘राग देह मल्हार’, ‘कत्लगाह यानी माटी कहे कुम्हार से...’ लिखकर ऐसे समाज से पर्दा हटाने का प्रयास किया है जो कृत्रिम सुगंध लगाकर अपने भीतर की कुत्सा और दुर्गन्ध को छुपाने की दमखम से कोशिश करता है। ‘भागमती पंडाइन का उपवास’ में भागमती को प्रोफेसर पांडे भले ही सीधी-साधी मानते हो लेकिन वह परंपरागत संस्कारों से बंधी एक भारतीय नारी है, जो पतिव्रता स्त्री की गुलामी की आधी सदी की यंत्रणा झेलने के बावजूद न सिर्फ संस्कार मुक्त होकर अपनी स्थितियों का विश्लेषण करती है। वह आदर्श भारतीय नारी की तरह घर संभालते हुए भी अपनी उपेक्षा का प्रतिकार करवाचौथ का व्रत रखने से सीधे मना करते हुए करती है – “बस अइसे ही ! मन न हुआ ! तीज चौथ को एतना बरत उपवास से का हुइहैं ? बोलते हुए पंडाइन के चेहरे पर ऐसा तेज दीप्त हुआ कि उसकी चमक में उनके चेहरे की एक-एक झुर्री गिनी जा सकती थी—अब हमसे अउर बरत-उपवास ना होई। सरीर लाल बत्ती दिखावत हय, बोलत हय-त्रो।”

सुधा जी की ‘राग देह मल्हार’ कहानी भी गंभीर विवेचना की मांग करती है। मौजूदा दौर में स्त्री देह को व्यापारिक टूल्स के रूप में इस्तेमाल मात्र की वस्तु समझा जाता है वहीं सुमेधा जैसी अत्याधुनिकाएँ बात-बात पर अपने निजी फायदे के लिए राग देह मल्हार का अलाप कर खुद को गौरवान्वित महसूस करती हैं। इस ‘गिव एंड टेक’ की संस्कृति में प्रोफेसर ‘मनप्रीत’ जैसे लोगों की नियति में अंततः मनोरोगी बनने की पीड़ा को भुगतना ही लिखा होता है। खुद के विवाहेतर सम्बन्ध को दिलेरी से जीने वाला साहित्यकार प्रोफेसर ‘मनप्रीत भट्ट’ प्रेमिका

के छल और बेवफाई को बर्दास्त नहीं कर पाता—“मर्द खुद औरतों को छलता रहे, उसका पुश्तैनी हक है पर कोई औरत उसे बेवकूफ बना जाए, यह उसे बर्दास्त नहीं होता। .... जिसको जीतने की आदत हो, इस तरह पटखनी खाकर हार जाना उसके गले नहीं उतरता। मर्दों की आदत होती है—एक को पकड़ा, दूसरी को छोड़ा या फिर दो नावों पर सवार होकर साथ-साथ दोनों को ड़ाँसा दिया। इस खेल पर तो मर्दों की बपौती थी पर जब उसी खेल में एक ऐसी औरत बाज़ी मार ले गयी जिसने पूरे शहर को अपना कोठा बना रखा था।”

यह कहानी देह को सीढ़ी बनाकर आगे बढ़ने वाली मोहिनी जैसी स्त्रियों पर तो प्रश्न चिन्ह लगाती ही है साथ-साथ मनप्रीत जैसे पुरुषों की नीयत पर भी सवाल खड़ी करती है। इसी तरह आख्यान तीन ‘कत्लगाह यानी माटी कहे कुम्हार से’ में भुवन मोहिनी के चरित्र का उत्कर्ष हम देख पाते हैं। अपने मायाजाल में लोगों को उलझाते चले जाना और काम होने पर उसे किसी काम का नहीं समझना। ये कहानियाँ भूमंडलीकरण के वर्तमान सन्दर्भ में उभरने के लिए सभी मानवीय मूल्यों को दरकिनार कर निरंतर आगे बढ़ने की जो पुश एंड अप स्पर्धा वाली संस्कृति है उस यथार्थ को सामने रखती हैं।

इस तरह सुधा अरोड़ा की इन सभी कहानियों में स्त्री जीवन की छटपटाहट और पीड़ा बड़े ही

सहज और सजग ढंग से अभिव्यक्त हुई है। अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु मौन में अभिव्यंजना के मार्फ़त अपने प्रतिरोधी स्वर को दर्ज करती ये स्त्रियाँ निश्चय ही आज की नई स्त्री की बोल्ड छवि उपस्थित नहीं करती किन्तु समाज में एक नया मॉडल अवश्य प्रस्तुत करती हैं। संवाद की तरह पाठक से वार्तालाप करती सुधा अरोड़ा की कहानियों में भाषा की सहजता, सरल गद्य का सौंदर्य और बीच-बीच में व्यंग्य का पुट लिए होने के कारण और भी रोचक एवं पठनीय हो गयी हैं। यहाँ लेखिका के अपने शब्द हैं—“मैंने भी कहानी के कथ्य के लिहाज से अपनी भाषा में ‘हास्य-विनोद’ का तंज दिया है। इधर की दो कहानियाँ – ‘राग देह मल्हार’ और ‘भागमती पंडाइन का उपवास’ में खास तौर पर एक नया प्रयोग किया और गंभीर विषय को चुहलबाजी करते हुए आँका। मेरे लिए यह मुश्किल काम था पर यह एक चुनौती भी थी कि आँसू बहाऊ विषय की गंभीरता भी बनी रहे और इतनी लम्बी-लम्बी कहानी पढ़ने में ऊब भी न हो।.....लेकिन ऐसा शिल्प मैं कहानी ‘उधड़ा हुआ स्वेटर’ या ‘बुत जब बोलते हैं’ में नहीं लिख सकती थी।”

संवेदनहीन होते जा रहे मानवीय मूल्यों की रक्षा करना, उनकी कहानियों को एक अलग पहचान देती हैं अतएव संग्रह की कहानियाँ अपने संवेदनात्मक ताप और लेखिका की सधी हुई दृष्टि के कारण पाठक को सोचने के लिए बाध्य कर देती है।

संपर्क : शोधार्थी, हिंदी विभाग, पश्चिम बंगाल राज्य विश्वविद्यालय, बारासात,  
पश्चिम बंगाल, कोलकाता, पिन : 700126 मो. 7439489720



## ‘उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ’ में आज का समय

-पिंकी झा

‘उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ’ केदारनाथ सिंह जी का प्रसिद्ध कविता संग्रह है। यह केदार जी का पाँचवा कविता-संग्रह है। इस संग्रह में कुल 67 कविताएँ हैं। ‘उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ’ का प्रकाशन 1995 ईस्वी में हुआ। इस संग्रह की कविताओं में समकालीन समय, समाज, राजनीति और संस्कृति के भीतर की परस्पर टकराहटें प्रकट हुई हैं। यहाँ केदार जी ने तत्कालीन चुनौतियों से सामना करते हुए जीवन की विसंगतियों का उद्घाटन अधिक प्रखरता एवं सतर्कता के साथ किया है। किसी भी युग का साहित्य अपने समय से विमुख नहीं रह सकता। समकालीन कविता अपने समय अथवा युग को अधिक प्रखरता के साथ उद्घाटित करती है। आज हमारा देश इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुका है। भारत देश भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद के दौर से गुजर रहा है। भूमंडलीकरण के तहत संपूर्ण विश्व को एक माना गया, जिसने हमारे देश की संस्कृति को भी प्रभावित करने का कार्य किया है। आज का समय बाजारवाद का समय है जहाँ प्रत्येक मनुष्य उपभोक्तामात्र बनकर रह गया है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति में मानवीय मूल्यों का विघटन तेजी से हो रहा है। जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवार, समाज, राजनीति आदि सभी जगह मूल्यों का पतन लगातार हो रहा है। इस संग्रह की कविताओं में कवि केदार जी का समय बोध अधिक प्रखर होता हुआ जान पड़ता है। ‘पाँचवीं चिड़िया’ कविता की पंक्तियों में वर्तमान समय की विसंगतियों का उद्घाटन हुआ है—“मैंने पहली चिड़िया खोली लिखा था-अबकी फसल अच्छी है पर मौसम खराब। मुझे लगा यह एक बेहद तल्लू और हिला देनेवाली टिप्पणी है मेरे समूचे समय पर।”

स्पष्ट है कि यह पहली चिड़िया किसी एक किसान की लिखी हुई है। किसान के लिए फसल अच्छी और

मौसम खराब होना फसल को लेकर किसान की असुरक्षा की भावना को व्यंजित करता है।

जो किसान कर्ज लेकर खेती करते हैं, उन्हें हमेशा ‘महाजन’ की चिंता बनी रहती है। वे लहलहाती हुए फसल देखकर प्रफुल्लित न हो और अधिक उदासीन हो जाते हैं क्योंकि उन्हें यह पता है कि इस लाभ में उनकी हिस्सेदारी बहुत कम होगी। भारत कृषक संस्कृति पर टिका हुआ देश है, तथापि हमेशा से सर्वाधिक कष्ट किसानों को ही सहना पड़ता है। इसी प्रकार ‘सृष्टि पर पहरा’ संग्रह की कविता ‘फसल’ में भी केदार जी कहते हैं कि जिस किसान की हत्या या आत्महत्या हुई है वह फसल के पकने पर चुप हो जाता था। वह किसान भी फसल देखकर उसके कटते ही महाजनों से भेंट होने के भय से चुप हो जाता था। किसान के कर्ज का बोझ जब बहुत अधिक बढ़ जाता है तब उसके पास आत्महत्या के अलावा दूसरा उपाय नहीं बचता।

इसलिए कवि मौसम के खराब अर्थात् समय के खराब होने की बात करते हैं।

वर्तमान समय के सत्य को स्पष्ट करते हुए कवि आलोचक एकांत श्रीवास्तव जी कहते हैं—“यह वित्तीय पूँजी और विश्व बाजार का समय है। यह स्टॉक एक्सचेंज में बैठकर शेयरों की खरीद-फरोख्त का समय है। यह भूमंडलीकरण का समय है। युद्ध और हिंसा का समय। जाति और धर्म का समय। टेक्नोलॉजी के कद का मनुष्य और मनुष्यता के कद से बड़े हो जाने का समय है। यह शब्द की कीमत के कम हो जाने का समय है। संवेदना, ईमानदारी, नैतिकता, ज्ञान, बौद्धिकता जैसी चीजों के फिजूल पर जाने का समय। झूठ, छल, धोखा, चालाकी और व्यावहारिकता का समय। मनुष्य को स्वाभिमान के साथ न जीने देने का समय।”

वर्तमान में बाजारवादी अर्थव्यवस्था जन-जन पर हावी हो चुकी है। पहले लोग अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए बाजार जाते थे, परंतु आज बाजार हमारे घरों तक प्रवेश कर चुका है। ऑनलाइन शॉपिंग के तहत नित नए प्रलोभन हमारे मोबाइल पर आते रहते हैं, जिससे लोग बाजार के इस जाल में फँसते जा रहे हैं। केदार जी बाजार के सत्य को पहचानते हुए उसके मायाजाल से स्वयं को दूर रखने का आग्रह करते हैं। ‘खरोंच’ कविता में कवि बाजार गए थे, जिससे उनकी हथेली पर खरोंच लग गई। तात्पर्य यह है कि बाजार खरोंच यानी पीड़ा दे सकता है। कवि के शब्दों में “जहाँ तक जाने का सवाल है बाज़ार गया था बाज़ार में खरीदी थी डाइजिन की टिकिया और गोभी के फूल पर भला डाइजिन की टिकिया और गोभी के फूल से क्या लेना - देना मेरी हथेली की खरोंच का?”

आज समाज में यह भ्रम फैला हुआ है कि मानव की प्रत्येक इच्छा की पूर्ति बाजार कर सकता है। बाजारवादी अर्थव्यवस्था में जनता के प्रत्येक दुख-दर्द, परेशानी का इलाज है। बाजारवादी अर्थव्यवस्था के इस षड्यंत्र का उद्घाटन ‘दवा की तलाश में एक बेचैन आत्मा’ शीर्षक कविता में कवि करते हैं। कवि कहते हैं—“क्योंकि आम धारणा यही है कि दवा सिर्फ बाज़ार में मिलती है।”

ध्यातव्य है कि कवि जनता की इस धारणा पर प्रकाश डालते हैं कि दवा सिर्फ बाजार में मिलती है। अर्थात् एक तरफ तो बाज़ार लोगों को खरोंच देता है, पीड़ा देता है वहीं दूसरी तरफ दवा भी देता है। दोनों ही दृष्टियों में बाजार को लाभ ही मिलता है। वर्तमान समय में समय-संकट इस हद तक बढ़ गया है कि साधारण जन का जीवन जीना कठिन हो गया है। कवि कहते हैं—“...उसे हर चमत्कार से नफ़रत थी एक जिंदा रहने के चमत्कार के अलावा।”

आज की इस विकट परिस्थिति में जिंदा रहना एक चमत्कार के समान कवि को लगता है। भूमंडलीकरण और भौतिकवादी जीवन शैली ने पारंपरिक मूल्यों को ध्वस्त कर उनपर प्रश्न-चिह्न

लगा दिया है। व्यक्ति की चेतना भटक रही है। पूँजीवादी व्यवस्था में प्रौद्योगिकी के विकास का वास्तविक लाभ केवल पूँजीपति वर्ग को ही मिला है। इस प्रक्रिया में श्रमिक मात्र श्रमिक बनकर रह गया है। आज अधिकांश देश आधुनिकीकरण की इस यंत्रणा से ग्रस्त हैं। आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के नाम पर केवल पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण हो रहा है। इसी आधुनिकता एवं उत्तर-आधुनिकता ने साधारण जन के भीतर आत्म-परायेपन के भाव को जन्म दिया। आज का मनुष्य दिशाहीनता की स्थिति तक पहुँच चुका है। उसे स्वयं ही पता नहीं कि वह क्या चाहता है। ‘उत्तर कबीर’ शीर्षक कविता में केदार जी कहते हैं—

“यह कैसा समय है कि सारी क्रियाएँ एक-सी लगती हैं? जानना चाहता हूँ लेकिन कहाँ? यह हर ‘यहाँ’ के बाद एक चीखता हुआ ‘कहाँ’ कहाँ से चला आता है हर बार?”

समकालीन कविता समस्या प्रस्तुत करती है, सवाल खड़े करती है। ये कवि कृत्रिम परिणाम दिखाने में विश्वास नहीं करते बल्कि जीवन की समस्याओं को उठाने में विश्वास करते हैं। कहा जाता है मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परंतु वर्तमान समय में यह सामाजिकता कहीं लुप्तप्रायः हो गई है। आज एक का सुख दूसरे के दुख का कारण है। आज के मनुष्य का सुख-दुख केवल स्वयं तक सीमित हो चुका है। लोग कितना आत्म केंद्रित हो गए हैं ‘घर का विचार’, ‘बची हुई कसृणा’ आदि कविताओं में देखा जा सकता है। ‘घर का विचार’ कविता में कवि एक सुंदर घर बनाने पर बड़े ही उत्साह से विचार करते हैं। परंतु जैसे ही उन्हें वर्तमान समय के घर के ‘दरवाजों की पेंच और उनमें लगनेवाली कुंडी’ का ध्यान आता है तो वे निराश हो जाते हैं।

यहाँ ‘दरवाजों की पेंच और उनमें लगनेवाली कुंडी’ से कवि का तात्पर्य मानव के विचारों और भावों के बंधन से है। मानव उन्मुक्त होकर आज कुछ नहीं कर सकता। यहाँ कवि प्रतीकात्मक रूप से घर

बनाने के रूपक का प्रयोग करते हैं। कवि कहते हैं— “...अचानक उसे ख्याल आया दरवाज़ों की पेंच और उनमें लगनेवाली कुंडी का और वह भर गया एक अजब अवसाद से फिर उसने गला साफ़ किया सूरज की ओर देखा जैसे देर हो रही हो और हवा में कहा—थू ...” यहाँ कवि वर्तमान जीवन की बेड़ियों, बंदिशों पर थूकते हैं। इसी प्रकार ‘बची हुई कस्णा’ में कवि वर्तमान जीवन में व्याप्त संवेदनहीनता को उजागर करते हैं। आज संवेदनशून्यता, निस्संगता और स्वार्थपरता अपने चरम पर जा पहुँचा है। किसी असहाय का कस्णा रुदन सुनकर भी लोग किस तरह उसकी उपेक्षा कर उसे एक कुत्ते का रुदन मान अपनी नींद पूरी करने में लगे रहते हैं, इसके दर्शन प्रस्तुत कविता में होते हैं। कवि कहते हैं -

“बचाओ / बचाओ अपनी कस्णा एक कुत्ते पर पिघलने और नष्ट होने से / सो मैंने करवट बदली / रोने की आवाज को छोड़ दिया / कुत्ता या आदमी के सवाल के बीच की खाली जगह में / और इस तरह अपने अंदर बचा ली अपनी कीमती कस्णा”

वर्तमान समय के अधूरेपन अर्थात् भावहीन समय का उद्घाटन करते हुए ‘उत्तर कबीर’ कविता में कवि कहते हैं-

“और यह जो समूचा समय है उसमें रोशनी राख, सदियाँ, तिलचट्टे, सबकुछ हैं सिर्फ़ समूचापन झड़ गया है समूचे समय से” अर्थात् जिस समय में प्रेम, दया, कस्णा, अपनत्व का स्थान न हो वह अधूरा रह जाता है। केदार जी की कविताओं पर विचार करते हुए मुक्तेश्वरनाथ तिवारी जी कबीर के अनहद को महाभावात्मक प्रत्यय में बदलते हुए कहते हैं—“यह स्वार्थी समय है; अनहद से आज किसी का स्वार्थ नहीं सधता इसलिए अनहद जो दिल्ली के मार्ग में, ठीक बीचोंबीच खड़ा है, उसे लाँघते-फलाँगते लोग दिल्ली की तरफ भागे जा रहे हैं। दिल्ली से सबको प्रयोजन है, यदि नहीं है तो लोग यथास्थान (शून्य) हैं, लेकिन अनहद की ओर किसी का ध्यान नहीं है। ....यह ऐसा समय है कि कवि (कबीर) प्रदत्त अनुशासन (अनहद)-को भक्ति, गार्हस्थ्य, बाह्यचार

मुक्त दैनंदिनी सबको ताक पर रखकर लालच में मनुष्य उधर भाग रहा है जिधर संसारी सुख-सौख्य के मिलने की उम्मीद है। समय लालची है। समय ‘अशुद्ध’ है।”

समय की इसी अशुद्धता को देखते हुए केदार जी स्वयं को इस बाजारवादी षड्यंत्र से बचाने का आग्रह करते हैं। कवि कहते हैं—“खींचो अगर खींच सकते हो / खींचो जैसे नाव के रस्से खींचे जाते हैं / खींचो उस सूत को जो तुम्हारे हाथ में है / वर्ना तुम्हें पता भी नहीं चलेगा / और तुम खिंचते चले जाओगे उस अदृश्य हाथ की तरफ़ जिसमें हो सकता है सूत का दूसरा छोर हो”

कवि संवेदनशून्यता की पराकाष्ठा को देखकर परेशान होते हैं। वे व्यक्ति के विवेक को जागते हुए ‘प्रश्नकाल’ शीर्षक कविता में प्रश्न पूछने पर जोर देते हैं —“पूछो यह दिन है कि रात / मार्च है कि दिसंबर कटनी है कि काठगोदाम / पूछो पूछो कि इस समय / शहर में समय कम और मक्खियाँ अधिक हैं / मगर पूछो क्योंकि पूछने से पृथ्वी पर बनने लगता है समय” प्रश्न से उत्तर मिलता है। उत्तर से मनुष्य की धारणा और समझ स्पष्ट होती है। अतः प्रश्न पूछना आवश्यक है। समय को सार्थक रूप देने के लिए प्रश्न पूछना जरूरी है। पृथ्वी पर समय के निर्माण के लिए, समय-संकट को देखते हुए प्रश्न पूछना कवि को एक सार्थक कदम लगता है। वर्तमान को पारदर्शी बनाने के लिये प्रश्न पूछना जरूरी है। ‘उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ’ संग्रह की अन्य मूलभूत समस्या हमारी भारतीय संस्कृति के अस्तित्व - रक्षा की है। आज भारत देश तीव्र गति से विकास कर रहा है। अभी-अभी हमारा देश चंद्रयान - 3 के माध्यम से चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचने वाला विश्व का प्रथम देश बन गया है। एक ओर जहाँ भारत देश ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नई-नई ऊँचाइयों को छू रहा है, वहीं दूसरी ओर किसानों - मजदूरों की समस्याएँ दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही हैं। भौगोलीकरण के नाम पर देश में अपसंस्कृति का अंधानुकरण हो रहा है। ऐसे में कुदाल जो कि किसानों की संस्कृति,

भारतीय संस्कृति की पहचान है कहीं लुप्तप्राय हो गई है। कवि कहते हैं—“मेरे लिए सदी का सबसे कठिन सवाल कि क्या हो-अब क्या हो कुदाल का।”

इसी प्रकार के भावों के दर्शन ‘कुँए’ शीर्षक कविता में भी होते हैं। कवि भारत के समस्त “कुओं को ढक लिया है घास ने” कहकर हमारी भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति के हावी होने की ओर इशारा करते हैं। कवि कहते हैं कि अब कुओं से पानी पीने की जरूरत नहीं क्योंकि—“लोगों का क्या कहते हैं उन्हें पता चल गया है किसी जादुई सोते का” वास्तव में यह जादुई सोता कुछ और नहीं बल्कि बढ़ती हुई प्रौद्योगिकी के विकास का परिणाम है। संग्रह की अन्य महत्वपूर्ण कविता ‘लोरी’ है। प्रस्तुत कविता में एक ओर वायुयान की चर्चा की गई है और दूसरी तरफ रेलवे से यात्रा करने वाले साधारण जन का चित्रण है जो थूक, खंखार और बदबू के बीच अपनी देर से आने वाली ट्रेनों का इंतजार कर रहे हैं। यहाँ दो वर्गों के अंतर यथा पूंजीपति वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच के गहरे फाँक को दर्शाया गया है। श्रमिक वर्ग के इन लोगों के कष्ट का सरकार को ध्यान तक नहीं। कवि कहते हैं—“यह कैसी सभ्यता है—मैंने सोचा कि इसके पास अपनी कोई लोरी तक नहीं उन यात्रियों के लिए जिनकी गाड़ियाँ लेट हैं।”

‘लोरी’ सुकून देनेवाला गीत है, जिससे नींद आती है। ‘लोरी’ निश्चिंतता लाती है परंतु वर्तमान समय में जनता की चिंताएँ बढ़ानेवाले तो बहुत हैं परंतु चिंताएँ कम करने वाला कोई नहीं।

समकालीन परिस्थितियों ने केवल पुरुष को ही नहीं, बल्कि स्त्री के जीवन को भी प्रभावित किया है। वर्तमान समय स्त्री-पुरुष के बीच स्वस्थ संबंध को स्वीकार नहीं करता है। कवि स्त्री-पुरुष के रिश्तों के बीच बढ़ते हुए इसी तनाव का चित्रण ‘नमक’ शीर्षक कविता में करते हैं। ‘नमक’ स्त्री-पुरुष के संबंधों में आये दरार को उद्घाटित करती हुई कविता है।

कविता में दाल में नमक के कम होने के माध्यम से कवि स्त्री-पुरुष के संबंधों से मधुरता के लोप को उद्घाटित करते हैं। इस कमी को कवि के शब्दों में केवल घर के पालतू कुत्ते के अलावा कोई नहीं जानता। -

“नमक को लगा उस समूचे घर में एक कुत्ते के अलावा इसे कोई नहीं जानता”

प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ केदार जी के काव्य-विकास के नए प्रस्थान की आहट प्रस्तुत करती हैं। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में प्रश्नात्मकता है। ‘गाँव आने पर’ कविता में विस्थापन की पीड़ा को प्रश्नात्मकता के माध्यम से ही उजागर किया गया है। कवि जिन्हें अपना समझते हैं वे अब उन्हें अपना समझते हैं या नहीं, उन्हें विश्वास दिलाने के लिए बेचैन हो स्वयं से ही प्रश्न करते हैं -

“क्या करूँ मैं ?

क्या करूँ,

क्या करूँ कि लगे कि मैं इन्हीं में से हूँ

इन्हीं का हूँ

कि यही हैं मेरे लोग

जिनका मैं दम भरता हूँ कविता में

और यही यही जो मुझे कभी नहीं पढ़ेंगे।”

‘विकास-कथा’ कविता में भी विस्थापन की पीड़ा को वाणी दी गई है, जिसके तहत गाँव में डाकघर बन जाने से डाकिये का आना बंद हो जाता है। डाकघर के बनते ही डाकिये का अस्तित्व ही लगभग समाप्त हो गया है।

यह समय मनुष्य के लिए तो कठिन है ही प्रकृति के लिए भी कठिन है। वर्तमान समय की यांत्रिक सभ्यता ने मनुष्य को प्रकृति से दूर धकेलने का कार्य किया है। उसे प्रकृति के विरुद्ध खड़ा कर मानव एवं प्रकृति के सहज संबंध को प्रभावित किया है। उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव ने प्रकृति को भी वस्तु में बदलने का कार्य किया है। विकास के नाम पर बिना सोचे समझे प्रकृति का दोहन किया जा रहा है। ऐसी स्थिति देखकर कवि का विचलित होना

### शोधार्थी की कलम से

स्वभाविक है। ‘नदियाँ’, ‘मधुमक्खियों का हमला’ आदि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। यह सर्वमान्य सत्य है कि मानव सभ्यता का विकास नदियों से ही संभव हुआ है।

नदियों के किनारे, नदियों के जल से ही सिंचाई कर सर्वप्रथम मानव ने अनाज उत्पन्न किया, जिससे धीरे-धीरे सभ्यता का विकास हुआ। परंतु विकास की इस गति में सर्वाधिक नदियों पर ही अत्याचार हुआ है। कल - कारखानों का दूषित जल, वर्जित पदार्थ नदियों के स्वच्छ जल को निरंतर दूषित कर रहा है। नदियों पर बांध बनाकर नदी की गति को बाधित किया जा रहा है। कवि कहते हैं—“पुल-पृथ्वी के सारे के सारे पुल एक गहरा षड्यंत्र हैं नदियों के खिलाफ़ और नदियाँ उन्हें इस तरह बर्दाश्त करती हैं जैसे कैदी जंजीरों को।”

केदारजी ‘मधुमक्खियों का हमला’ कविता में जंगलों की अत्याधिक कटाई से नन्हें जीवों, चींटियों, मधुमक्खियों के अस्तित्व - संकट को उजागर करते हैं। मधुमक्खियाँ शहर में नारे लगाती हुई कहती हैं

– “मधुमक्खियों की माँग थी जगह दो ...हमें जगह दो चाहे बूँद - भर ही दो चाहे डंक - भर ही दो पर जगह दो हमें जगह दो।”

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस संग्रह की कविताएँ वर्तमान समय - संकट का दस्तावेज प्रस्तुत करती हैं। वर्तमान समय में भूमंडलीकरण एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव ने मनुष्य की संवेदनाओं का किस हद तक नाश किया है, मानव जीवन में आयी स्वार्थपरता, संवेदनशून्यता, एवं निस्संगता का उद्घाटन इन कविताओं में हुआ है। इन कविताओं में मानवीय मूल्यों के निरंतर टूटन एवं विघटन का चित्रण किया गया है। कुछ कविताओं में विस्थापन की पीड़ा को भी वाणी दी गई है। प्रकृति एवं पर्यावरण पर हो रहे अत्याचार का चित्रण कर कवि वर्तमान समय में प्रकृति पर आये संकट को रेखांकित करते हैं। वर्तमान समय संपूर्ण मानव जाति के साथ प्रकृति के लिए भी चिंतनीय है। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में मानव और प्रकृति के प्रति कवि की चिंता स्पष्ट हुई है।

**संपर्क :** उत्तरबंग विश्वविद्यालय, पता : c/o ए.के.झों, उत्तर उत्तपल नगर,  
**पो :** चंपासरी, जिला : दार्जिलिंग, **पिन :** 7340030 **मोबाइल :** 9933877468

## आपातकाल और हिंदी कविता

—पंकज कुमार सिंह

“अमेरिकन संघ का तथा अन्य सभी संघ-राज्यों का विधान एक ऐसे कठोर संघात्मक ढाँचे में रखा गया है कि वे अपने स्वरूप को कभी बदल नहीं सकते चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो। किसी भी हालत में इनकी राज्य व्यवस्था एकात्मक या केन्द्र प्रधान नहीं हो सकती। इसके प्रतिकूल हमारा विधान समय, परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार एकात्मक या संघात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है।”

डॉ. भीमराव अंबेडकर के ये शब्द भारतीय संविधान की उन विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं, जब देश का विधान किसी असामान्य स्थिति के फलस्वरूप अपने वास्तविक स्वरूप को स्वतः ही परिवर्तित कर सकता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान के भाग 18 के अंतर्गत अनु. 352 से लेकर 360 तक आपातकाल का प्रावधान है। ये प्रावधान केंद्र को किसी भी असामान्य स्थिति से निपटने के लिए सक्षम बनाते हैं। इनके प्रभावी होते ही देश का विधान अपने संघीय ढाँचे को छोड़कर बगैर संशोधन के एकात्मक ढाँचे में परिवर्तित हो जाता है। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 के पूर्व संविधान में यह वर्णित था कि “यदि राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि गंभीर आपात विद्यमान है जिससे युद्ध या बाह्य आक्रमण या आंतरिक अशांति (44 वे संशोधन में इसकी जगह ‘सशस्त्र विद्रोह’ को रखा गया) के कारण भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।”

26 जून 1975 की सुबह तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे जनांदोलन को आंतरिक अशांति का कारण माना और अनु. 352 के तहत देश पर आंतरिक आपातकाल लागू कर दिया। हालाँकि इससे पूर्व 12 जून को एक अप्रत्याशित घटना घटी। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 1971 के चुनाव में

इंदिरा गांधी के प्रतिद्वंद्वी रहे राजनारायण की याचिका पर अपना निर्णय देते हुए माना कि श्रीमती गांधी ने चुनाव के दौरान सरकारी तंत्र का दुरुपयोग किया। इसका अर्थ यह था कि उनके निर्वाचन को न केवल अवैध घोषित कर दिया गया अपितु वे आगामी छह वर्षों तक लोकसभा के चुनाव नहीं लड़ सकती थीं। इसी दिन गुजरात विधानसभा के नतीजे भी सामने आए, जहाँ कांग्रेस के खिलाफ़ लड़े रहे गठबंधन-जनता मोर्चा (जनसंघ, कांग्रेस (ओ) तथा बी. एल. डी. आदि) ने 182 सीटों में से 87 सीटें जीत लीं। जबकि इस चुनाव में कांग्रेस को 75 सीटें ही प्राप्त हुईं। “बहुमत पा सकने में असफल होने के बाद जनता मोर्चा सरकार बनाने में उसी चिमनभाई पटेल के साथ गठबंधन करने में सफल हो सकी जिसको पद से हटाने के मुद्दे को लेकर गुजरात में छात्र आंदोलन की शुरुआत की गई थी।” इन दोनों घटनाओं ने निश्चय ही प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की छवि को नुकसान पहुँचाया था। विपक्ष का मानना था कि उन्हें नैतिक आधार पर पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं है। अतः उन्हें त्यागपत्र दे देना चाहिए। दूसरी ओर उनके छोटे पुत्र संजय गांधी व पार्टी के अन्य कार्यकर्ता जैसे डी. के. बरूआ आदि का मानना था कि उन्हें त्यागपत्र नहीं देना चाहिए। इसी समय देवकांत बरूआ ने इंडिया इज़ इंदिरा, इंदिरा इज़ इंडिया का नारा दिया। रामायण के तर्ज पर इंदिरा गांधी के उनसठवें जन्मदिन पर कवि शशिकर ने 59 कवियों का एक संकलन ‘इंदिरायन’ के नाम से निकाला। इसमें कवि ने इंदिरा गांधी को शक्ति के अवतार के रूप में परिभाषित किया है—

“सागर मंथन से प्रकट पीयूष-सा,  
या किसी यज्ञ के फलित पुण्य-सा,  
या देवताओं की समवेत प्रार्थना के आशीष-सा,  
मिला हमें शक्ति स्वरूप इंदिरा वरदान”

इसी बीच 25 जून को जनता मोर्चा ने दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया। इस जनसभा को संबोधित करते

हुए जेपी ने जनता को सरकार का सहयोग नहीं करने की अपील की। इसके अतिरिक्त उन्होंने सेना, पुलिस व अन्य सरकारी कर्मचारियों को भी अपनी अंतरात्मा के विरुद्ध लगने वाले आदेशों को नहीं मानने की भी अपील कर दी। सरकार को लगा कि जेपी सेना और पुलिस को आदेश न मानने के लिए बहका रहे हैं तथा उनके इस कदम को सरकार ने राष्ट्रद्रोह माना और बगैर मंत्रिमंडल की सलाह लिए प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने देश को आंतरिक अशांति से खतरा मानकर आपातकाल लागू कर दिया। आपातकाल के लागू होते ही “बहुत से विपक्षी नेताओं जैसे- जे.पी., मोरारजी देसाई, अशोक मेहता और चरण सिंह को और बहुत से कांग्रेसी विद्रोहियों जैसे चंद्रशेखर और रामधन आदि को गिरफ्तार कर लिया, प्रेस पर कड़ी सेंसरशिप लागू कर दी और सभी मूल अधिकारों को निलंबित कर दिया गया। इस प्रकार सरकार के लिए कोई विपक्ष नहीं रह गया।”

आपातकाल के कठिन समय में साहित्यकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। भवानी प्रसाद मिश्र, फणीश्वरनाथ रेणु, महादेवी वर्मा, विजयदेवनारायण साही व अमृत राय जैसे लेखकों ने अपनी रचनाओं के द्वारा सरकार के तानाशाही रवैये के खिलाफ आम जनता को प्रतिरोध के लिए सचेत किया। ‘साये में धूप’ में दुष्पंत कुमार लिखते हैं-

“मेरी जुबान से निकली तो सिर्फ नज्म बनी।  
तुम्हारे हाथ में आई तो एक मशाल हुई।”

भारतीय जनमानस पर आपातकाल की यंत्रणा ने उन्नीस महीनों तक तांडव मचाया। इस अवधि में सरकार ने अपने सभी विरोधियों को जेल की काल कोठरी में डाल दिया। कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी रचना ‘त्रिकालसंध्या’ में आपात काल के मुख्य किरदारों को बेनकाब करने की कोशिश की है। वे लिखते हैं-

“बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले  
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले  
उनके ढंग से उड़ें, रुकें, खायें और गाएँ  
वे जिनको त्योहार कहें सब उसे मनाएँ।”

‘त्रिकालसंध्या’ की भूमिका में ही कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने आपातकाल के साजिशकर्ताओं के नाम गिनाए हैं। उन्होंने ‘चार कौए उर्फ चार हौए’ में प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, कांग्रेस अध्यक्ष तथा संजय

गांधी का नाम लिया है। एक तरह से उन्होंने इन्हें ही आपातकाल का प्रमुख अभियुक्त घोषित किया है। गौरतलब है कि भारतीय लोकतंत्र में सत्तर के दशक के आरंभ से ही प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के वर्चस्व में वृद्धि दृष्टिगोचर होती है। समय से पहले कराए गए लोक सभा चुनाव में वे 352 सीटें जीत कर संसद पहुँची थीं लिहाजा अब उन्हें सदन में बहुमत मिल चुका था। इस चुनाव में उन्होंने गरीबी हटाओ के नारे का भरपूर प्रयोग किया। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए उन्होंने राजा-महाराजाओं को मिलने वाले प्रिवी पर्स को सबसे पहले समाप्त किया, जिससे देश में सभी लोगों के प्रति सामाजिक न्याय हो सके। उनके इस कदम की पूरे देश में सराहना हुई जबकि कुछ राजा-महाराजा उनके इस कदम से स्वयं को ठगा हुआ महसूस कर रहे थे। “प्रिवी पर्स की समाप्ति ने इंदिरा गांधी को संसद के भीतर और बाहर एक बड़ी ताकत दी। 1971 का साल वाकई उनके उत्कर्ष का काल था। लोकसभा में उन्होंने धमाकेदार तरीके से वापसी की थी, बांग्ला मुक्ति संग्राम ने उनकी लोकप्रियता को शिखर पर पहुँचा दिया था।” हालाँकि जल्दी ही ये स्थितियाँ विपरीत होने लगीं। बढ़ती महँगाई, कालाबाजारी, बेरोजगारी आदि समस्याओं के कारण गुजरात और फिर बिहार में जनांदोलन तीव्र होने लगा। दोनों ही आंदोलन की शुरुआत छात्र आंदोलन के रूप में हुई लेकिन जल्दी ही यह आंदोलन सरकार के तानाशाही रवैये के कारण सरकार के खिलाफ हो गया। जेपी के नेतृत्व में छात्र सड़क पर आ गए लेकिन सरकार का तानाशाही रूख अभी भी बना हुआ था। फलतः आंदोलन को कमजोर करने के लिए जेपी आदि आंदोलनकारी छात्रों पर पुलिस ने लाठी बरसाए। धर्मवीर भारती सरकार के इस अत्याचार पर लिखते हैं-

“खलक खुदा का, मुलुक बादशा का  
हुकुम शहर कोतवाल का  
हर खासो आम को आगाह किया जाता है  
कि खबरदार रहें; क्योंकि  
एक बहत्तर बरस का बूढ़ा आदमी अपनी  
कांपती कमजोर आवाज में  
सड़कों पर सच बोलता हुआ निकल पड़ा है।”

आपातकाल लागू होने के तुरंत बाद आंतरिक सुरक्षा कानून (मीसा) के तहत बड़े मात्रा में लोगों की गिरफ्तारियाँ हुईं और इसमें सबसे बड़ी बात यह थी कि इस कानून के तहत गिरफ्तार हुए लोगों को कोई कारण बताना आवश्यक नहीं था। जनता की आवाज बंद कराने के उद्देश्य से सरकार ने अखबारों की बिजली काट दी, जिससे लोग सच्चाई से दूर रहें। जिन लेखकों या रचनाकारों ने प्रतिरोध किया, उनका मुँह बंद करा दिया गया। बहुत से रचनाकारों ने नियति से समझौता कर लिया। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी रचनाकार रहे जिन्होंने इंदिरा गांधी के तानाशाही शासन-तंत्र को खूब सराहा। इन्हीं कवियों और रचनाकारों को लक्ष्य करके भवानी प्रसाद मिश्र लिखते हैं-

“चारण बने हर कवि  
कलाकार शासक नेता और न्यायालय  
मुक्त कंठ मेरा  
यशपाल बने हर व्यक्ति मेरे यश का,  
क्योंकि अक्षुण्ण रखूँ मैं अकेली उसे  
दुनिया भर में  
यह नहीं है मेरे वश का।”

आपातकाल की घोषणा करते समय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने राष्ट्र को आश्वासन दिया कि इससे घबराने अथवा डरने की कोई बात नहीं है। इस घोषणा के बाद भी वे जिस भी सभा अथवा सम्मेलन में जाती थीं आपातकाल लागू किए जाने के पक्ष में अपना तर्क प्रस्तुत करती थीं। 1 अगस्त 1975 को नार्मन कजिंस के प्रश्नों के उत्तर देते समय भी उन्होंने माना कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए आपातकाल जरूरी था- “जो कुछ किया गया है वह लोकतंत्र का निरसन नहीं है बल्कि उसे सुरक्षित बनाने का प्रयास है।” इस प्रकार इंदिरा गांधी को जेपी के नेतृत्व में चल रहा जनांदोलन लोकतंत्र विरोधी प्रतीत हो रहा था। विदित हो कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए इंदिरा गांधी ने जिस रास्ते का चयन किया संभवतः वह भी लोकतंत्र की रक्षा के लिए किसी भी दशा में मान्य नहीं हो सकता। आपातकाल के उन उन्नीस महीनों में सरकार ने लोकतंत्र को बचाने के उद्देश्य से ही तमाम जन-विरोधी कार्यों को अंजाम दिया। इसमें सुंदरीकरण के नाम पर गरीबों के घर को तोड़ा गया, तो वहीं जनसंख्या नियंत्रण कानून की आड़ में पात्र

और अपात्रों के भेद मिटाकर नसबंदी की गयी। मीसा कानून के तहत गिरफ्तार किए गए लोगों का शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न किया गया। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने ‘कैदी कविराय’ के उपनाम से आपातकाल के दंश को शब्दों में पिरोया है-

“नजरबंद नेता किए, जिनकी नजरें तेज,  
नजर न लग जाए कहीं नजरों से परहेज  
कह गए कैदी कविराय, नसबंदी नजराना,  
टेढ़ी नजरें सीधी ले जाती जेलखाना।”

आपातकाल के लागू होने के बाद प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने देश के विकास के लिए 20 सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया तथा इसी के समानान्तर उनके पुत्र संजय गांधी ने भी अपना 5 सूत्री कार्यक्रम-साक्षरता, परिवार नियोजन, वृक्षारोपण, जाति प्रथा उन्मूलन तथा दहेज प्रथा का उन्मूलन, पेश किया। विदित हो कि इस समय तक संजय गांधी सरकार में न रहते हुए भी सरकार के सभी फैसलों को प्रभावित करने लगे थे। उन्होंने इन पाँचों कार्यक्रमों में सबसे अधिक दिलचस्पी परिवार नियोजन पर ली। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकारी विभागों में कार्यरत लोगों को नसबंदी कराने के लक्ष्य दिए गए जिसे नहीं पूरा किए जाने की दशा में उनकी नौकरी खतरे में पड़ सकती थी। इसके अलावा संजय गांधी का दूसरा लक्ष्य दिल्ली का सुंदरीकरण भी था। इस कार्यक्रम के तहत दिल्ली के तुर्कमान गेट के आस-पास के उन जगहों को निशाना बनाया गया, जहाँ झुग्गी-झोपड़ी में गरीब लोग रहते थे। रातों-रात बिना किसी पूर्व सूचना के उनके घरों पर सरकार ने बलडोजर चलवा कर मानवता को ही अपने पैरों तले रौंद दिया। इस कठिन समय में भवानी प्रसाद मिश्र ने सवाल किया है-

“कौन है इस मुल्क का मालिक,  
और कैसा मालिक है वह  
कौन है इस खल्क का खालिक  
और कैसा खालिक है वह  
क्या यही उसकी रज़ा है  
कि एक ही व्यक्ति देश है  
एक ही व्यक्ति प्रजा है  
यह कैसा मज़ा है!”



## शोधार्थी की कलम से

आपातकाल के दिनों में भारतीय लोकतंत्र इंदिरा गांधी के हाथों की कठपुतली बना हुआ था। वे जब चाहें उस पर अपना नियंत्रण कड़ा कर सकती थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे किसी भी दशा में अपने पद को खोना नहीं चाहती थीं। उन्हें इस बात का डर था कि विपक्षी पार्टियाँ भारतीय लोकतंत्र को तोड़कर फांसीवादी राजनीति का रास्ता अख्तियार करने में लगी हुई थीं, जबकि स्वयं प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जिस रास्ते पर चल रही थीं वह तानाशाही का था। इसके अतिरिक्त उनके पुत्र संजय गांधी का वर्चस्व इतना अधिक बढ़ गया था कि वे सरकार के तमाम फैसलों को प्रभावित करने लगे थे। यहाँ तक कि सरकारी फाइलें भी प्रधानमंत्री के दफ्तर के बाद उनके यहाँ आने लगीं थीं। वे यह भी तय करना चाहते थे कि समाचार में क्या और उसे कैसे प्रसारित करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री आई. के. गुजराल से पद छीन कर अपने विश्वासपात्र वी. सी. शुक्ला को दे दिया। इस तरह हम देखते हैं कि आपातकाल में तानाशाही शासन तंत्र ने भारतीय लोकतंत्र का गला घोटने का निंदनीय कार्य किया। इस अंधेरी काली रात से निकलने के लिए ही साहित्यकारों ने अपने शब्दों के मशाल जलाए और जनता में आत्मविश्वास भरा-

“सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं, मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए। मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही, हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।”

**संपर्क :** हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, ई - 172, तृतीय तल, ई - ब्लॉक, गाँधी विहार,  
मुखर्जी नगर के पास, न्यू दिल्ली, पिन : 110009, मो. : 8130796460

### संदर्भ :

1. भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट (हिंदी संस्करण), खण्ड 7, पुस्तक सं. 3, पृष्ठ 67, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2015
2. भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, पृष्ठ 280-81, 11 वाँ संस्करण 2022
3. चंद्र, विपिन, लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, पृष्ठ 78, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2016
4. दत्त, बलबीर, इमरजेंसी का कहर और सेंसर का जहर, पृष्ठ 129, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्र. सं. 2020
5. चंद्र, विपिन, लोकतंत्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, पृष्ठ 86, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2016
6. कुमार, दुष्यंत, साये में धूप, पृष्ठ 58, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1975
7. मिश्र, भवानी प्रसाद, त्रिकालसंध्या, किस्सा त्रिकालसंध्या का, पृष्ठ 9, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, जनवरी, 1978
8. ठाकुर, सुदीप, दस साल : जिनसे देश की सियायत बदल गई, पृष्ठ 81, सार्थक (राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली) प्र. सं. 2022
9. भारती, धर्मवीर, मुनादी कविता, धर्मयुग. 1974
10. मिश्र, भवानी प्रसाद, त्रिकालसंध्या, पृष्ठ 21, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, जनवरी, 1978
11. इंदिरा गांधी चुने हुए भाषण और लेख, खंड-3, (सितंबर 1972-मार्च 1977), प्रसारण विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
12. भगत, डॉ. अरुण कुमार, (संपा.) आपातकाल की प्रतिनिधि कविताएँ, नसबंदी नजराना, पृष्ठ 28, आर. के. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्र. सं. 2016
13. मिश्र, भवानी प्रसाद, त्रिकालसंध्या, पृष्ठ 120, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, जनवरी, 1978
14. कुमार, दुष्यंत, साये में धूप, पृष्ठ 30, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1975

## आलोचना की अनूठी भंगिमाओं के बीच डॉ. राजेन्द्र मिश्र

- विनोद साव

सोरिद नगर, धमतरी में व्यंग्यकार त्रिभुवन पाण्डेय से मिलने गया तब वे अपने शासकीय महाविद्यालय में थे। पाण्डेय जी कहते हैं कि 'चलो हमारे प्राचार्य महोदय से मिलते हैं।' कक्ष के बाहर नाम की तख्ती थी 'डॉ. राजेन्द्र मिश्र, प्राचार्य'। भीतर क्रीम कोट में गरिमामय व्यक्तित्व दिखे। त्रिभुवन जी जैसी कि उनकी खास अदा थी जिसमें वे झुककर भद्रता के साथ परिचय कराते थे 'सर, ये हमारे युवा व्यंग्यकार मित्र हैं। दुर्ग से आए हैं।' तब मिश्र जी ने मुझे अनजानेपन से देखा और मैंने भी। हम एक ठण्डेपन के साथ बाहर हुए तो फिर एक युवा व्याख्याता से परिचय करवाया गया वे जयप्रकाश थे। तब से लेकर आज पर्यंत डॉ. राजेन्द्र मिश्र और जयप्रकाश अंतरंग रहे हैं। मिश्र जी जयप्रकाश की गंभीर आलोचना दृष्टि से प्रभावित रहे।

तब मैं, युवा और वरिष्ठ इन दोनों आलोचकों से इसलिए भिन्न नहीं था कि...मैं मेरा फकत एक व्यंग्य संग्रह आया था...और तत्कालीन आलोचना व आलोचकों की कोई भनक मुझे नहीं थी। तब से आज तक मिश्र जी से कई मुलाकातें होती रहीं। मैं उनकी भंगिमाओं से प्रभावित भी हुआ पर यह कभी नहीं लगा कि समकालीन हिंदी साहित्य में व्यंग्य को लेकर उनकी कोई धारणा रही होगी। जयप्रकाश प्रगतिशील आलोचक हैं इसलिए परसाई की परम्परा के पैरोकार रहे और व्यंग्य के पक्षधर तो शायद नहीं हैं पर व्यंग्य पर अधिकारपूर्वक बातें वे कर लेते हैं। अब वे हमारे दुर्ग के शासकीय महाविद्यालय में आ गए हैं।

मिश्र जी से मिलने से लगता था कि वे अज्ञेय की परंपरा के कायल हैं। एक बार रायपुर एक मित्र की बेटी के वैवाहिक कार्यक्रम में जाते हुए उनके घर के पास से निकला तब उनसे मिलने का सुयोग बना था। वे आत्मीयता से मिले और उन्होंने मुझे खजूर के गुड़ से पागे गए नारियल के लड्डू खिलाए जो उनके कलकत्ता के किसी प्रेमीजन ने भिजवाए थे। मिश्र जी का एक आलेख 'कलकत्ता का अनुवाद नहीं हो सकता' शीर्षक से भी है जिसमें उन्होंने कलकत्ता की सेंट्रल लाइब्रेरी में जाकर कलकत्ता के पठन-पाठन व पुस्तक संस्कृति को सिलसिलेवार ढंग से स्मरण किया था। एक बार रायपुर साहित्य महोत्सव में भोजन के समय उनके मित्रों के साथ हम सब साथ थे, जिसमें निरंजन महावर, विनोदकुमार शुक्ल, डॉ. राजेन्द्र मिश्र के साथ मैं और अशोक सिंघई भी बैठे हुए थे।

घर में डॉ. मिश्र धीमे-धीमे अज्ञेय और उनकी यायावरी और उनकी स्मृति परंपरा पर विस्तार से बातें करते रहे। मैंने उन्हें बताया कि अज्ञेय के पत्रों का एक संकलन है जिसमें उनका लिखा एक पत्र आपके नाम भी है। यह सुनकर उन्हें अच्छा लगा। कनक तिवारी ने अपने राजनीतिक कार्यकाल में जिन दो सृजन पीठों की स्थापना करवाई थी उनमें से एक भिलाई में बख्शी सृजन पीठ में प्रमोद वर्मा अध्यक्ष हुए थे और बख्शी शोध पीठ में डॉ. राजेन्द्र मिश्र अध्यक्ष मनोनीत हुए थे। प्रमोदजी को आलोचना जगत में मार्क्सवादी आलोचक भी माना जाता है। वे मुक्तिबोध और परसाई के मित्र

रहे हैं। राजेंद्र जी ने अज्ञेय और विनोद कुमार शुक्ल का सान्निध्य ज्यादा पसंद किया। इन दोनों अध्यक्षों की आलोचना दृष्टि में भेद होने के बावजूद बौद्धिक धरातल पर ये दोनों अज्ञेय को गुरु मानते रहे हैं।

यह अज्ञेय का ही प्रभाव रहा कि राजेन्द्र मिश्र की मित्र मंडली में निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी और विनोद कुमार शुक्ल रहे। निर्मल वर्मा को अज्ञेय के बाद स्मृति परम्परा का महत्वपूर्ण लेखक माना जाता है। अशोक वाजपेयी तो अज्ञेय पर मुग्ध रहे ही रहे। यह यदा-कदा उनके वक्तव्यों से प्रमाणित होता रहा है। एक बार मिश्र जी ने दबे स्वर में यह भी कहा दिया था कि “गद्य और पद्य दोनों में एक साथ विपुल लेखन में अज्ञेय के बाद दूसरा नाम विनोद कुमार शुक्ल का है।”

बख्शी शोध पीठ के आयोजन में उन्होंने निर्मल वर्मा को बुलाकर बहुत उम्दा व्याख्यान करवाया था। तब अपने अंतिम समय से कुछ पहले रायपुर पहुंचे यायावर कथाकार निर्मल वर्मा ने अपनी स्वप्निल आंखों से झरते उद्बोधन में कहा था कि “जब धर्म और राजनीति अपने रचनात्मक अभिप्राय से चूक जाते हैं तब साहित्य की अकेली आवाज होती है।” उनका आशय था कि यह साहित्य ही है जो मनुष्य को जोड़ने और देश के हर अलगाव वाद के खिलाफ आवाज उठाने में निरन्तर जुटा हुआ है।

निर्मल वर्मा के इस भावप्रवण व्याख्यान के बाद प्रश्नोत्तर सत्र में पहला प्रश्न मैंने पूछा जिसका

निर्मल जी ने जवाब दिया था। घर में जब मिश्र जी ने अपने द्वारा सम्पादित ‘एकत्र’ का अंक दिया तब वह निर्मल वर्मा पर विशेष अंक था जिसमें मेरा प्रश्न और निर्मल जी के जवाब दोनों शामिल थे। मझे दी गई एक पुस्तिका के मुखपृष्ठ पर निर्मल वर्मा की एक पंक्ति है “मैं पहले भी यहां आया हूँ।” रायपुर में निर्मल जी का यह दूसरा छत्तीसगढ़ प्रवास था। इसके पहले वे बस्तर आए हुए थे।

एक बार ‘अक्षरपर्व’ में प्रकाशित मेरे यात्रावृत्तांत ‘नहाती, नहलाती, सट्याद्री’ को पढ़कर राजेन्द्र मिश्र जी का सबेरे सबेरे ही फोन आ गया था। संभवतः उस रचना को पढ़कर या उसके शीर्षक में भी अज्ञेय की यायावरी जैसी कोई गूंज उन्हें सुनाई दी होगी। पर मैं जानता हूँ कि मुझमें अज्ञेय की किसी भी परंपरा का तनिक भी अनुशीलन नहीं है। बल्कि असहमतियों के पुंज अज्ञेय को लेकर पीढ़ी का अंतराल होते हुए भी अनेक लोगों के बीच उनसे मेरी भी असहमतियां रही हैं और मेरे संग्रह का पहला लम्बा आलोचनात्मक आलेख उन पर केन्द्रित है जिसका शीर्षक है ‘साहित्य के हैंगिंग गार्डन में टैगोर, जैनेन्द्र, अज्ञेय और अशोक वाजपेयी।’

आलोचना के एक वृहद् व्यक्तित्व डॉ. राजेंद्र मिश्र का जाना हिंदी आलोचना की एक भंगिमा विशेष का जाना है। उनका यह अवसान हमारे आसपास आलोचना जगत में वैसी ही बड़ी क्षति है जैसी क्षति प्रमोद वर्मा के अवसान पर हुई थी।

संपर्क - मुक्तानगर, दुर्ग, छत्तीसगढ़, पिन: 49100, मो. 9009884014

## विला के आँसू

-अरुण अर्णव खरे

“तुमको गोल्फ खेलते हुए छः माह होने को आए जय, पर अभी तक वहीं हो जहाँ से शुरू किया था”-कंधे से गोल्फ-क्लब्स का बैग उतारते हुए चंदन सक्सेना ने कहा।

“सही कह रहा है चंदू”-जॉन डि'कोस्टा ने कुर्सी पर पसरते हुए चंदन की बात का अनुमोदन किया-“हर होल पर तुम पाँच-छः बोगी करोगे तो खेल लिया गोल्फ।”

“जय, तुम तो वॉलीबॉल ही खेलो, तुम उसी के लिए बने हो”-असलम अली ने भी बैठने के लिए कुर्सी खींचते हुए कहा-“पर समस्या है कि तुम यहाँ अकेले वॉलीबॉल कैसे खेलोगे.. अतएव मेरी सलाह है थोड़ा सीरियस होकर गोल्फ खेलो।”

जयदीप सिंह बत्रा जो अब तक अपने मित्रों की बातें सुन रहा था, बोला-“यार चैलेंज मत करो, कल देख लेना पहले ही होल पर यदि ईगल न बनाया।”

तीनों उसकी बात सुन कर खिलखिला कर हँस पड़े। जयदीप ने उन्हें घूर कर देखा-“विश्वास नहीं है मेरे कैलिबर पर, तो मत करो.. कल सब मेरा खेल देखकर पछताओगे कि व्यर्थ ही चैलेंज कर दिया बंदे को।” कहते हुए वह भी कुर्सी पर फँस गया।

असलम अली, जयदीप सिंह बत्रा, चंदन सक्सेना और जॉन डि'कोस्टा, दोस्तों की ये चौकड़ी, नाम की चौकड़ी नहीं थी, दोस्ती की मिसाल थी। पैंतालीस साल पहले इंजीनियरिंग कॉलेज के फीस-काउंटर पर चारों की मुलाकात हुई थी। नजरें मिली। होंठों पर मुस्कराहट थिरकी। हाथ मिलाए। औपचारिक परिचय हुआ। फिर दोस्ती के धागे में ऐसे बँधे कि समय और दुनियादारी की कोई भी चुनौती उनके बंधन को कमजोर नहीं कर सकी।

आज सभी की उम्र पैसठ के आसपास है लेकिन जिंदगी जीने का वही पुराना जज्बा, वही खिलंदड़पन और बातचीत में वही ठसक, जो जवानी की देहलीज पर कदम रखते समय थी।

कॉलेज कैम्पस में दोस्तों की ये चौकड़ी हिंदु, मुस्लिम, सिख, ईसाई वाली सच्चे हिन्दुस्तान की तस्वीर थी। सभी इन्हें एबीसीडी नाम से पुकारते। दोस्ताना इतना गहरा कि लोग आश्चर्य करते। कहते, जरूर पिछले जन्म में भाई रहे होंगे, मोहब्बत में कुछ कमी रह गई होगी सो इस जन्म में आ मिले। कमाल की बात यह कि चारों ने अलग-अलग ब्रांच लेकर अपनी पढ़ाई पूरी की और जब रास्ते अलग होने का समय आया तो चारों ने वादा किया कि जहाँ कहीं भी रहेंगे साल में एक बार अवश्य किसी स्थान पर मिलते रहेंगे और जीवन के अंतिम पड़ाव पर सभी एक साथ रहेंगे। सभी वादे के पक्के निकले .. शायद ही कभी किसी ने व्यस्तता या कोई अन्य बहाना बनाकर, सबकी सहमति से बने मिलन-कार्यक्रम से दूरी बनाने की सोची हो। उसी वादे के अनुसार अब चारों दोस्त अपनी-अपनी पत्नियों के साथ एक ही छत के नीचे एबीसीडी विला में रह रहे हैं।

चारों की ब्रांच अलग-अलग होने के साथ ही रुचियाँ भी अलग-अलग थीं। असलम अली संगीत का शौकीन, तबला-मास्टर, एक बार अपने शहर में गायिका सुधा मल्होत्रा के साथ संगत कर चुका था। जयदीप बत्रा वॉलीबॉल का अच्छा खिलाड़ी, राष्ट्रीय स्कूली स्पर्धा में पंजाब का प्रतिनिधित्व करने वाला। चंदन सक्सेना पेंटिंग्स में रुचि रखने वाला, कमाल के लैंडस्केप्स और पोर्ट्रेट बनाता। उसके द्वारा भारतरत्न विश्वेसरैया का बनाया हुआ पोर्ट्रेट आज भी इंजीनियरिंग कॉलेज के कल्चरल

हाल की शोभा है। जॉन डि'कोस्टा गजब का दौड़ाक, दिखने में ही एथलीट लगता, इंजीनियरिंग में एडमिशन न लेता तो एथलेटिक्स में देश का नाम रोशन करता। 800 मी. और 1500 मी. दौड़ में आल इंडिया यूनिवर्सिटी चैम्पियन रहा।

जॉन डि'कोस्टा सबसे पहले रिटायर हुआ। इंजीनियरिंग करते ही उसका सेलेक्शन सेकंड लेफ्टिनेंट पद पर हो गया था। रिटायरमेंट के समय वह आर्मी में ब्रिगेडियर था। सेवा काल में वह अनेक महत्वपूर्ण मिशन में शामिल रहा, युगोस्लाविया में अशांति के समय यू.एन. की शांति-सेना में और कारगिल युद्ध के समय द्रास सेक्टर में पदस्थ था। उनकी पत्नी मारिया आर्मी स्कूल में टीचर थी। दो बच्चे-दोनों डॉक्टर, एक उनकी ही तरह आर्मी में और दूसरा एम्स के नेफ्रोलोजी डिपार्टमेंट में।

रिटायर होने से पहले डि'कोस्टा ने तीनों दोस्तों से सम्पर्क किया। कॉन्फ्रेंसिंग कॉल पर सलाह-मशविरा हुआ। गोवा और ऊँटी में साथ रहने के प्रस्ताव पर विचार किया गया, लेकिन ट्रस्ट प्लेस होने के कारण सहमति नहीं बन सकी। तय हुआ बैंगलोर के आउटर सर्किल में जमीन तलाश कर विला बनाई जाए जिसमें सब साथ रह सकें, नौकरों के निवास का इंतजाम हो, गार्डन हो, जिम हो, स्नूकर सहित कुछ इंडोर गेम्स की व्यवस्था हो, एक बैडमिंटन कोर्ट हो और 10-12 किमी की परिधि में गोल्फ कोर्स भी।

डि'कोस्टा और असलम अली अलग-अलग समय बैंगलोर में रह चुके थे। असलम ने इलेक्ट्रॉनिक्स में इंजीनियरिंग करने के पश्चात बैंगलोर से सेटलाइट कम्युनिकेशन में मास्टर डिग्री ली थी। कुछ समय इसरो में काम किया और फिर बीस साल नासा में काम करने के बाद दो साल पहले ही भारत लौटा था। एक लड़की है जिसकी शादी हो चुकी है। उसने बहुत रोका, अमेरिका में ही रहने के लिए मनाने की कोशिश की, लेकिन

असलम का दिल दोस्तों में रमा था। बेटी से वादा किया जब कहेगी मिलने आ जाऊँगा पर जिंदगी के शेष दिन अपनी मर्जी से गुजारने दे। डि'कोस्टा ने कर्नाटक गोल्फ एसोसिएशन के आसपास भूमि तलाशने की जिम्मेदारी ली। असलम भी बाद में सहयोग करने आ गया। शेष दोनों दोस्तों ने जमीन का सौदा करने से लेकर सर्व सुविधा संपन्न विला बनाने की जिम्मेदारी डि'कोस्टा और असलम को सौंप दी। गोल्फ कोर्स से पंद्रह-सत्रह किमी के भीतर ही होसकोटे में उन्हें उनकी जरूरत के हिसाब से जमीन भी मिल गई। डि'कोस्टा की देखरेख में निर्माण कार्य शुरू हो गया। बाकी दोस्त भी बारी-बारी से कार्य देखने आते रहते। दो साल की अवधि में चारों दोस्तों की सपनों की दुनिया ने आकार ले लिया। तब तक जयदीप सिंह बत्रा भी सबमर्सिबल पंप बनाने की अपनी फैक्टरी का सारा दारोमदार अपने बेटे मधुदीप को सौंप कर जिम्मेदारियों से मुक्त हो गया था। महाराष्ट्र विद्युत मंडल में चीफ इंजीनियर के पद पर कार्यरत चंदन सक्सेना तीन माह पश्चात रिटायर होने वाला था। निःसंतान होकर भी निःसंतान नहीं था। बालग्राम की एक लड़की की परवरिश की पूरी जिम्मेदारी वहन की और उसका विवाह किया। दामाद बैंक में पी.ओ. है। लड़की स्वयं डेंटल सर्जन है।

धूमधाम से गृह प्रवेश हुआ। सभी दोस्तों के बच्चे भी इकट्ठे हुए। उनके लिए यह किसी अजूबे से कम नहीं था। दोस्ती ऐसी भी हो सकती है, देखकर आह्लादित थे सभी। ऐसी दोस्ती तो कहानियों में भी किसी ने नहीं पढ़ी थी। सब खुश थे। बच्चे वापस लौटे तो निश्चित थे अपने पैरेंट्स की खुशी और जीने के जज्बे को लेकर। अब एबीसीडी विला में नौ लोग रह रहे थे-चारों दोस्त और उनकी पत्नियाँ व चंदन सक्सेना की माँ, सावित्री सक्सेना। सब उन्हें अम्मा जी कहते और वह भी सब पर अपना स्नेह लुटाती, आशीष वर्षा करती।

वह सुबह पाँच बजे उठ जाती, दो घंटे पूजा करती। संध्या आरती में सब इकट्ठे होते। तीज त्योहारों पर भजन का गायन होता। अम्मा जी ढोलक पर गाती, रीतू सक्सेना हारमोनियम और असलम तबले पर संगत देते। रविवार को सभी चर्च जाते। गुरुवार को गुरुद्वारे में जाकर कार सेवा करते और शुक्रवार को फज्र की नमाज पढ़कर ही सब गोल्फ खेलने जाते।

जिंदगी चल पड़ी थी अपनी पूरी ठसक, मस्ती और उल्लास के साथ। सुबह चारों जोगिंग करते, फिर गोल्फ खेलते, गोल्फ-क्लब में बैठ कर बीयर पीते और लंच के समय तक वापस लौट आते। साथ में लंच लेते। शाम को पत्नियों के साथ लॉन में बैठकर गप्पबाजी का दौर चलता, कॉलेज के दिनों की यादें ताजा करते, सर्विस के अनुभवों को शेयर करते, कभी-कभी बढ़-चढ़ कर डींगें हँकते, पकड़ाते तो ठहाके लगाने लगते। कभी कैरम, कभी ताश तो कभी अंताक्षरी भी होती। आठ बजे तक डिनर और फिर उसके बाद थोड़ा टहलना। रोज की यही दिनचर्या थी चारों की। जब कभी गोल्फ खेलने नहीं जाते तो स्विमिंग करते और टेबल टेनिस या स्नूकर खेलते। किसी का बर्थडे होता तो विला में उत्सवी माहौल होता, बच्चे आ जाते तो रौनक बढ़ जाती। तेज संगीत की धुनों पर घंटों थिरकते और उमर को ठेंगा दिखाते हुए जिंदगी के उन पलों को जीने की कोशिश करते जो विभिन्न जिम्मेदारियों के चलते ठीक से जी नहीं सके थे। लोहरी, होली, ईद, दीवाली, क्रिसमस जैसे सभी त्योहार जोश खरोश से मनाते। जी भर कर खाते, मस्ती करते। न मीठे का परहेज और न बीमारी का भय। कमाल यह कि डि'कोस्टा की ब्लड-शुगर जो रैंडम टेस्ट में दो सौ निकलती थी, खाने के बाद कभी एक सौ तीस से ऊपर नहीं गई। चंदन सक्सेना का बी.पी. नार्मल रहने लगा और असलम अली को दो साल

में एक बार भी अस्थमा का अटैक नहीं हुआ। जयदीप जो स्लिप डिस्क के कारण कमर में हमेशा बेल्ट लगाकर रखता था, अब ढोल की धुन पर बेखौफ भांगड़ा करता था।

कुछ मामलों में उनकी पसंद और रुचियाँ अलग थी। फिल्म देखने जाना हो तो चारों कभी एक मत नहीं होते लेकिन इसका रास्ता भी उनमें खोज लिया था। चारों की पसंद की चिटें बनाई जाती और अम्मा जी से एक उठवाई जाती। जो चिट निकलती सभी वही फिल्म देखने जाते। बाहर खाने का प्रोग्राम बनता तब भी यही समस्या आती। असलम अली को नॉनवेज छोड़े बीस साल से ऊपर हो गए थे और अम्मा जी तो प्याज भी नहीं खाती थी। सब अम्मा जी पर निर्णय छोड़ देते और हर बार जैन भोजनालय या फिर राजस्थानी रेस्त्रां में खुशी-खुशी खाकर वापस लौट आते। दुनिया के हर विषय पर बातें करते, बहस करते लेकिन राजनीतिक बातों से परहेज करते।

सभी मित्र एक दूसरे की खुशी के लिए अवसर तलाशते रहते। डि'कोस्टा ने जब नेशनल गैलरी में चंदन सक्सेना के लैंडस्केप्स की प्रदर्शनी लगाने की व्यवस्था की तो चंदन और रीतू की खुशी देखते ही बनती थी। आर्ट-ऐग्जिबिशन चंदन का सपना था। इससे पूर्व अनेक बार उसने प्रदर्शनी लगाने की सोची थी पर कोई न कोई व्यवधान आ जाता। इसी तरह जब मित्रों को पता चला कि जयदीप की पत्नी नवजोत कौर युवावस्था में ब्यूटी-कांटेस्ट में भाग लेना चाहती थी लेकिन परिवार के सदस्यों की नापसंदगी के कारण उसके सपने ने दिल में दबे-दबे ही दम तोड़ दिया था। अब तो उम्र भी नहीं थी पर जब एक माह बाद चेन्नई में पहली मिसेज इंडिया प्रतियोगिता के आयोजित होने की खबर मिली तो मारिया को लगा कि समय का चक्र नवजोत के लिए पीछे घूम गया है ताकि उसके सपनों में रंग भरा जा सके। मारिया

ने उसे मनाया, सवाल-जवाब के लिए प्रशिक्षित किया, जरीन ने रैंप पर चलने की ट्रेनिंग दी। जयदीप ने हर कदम पर उत्साहवर्द्धन किया। चौंसठ प्रतिस्पर्द्धियों में नवजोत सबसे उम्रदराज प्रतियोगी थी पर कुछ कर गुजरने की ललक ने उसकी राह आसान बना दी। वह सेकंड रनर्स-अप रही।

दो साल से ऊपर हो गए थे विला में रहते हुए। होली के त्योहार के अगले दिन अम्मा जी अचानक बीमार पड़ गई। पिछले कई दिनों से उनका जी मिचली कर रहा था, थकान महसूस हो रही थी, पैरों में सूजन थी लेकिन उन्होंने कभी इसके बारे में किसी को नहीं बताया था, गुपचुप अपना देशी इलाज करती रहती थीं। डॉक्टर ने उनको तुरंत अस्पताल में भर्ती कर लिया और बहुत सारे टेस्ट्स लिख दिए। रिपोर्ट आई तो सब दंग रह गए। उनकी दोनों किडनियाँ काम नहीं कर रही थी। उनका बदलना जरूरी था। डि'कोस्टा ने अपने नेफ्रोलॉजिस्ट बेटे से भी सलाह ली। उसकी भी राय यही थी। किडनी की व्यवस्था होने तक दिन में दो से तीन बार डायलिसिस होने लगा। चंदन की भी एक किडनी पूरी तरह काम नहीं कर रही थी अतएव डॉक्टर ने उसकी किडनी लेने से मना कर दिया। यही स्थिति जयदीप के साथ थी। असलम और डि'कोस्टा डर रहे थे कि कहीं अम्मा जी उनकी किडनी लेने से मना न कर दें। चारों ने उन्हें मनाया .. उनके एक नहीं चार बेटे होने का हवाला दिया। उनके हाँ कहते ही डॉक्टर ने दोनों का परीक्षण किया और असलम की किडनी सबसे उपयुक्त पाई।

कुछ महीनों में असलम की किडनी पाकर अम्मा जी स्वस्थ हो गई। असलम के त्याग ने उनके मन में उसके प्रति अतिरिक्त अनुराग जगा दिया। वह उसका विशेष ध्यान रखने लगीं, कहती- 'मेरी तो चलाचली की बेला है पर असलम को

किसी तरह का इंफेक्शन नहीं होना चाहिए। तुम सब उसका ध्यान रखा करो।' उसे छींक भी आती तो वह चिंतातुर दिखने लगती। डॉक्टर की सलाह पर दोनों को ही अपनी जीवनशैली में परिवर्तन करना पड़ा। असलम का खेलना कम हो गया, बीयर पीना एकदम छोड़ दिया। दोस्तों के साथ आउटिंग पर जाना सीमित कर दिया।

मई का पहला रविवार था। उस दिन कुछ ज्यादा ही गर्मी थी। सभी हर दिन की तरह शाम को लॉन में बैठे ओसामा बिन लादेन की मौत की चर्चा कर रहे थे जिसे कुछ दिन पूर्व ही अमेरिकी फौज ने रात के अंधेरे में उसके घर में घुस कर मारा था। डि'कोस्टा अमेरिकी ऑपरेशन के बारे में बता रहा था कि किस तरह अमेरिकी कमांडोज ने ऑपरेशन को अंजाम दिया और ओसामा के शव को समुद्र में बहा दिया।

"उस बास्टर्ड के साथ यही होना चाहिए था"-जयदीप आकस्मिक रोष में आते हुए बोला।

"सही कहा तुमने, पूरी दुनिया में आतंक फैला रखा था स्साले ने"-चंदन सक्सेना ने हाँ में हाँ मिलाई।

"मैं तुम लोगों की बातों से इतफाक नहीं रखता यार, जो आदमी मर गया, उसकी डेड बॉडी के साथ ऐसा नहीं करना चाहिए था अमेरिका को"-असलम ने कहा तो सभी उसकी ओर देखने लगे।

"असलम भाई, ऐसे व्यक्ति से क्या हमदर्दी रखना, कुत्तों की मौत पर किसी को अफसोस करते देखा है कभी .. कुत्ता था वह"-चंदन सक्सेना ने अपने हर शब्द पर जोर देते हुए कहा।

"वह आतंकवादी था, उसके मरने की खबर से मुझे भी खुशी हुई है .. लेकिन उसके शव के साथ अमेरिका का बरताव नहीं जमा मुझे, हमारे यहाँ तो मृत व्यक्ति को नमन करने की परंपरा है"-असलम ने कहा।

“अरे छोड़ो, ये बात यही पर, हम स्वीप खेलते हैं, बहुत दिनों से नहीं खेला”-डि'कोस्टा ने बात बदलने की कोशिश में जोर से आवाज लगाते हुए कहा-“मारिया, ताश और फ्रिज से कोल्डड्रिंक भिजवा दो”

असलम बहुत देर से बैठा हुआ था। कमर में दर्द सा महसूस हुआ। डॉक्टर ने बहुत देर तक एक ही पोजिशन में बैठने से मना किया था अतएव सॉरी बोलकर वहाँ से उठ गया।

बात कुछ भी नहीं थी लेकिन धार्मिक संवेदनाओं की गीली जमीन पर संदेह के कैक्टस उग आए। पहली बार असहमति के स्वर ने दिलों में हलचल पैदा कर दी थी। डि'कोस्टा ने असलम की तरफ से सफाई देने की कोशिश भी की किंतु असलम के उठकर चले जाने से, चंदन और जयदीप के मन में आक्रोश का गुबार उठने लगा था। दोनों गलती से भी यह सोचना नहीं चाहते थे कि असलम को लगातार बैठने से परेशानी हो रही होगी।

अगले दिन अम्मा जी ने पूजा के समय पूछा कि “असलम नहीं दिख रहा, तबियत तो ठीक है न।” जवाब जरीन ने दिया-“रात में ठीक से सो नहीं सके, एक बार उल्टी भी हुई थी .. अभी सो गए हैं, आप कहें तो जगा देती हूँ”

“नहीं रहने दो बहू, अभी आराम कर लेगा तो शाम को भजन के समय तक ठीक हो जाएगा।”

उस दिन तीनों गोल्फ खेलने भी नहीं गए। घर पर ही रहे। विला में दिन भर अजीब सा सन्नाटा पसरा रहा, सभी एक दूसरे से आँखें चुराते रहे।

दो दिन बीत गए। पिछला दिन इस मौसम का सबसे गरम दिन था। उस दिन भी सूरज सुबह से ही अंगारे बरसाने लगा था। असलम अब पहले से बेहतर था। सभी सामान्य दिखने का प्रयास कर रहे थे लेकिन बेतकल्लुफ हँसी और ठहाके होंठों तक आने से कतराने लगे थे। चाय

का प्याला टेबल पर रखते हुए डि'कोस्टा ने अखबार उठा लिया। पहली हेडलाइन पढ़ते ही उसका दिमाग झनझना गया।

“क्या हुआ” जयदीप ने पूछा।

“ढाई साल की बच्ची के साथ दुष्कर्म और फिर जला कर मार डाला”-डि'कोस्टा ने हेडलाइन दोहराई।

“उफ़फ, कहाँ की घटना है .. किसने किया यह घिनौना काम”-जयदीप ने पुनः प्रश्न किया।

“अलवर की है .. कोई फिरोज संदेह में पकड़ा गया है”

“फिरोज .. कैसी कौम है ये, या तो आतंकवादी बनेंगे या बलात्कारी”-चंदन सक्सेना उत्तेजना में बोल गया। वह यही नहीं स्क्रा, कुर्सी के हथ्थे पर हाथ पटकते हुए बोला-“सालों को भगा देना चाहिए मुल्क से”

“अरे चंदू .. ये कैसी बात कर रहे हो .. किसी एक के कुकर्म के लिए पूरी कौम कैसे जिम्मेदार हो सकती है”-डि'कोस्टा ने चंदन की ओर देखते हुए कहा-“यदि लड़की मुस्लिम होती और बलात्कारी हिंदू होता, तब भी तुम यह कहते क्या?”

“काल्पनिक बातों के उत्तर नहीं दिए जाते जॉन”-चंदन के स्वर में यथावत तल्खी थी।

“जॉन, याद करो, क्या इंदिरा गांधी की हत्या के लिए पूरा सिख समुदाय दोषी था पर सजा तो सबको मिली थी .. हफ्तों घर में दुबक कर रहना पड़ा था उन्हें”-जयदीप ने भी डि'कोस्टा की बात का प्रतिकार किया।

असलम ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप उठकर अंदर चला गया। कुछ देर बाद तीनों भी उठ कर अपने-अपने कमरों में चले गए।

संध्या आरती के बाद असलम और जरीन ने अम्मा जी के पैर छूकर बताया-“हमें आज ही रात को अमेरिका निकलना है, सारा अकेली है वहाँ,



दामाद जी को क्लब में किसी ने गोली मार दी है- दाहिने हाथ पर लगी है

“हे भगवान, ईश्वर रक्षा करे, वहाँ पहुँचते ही खबर करना .. हो सके तो दोनों को कुछ दिनों के लिए यहाँ ले आना, अपनों के बीच रहेंगे तो गम जाता रहेगा।”

रात में तीन बजे फ्लाइट थी अतएव असलम और जरीन दस बजे घर से एयरपोर्ट के लिए निकल गए। किसी ने उन्हें एयरपोर्ट तक छोड़ देने के लिए नहीं कहा। जब दोनों टैक्सी में बैठ रहे थे तभी उनके कानों में आवाज पड़ी, किसकी आवाज थी ठीक से समझ नहीं आया-“अच्छ बहाना मारा है, भागना था यहाँ से तो डंके की चोट पर चला जाता।”

तीन दिन बाद डि'कोस्टा को असलम का मेल मिला। सब कुछ विस्तार से लिखा था .. “सारा ने झूठ बोला था उनसे कि हाथ में गोली लगी है, गोली पेट में लगी है, हालत बहुत अच्छी नहीं है अभी .. किसी सिरफिरे ने क्लब के अंदर अंधाधुंध गोलियाँ बरसाई थी। अदनान सेफ जोन में थे लेकिन एक बच्चे को बचाने के चक्कर में वह गोलियों की चपेट में आ गए थे .. सारा बहुत टेंसन में थी, हमारे पहुँच जाने से रिलीफ महसूस कर रही है .. अम्मा जी को बता देना।”

डि'कोस्टा ने सबको बताया पर चंदन और जयदीप ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। शायद वह इसे भी मनगढ़ंत कहानी ही समझ रहे थे। पाँच बजे मधुदीप का फोन आया - “पापा, एक सप्ताह पहले तारसेम चाचा को गोली मार दी है किसी ने, थोड़ी देर पहले चाची ने खबर दी है, बुलाया है हमें ..” तारसेम जयदीप का चचेरा भाई है। उसकी पत्नी नवजोत की सगी बहन है। चालीस साल पहले तारसेम अपने एक दोस्त के साथ होटल में काम करने के लिए अमेरिका चला गया था। वहाँ खूब पैसा कमाया। कालांतर में स्वयं होटल का व्यवसाय शुरू कर दिया। शिकागो में

पंजाबी तड़का नाम से तीन रेस्टोरेंट हैं, जिनका काम उसके दोनों बेटे देखते हैं।

खबर सुनकर जयदीप को धक्का लगा। उसके पास तो पासपोर्ट भी नहीं है, कभी बनवाया ही नहीं .. अब कैसे तारसेम को देखने अमेरिका जा पाएगा। तारसेम ने कितनी बार उसे बुलाया था लेकिन काम की अधिकता के कारण वह हमेशा टालता रहा था। उससे चार साल बड़ा है तारसेम। पढ़ाई में मन लगता नहीं था सो ज्यादा पढ़ नहीं सका, लेकिन खाना बहुत अच्छा बनाता था। छुटपन से ही जालंधर के ढाबों पर काम करने लगा था। बहुत तरक्की की उसने .. अमेरिका में उसके रेस्त्रां की बहुत धाक है। वह अक्सर बताता रहता था। इधर बहुत दिनों से बात नहीं हुई थी। उसे शायद पता भी नहीं होगा कि मैं सब कुछ छोड़कर बंगलौर में रहने आ गया हूँ। यहाँ आकर मैं भी तो ऐसा रम गया कि कभी तारसेम से बात करने का ध्यान ही नहीं आया। प्रभजोत परजाई ने भी एक हफ्ते बाद खबर की .. जरूर सीरियस बात होगी। कैसा होगा तारसेम, किसी ने क्यों मारी होगी उसे गोली? मधुदीप ने पहले पासपोर्ट बनवाया था उसी को बोलता हूँ देख आए चाचा को .. दिल को तसल्ली मिल जाएगी .. तब तक मैं उसका काम देख लूँगा .. अब यहाँ भी मन कहाँ लग रहा है ठीक से। कल ही पासपोर्ट के लिए अप्लाई कर दूँगा, फिर मैं भी चला जाऊँगा तारसेम से मिलने। कुछ पलों में कितना कुछ सोच लिया जयदीप ने।

सोचते-सोचते अंधेरा घिर आया। चंदन आवाज न लगाता तो उसे पता ही नहीं चलता कि सात बज गए हैं। डि'कोस्टा और अम्मा जी लॉन में बैठे थे। डि'कोस्टा उन्हें असलम के बारे में दोबारा बता रहा था। अम्मा जी को लग रहा था कि उन्हें पूरी सच्चाई नहीं बताई जा रही है सो वह कुरेद-कुरेद कर पूछ रही थी। चंदन और जयदीप भी जब आकर बैठ गए तो अम्मा जी उठकर चली गई। जयदीप ने डि'कोस्टा को सारी बात बताई -

‘मैं कल सुबह जालंधर जाना चाहता हूँ, अमृतसर तक फ्लाइट से चला जाऊँगा फिर टैक्सी कर लूँगा।’

“जाने से पहले तुम एक बार असलम से बात कर लो, सारा और अदनान भी लांगग्रोव, शिकागो में ही हैं .. शायद वह तुम्हारी कुछ मदद कर सकें”

“पता नहीं क्यों असलम पर पहले जैसा विश्वास नहीं रहा .. वह बहकी-बहकी बातें करने लगा है, आतंकियों तक से हमदर्दी है उसे” - जयदीप के स्थान पर चंदन ने उत्तर दिया।

“ऐसी बात नहीं है चंदू, असलम जैसा था वैसा ही है, हमारे देखने का नजरिया बदल गया है।”

“तो क्या हम तुम्हें गलत लगते हैं जॉन, बहुत गलत बात कह दी तुमने, हम इसे नजरअंदाज नहीं कर सकते।”

“मैं तुम्हें सफाई देना नहीं चाहता..अभी तुम गुस्से में हो, कभी ठंडे दिमाग से सोचकर देखना” -डि'कोस्टा ने बहुत संभल कर हर शब्द को नापतौल कर कहा-“जय, तुम परेशान हो इसलिए सजेशन दिया था, असलम हमारा दोस्त है..मुझे पूरा विश्वास है उसपर, वह जरूर मदद करेगा।”

अगले दिन जयदीप और नवजोत चले गए। विला में अब केवल पाँच लोग बचे थे। हमेशा चहकने वाली विला की दीवारें बेजान हो चली थीं। अम्मा जी भी अधिकतर अपने कमरे में रहतीं, कम ही बाहर निकलतीं। रीतू कमरे में उनके लिए चाय, नाश्ता और खाना लेके जाती। डि'कोस्टा और चंदन ने भी शाम को लॉन में बैठना बंद कर दिया था, गोल्फ खेलना तो बहुत पहले ही छूट चुका था।

एक सप्ताह बाद असलम का चौकाने वाला मेल डि'कोस्टा को मिला-‘मधुदीप सुबह ही अमेरिका पहुँचा है। उसके पहुँचने पर पता चला कि जिस

बच्चे अर्श को बचाने में अदनान को गोली लगी थी वह जयदीप के भाई तारसेम का पोता है। मधुदीप तो जयदीप से बात कराना चाह रहा था लेकिन जयदीप ने बात नहीं की, शायद नाराज है अब तक। अदनान पहले से बेहतर है। दो-तीन माह यहाँ रहना होगा उसके बाद ही तुम सबके बीच फिर से आ सकूँगा।”

लंच-टाइम में डि'कोस्टा ने चंदन को मेल पढ़कर सुनाया। उसे उम्मीद थी कि चंदन का गुस्सा जाता रहेगा, पर हुआ उल्टा ही। रोष-मिश्रित स्वर में बोला - “अपने को बहुत बड़ा पीर समझता है असलम। जयदीप की नाराजगी जायज है।”

“चंदू, तुम बात को कहाँ से कहाँ ले जाते हो, क्या हुआ है तुमको जो तुम असलम के बारे में इतना निगेटिव सोचने लगे हो। अदनान ने जयदीप के भाई के पोते की जान बचाई है।”

“ठीक है” कहते हुए चंदन ने मुँह फेर लिया।

“क्या हम अपने दोस्तों के बीच भी अपने मन की बात नहीं कह सकते, हमारी कई बातें पहले भी सबको पसंद नहीं आती थीं लेकिन हममें कभी मनमुटाव नहीं हुआ .. एक छोटी सी बात पर हमारी सालों की दोस्ती में ख़ाई पैदा हो गई है” -डि'कोस्टा ने चिंतातुर स्वर में कहा।

“तुम्हें पता नहीं है जॉन, तुम तो फौज में अपनी डियूटी बजाते रहे .. असलम शुरू से ही ऐसा था..जब बाबरी मस्जिद गिरी थी तब भी उसकी प्रतिक्रिया विचित्र ही थी। उस समय मेल-वेल तो था नहीं..अमेरिका से लेटर भेजकर अपनी नाराजगी जताई थी उसने।”

“सच कहूँ तो उसके बाद फैली हिंसा को लेकर मैं भी दुखी था, नहीं होना चाहिए था वह सब।”

“तुम दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो .. हमारी भावनाओं को नहीं समझ पाओगे”-चंदन

सक्सेना ने रोष से कहा।

“कौन सी भावनाओं की बात कर रहे हो तुम..बलात्कार जैसी घटनाओं में भी मजहब को बीच में ले आते हो..बलात्कारी मुस्लिम हुआ तो फाँसी माँगते हो और हिंदू होने पर चुप्पी लगा लेते हो..परसों ही एक ईसाई लड़की को उसके साथ पढ़ने वाले दो लड़कों ने बलात्कार कर मार डाला..पर कहीं कोई शोर शराबा नहीं..तुम्हारा भी खून नहीं खौला इस दरिदगी पर”-डि'कोस्टा भी अपने को संयत नहीं रख सका और तेज आवाज में बोला-‘ग्राहम स्टेंस को दो बच्चों सहित निर्ममता से जीवित जलाकर मार डाला था उस समय भी तुम चुप ही थे चंदू .. कितने चूजी हो तुम भी।”

“बहुत हुआ जॉन, अब आगे कुछ मत कहना, तुम्हारी बकवास सुनने के लिए नहीं रुका हूँ .. मैं भी जा रहा हूँ यहाँ से .. जयदीप भी शायद ही अब आएगा .. बुला लेना अपने हमदर्द दोस्त को और ऐश करना दोनों मिलकर।”

“रोक कौन रहा है तुमको .. कल जानेवाले हो तो आज ही निकल लो मेरी बला से”-डि'कोस्टा की सहनशक्ति जवाब दे गई और उसने भी चंदन के लहजे में अपना गुबार निकाल दिया।

चंदन चला गया। एक माह भी नहीं बीता था कि उसके निधन का समाचार मिला। सीवियर हार्ट अटैक हुआ था। अस्पताल पहुँचने से पहले ही आत्मा आजाद हो गई। रीतू ने बताया था कि जबसे बंगलौर से यहाँ आए थे बहुत चिड़चिड़े हो

गए थे। बात-बात पर झल्लाना उनकी आदत बन गया था। इससे पूर्व जयदीप के गिरने की खबर मिली थी। रीढ़ की हड्डी में फ्रैक्चर होने से बीस दिनों से पलंग पर ही था। हिलना-डुलना भी पूरी तरह से मना था। एक रात जिंदगी से ऊबकर नींद की गोलियों की पूरी शीशी निगल डाली।

डि'कोस्टा अपने बेटे के पास दिल्ली आ गया था। दोस्तों के साथ जो शुगर बिना दवा के भी कंट्रोल में रहती थी, वह एक दिन अचानक पाँच सौ से भी ऊपर पहुँच गई और उसको कोमा में ले गई। सोलह दिन लाइफ सपोर्ट सिस्टम पर रहा और फिर बेहोशी की हालत में ही जिंदगी को अलविदा कह गया। असलम अमेरिका से नहीं लौटा। बेमौसम बर्फवारी की चपेट में आकर उसे अस्थमा का इतना जबर्दस्त दौरा पड़ा कि जिंदगी के लिए साँसें कम पड़ गईं।

आज ए.बी.सी.डी. विला उदास है। जीवन का राग गाने वाली विला की दीवारें मौन हैं। लॉन से उठ कर हवा को तरंगित करने वाले ठहाके शोर में बदल गए हैं। वह अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहा रही है। समय इतना क्रूर हो सकता है नहीं समझती थी ए.बी.सी.डी. विला। तीन महीने से कम समय में ही जिंदगी की महक बिखेरने वाली विला को लोग भूतहा हवेली के रूप में जानने लगे।

डी-1/35 दानिश नगर होशंगाबाद रोड, भोपाल (म.प्र.) पिन: 462026

मो. : 9893007744 ई मेल: arunarnaw@gmail.com

## सभ्यता का शिकंजा

-मंजुरानी सिंह

रानी मेरा सहयोग करती है घर के कामों में वह मेरे लिए अनिवार्यता की हद तक जरूरी है। नहीं आती तो मेरे कई काम रुक जाते हैं या फिर उसके इंतजार में रहते हैं। वो बहुत मेहनती है, साहसी है। वह आदिवासी समूह की स्त्री है, अभी उसके दो बेटे हैं, पति से उसका विच्छेद हो गया है, लगभग दस वर्ष पहले, बिना अदालती हस्तक्षेप के दोनों ने एक एक बेटे को अपने अपने हिस्से बांट लिया है। पति के साथ बेटा छोटा रहता है, वह किसी स्थानीय स्कूल में पढ़ता है पर मुहल्ले के अन्य बच्चों की संगति में जब-तब खेलता नज़र आता है। वहीं उसकी देखादेखी काम से लौटती अपनी माँ से होती है और वह खेल छोड़ उसके पीछे-पीछे किसी विछोह की तड़प बुझाने नहीं बल्कि कुरकुरे या भुजिया-गुझिया के लिए 10 रुपये लेने चलता, भागता रहता है। रानी को उसके लिए एक सहज ममता है, आह्लाद है इसलिए बिना किसी तर्क-वितर्क के उसे 10 रुपये दे देती है। मुझे यह सब पता नहीं चलता अगर यह देन-लेन रानी की इच्छानुरूप हो जाता। असल में रानी अपने इस बेटे के मुँह से बस 'माँ' संबोधन सुनना चाहती है जो वह नहीं देता और रानी दिली तौर पर एक धक्का, एक कसक अनुभव करती है और हल्का करने के लिए मुझसे अपना दुख बांटती है।

रानी के पति को मैंने नहीं देखा पर उसकी एक दुष्ट तस्वीर आँखों के सामने आ जाती है, वैसी ही जैसी किसी सुअर को भगा-भगा कर हैरान-परेषान करनेवालों, फिर उन्हें पकड़ने वालों, मारने-काटने वालों की होती है। एकदम से नृशंस की, जो

एक स्त्री को माँ बनाकर दुनिया में अकेले छोड़ देता है और उसकी एक संतान को भी पराया कर देता है, उसे उसके माँ संबोधन से भी वंचित कर देता है।

रानी बताती है कि कई सालों पहले वो एक मिशन में रसोई का काम करती थी और पति भी वहीं कार्यरत था। बहुत सुखी थी वहाँ, पर पता नहीं उसके पति को वह संस्था रास नहीं आयी और फिर रानी उसके कहे अनुसार एक अच्छी पत्नी की नाई लौट आयी शान्तिनिकेतन के आदिवासी गांव, जहाँ उसके पति का एक छोटा-मोटा घर था। पर उसकी यह गृहस्थी सद्गृहस्थी सिद्ध न हो सकी। रानी के पति का दिल जल्दी ही किसी और स्त्री पर आ गया। रानी को यह बर्दास्त न था। तथाकथित सभ्य लोगों और पढ़े-लिखे लोगों की संगति में उसके तीव्र दिमाग और कोमल दिल ने कुछ संस्कार ग्रहण कर लिए थे। इस संस्कार के तहत संतानों के होते वह और किसी पुरुष के लिए उत्सुक नहीं थी। इस तरह की प्रवृत्ति उसकी दृष्टि में 'छि-छि' जैसी थी।

वह बताती है कि जीवन में अचानक ऐसी दुर्घटना ने छोटी उम्र में ही उसे तोड़ दिया और बहुत दिनों तक वह विक्षिप्त की तरह रही। पर भीतर कुछ था जो उसे टूटने से बचा रहा था, शायद वह 'मैंने कोई गलती नहीं की है' का अपना विवेकी भाव और आत्म स्वाभिमान था। "अब मुझे किसी का डर नहीं लगता, मैं किसी की परवाह नहीं करती। अपना कमाती, अपना खाती, अपने बेटे को खिलाती और किसी को अपना मालिक बनने नहीं देती, कहती है।" "कई लोग चाहते हैं कि उनके माध्यम से मैं अपना

काम-धाम करवाऊँ, पर मैं यह सब समझती हूँ, सब मालिक बनने का पासा है।" 'मसलन सीमेंट-बालू, रंग-चूना आदि का भी जब काम होता है, वह पास में रहते अपने बड़े भाई की भी मदद नहीं लेती, खुद ही करती। उसे अब मनमाने ढंग से जीवन जीना आ गया है, जिसमें जिम्मेदारियाँ बहुत होने के बावजूद आज़ादी का सुकून भी है, किसी का मालिकपना ना सहने का भी सुख है।

"दुख आदमी को सृजता है" यह कथन उसपर अब पूरी तरह सिद्ध होता दिखाई पड़ता है। अपने बच्चे के लिए भी वह अपनी संवेदना और बुद्धि से संचालित है और मानती है कि बड़ा होकर वह समझदार हो जाएगा और उसे मां कहने लगेगा। स्रिया देने में वह कभी भी कंजूसी नहीं करती। यह अलग बात है कि वह नहीं जानती की उसके स्रिये बिना मेहनत के रुपये हैं जो कुरकुरे, डेंड्राइट या जुआ आदि किसी भी चीज में मनमानेपन ढंग से खर्च होंगे। मैंने इन तीनों ही चीजों में आदिवासी और अन्य गरीब बच्चों को लिप्त देखा है, पर रानी को ये बातें बताने का अभी कोई मतलब नहीं, यह मैं जानती हूँ। वह अब आज़ाद है, समझदार है, अपना कमाती है और उसे खर्चना भी जानती है। खुद पर खुद के रौबदाब से हटकर और किसी का रौबदाब नहीं सहनेवाली।

पता नहीं इतनी सारी बातों से रानी का जो रेखाचित्र उभरता है वह एक घटना विशेष के संदर्भ में क्यों कोई अपेक्षित भूमिका नहीं निभाता, मेरे लिए यह एक चिंतनीय विषय है।

रानी ने बताया कि उसकी एक सहेली की लड़की का प्रेमी पलायन कर गया है और लड़की को छह महीने का गर्भ है। रानी अपनी सहेली को अबॉर्शन के लिए स्रिये से सहयोग करती है। मैं कहती हूँ -

क्यों अबॉर्शन क्यों? शादी से पहले बिन बाप के बच्चे को कौन स्वीकारेगा? जब बच्चा है तो बिन बाप का कैसे? बाप तो है ही, वह शादी नहीं कर रहा है या भाग गया है तो क्या उसके द्वारा किया गया कृत्य तो सबके सामने है। यह सब मैं नहीं जानती समझती। उसका अबॉर्शन कराना जरूरी है। कितने महीने हो गए? छह महीने। अबॉर्शन के लिए डॉ. मिल गया? हाँ, भारी स्रिया खर्च करना होगा। मुझसे भी उधार लिया है। छह महीने के गर्भ को नष्ट करने में तो मां की जान पर खतरा है, उसको कुछ हो गया तो?' ता कि करा जावे (तो क्या किया जा सकता है), रानी ने रोटी बेलते हुए बिना किसी विचलन के उत्तर दिया।

तुम्हारी जाति में तो बिना शादी के साथ रहने की प्रथा थी। मेरे पास कुछ वर्षों पहले फुलमनी मासी रहती थी, उसकी लड़की को एक वर्ष का बच्चा था, लड़की की शादी नहीं हुई थी, लड़की का प्रेमी लड़की के माता-पिता के साथ ही रह रहा था। फुलमनी मासी बिल्कुल निर्द्वंद्व और तनावहीन रहती थी। कहती थी "लड़का बी. एड. कर रहा है, फिर नौकरी करेगा तब अपनी लड़की को उसके साथ भेजूंगी।" अच्छा, नहीं तो?

नहीं तो उसे भगा दूंगी, मेरी लड़की और नाती मेरे साथ रहेंगे। पर अगर लड़की उसके बिना न रहना चाहे ?

तो क्या उस बेरोजगार के साथ जाएगी? अगर जाएगी तो जाएगी। मेरा सहारा लड़की के लिए है, उसके बच्चे के लिए है, मेरे कारण ही मेरी लड़की को समाज मान रहा है। सभी जानते हैं कुछ दिनों में मैं अपनी लड़की की शादी करूँगी, इस लड़के को सभी मेरे दामाद की तरह मानते-दानते भी हैं। जब मैं उससे अपना संबंध तोड़ लूँगी तब लोग भी उसको मुझसे काट कर देखेंगे। तब लोग तुम्हारी बेटी और

नाती के बारे में क्या सोचेंगे? हमारे यहां सोचने-ओचने में ज्यादा समय नहीं देते, बस्स सामने काम होता है उसे हाथ या माथे पर लेकर आगे निकल पड़ते हैं। अभी मेरा नाती छोटा है इसलिए बेटी बच्चे में लगी रहती है, कुछेक महीने में वह खुद खेलने-धूपने लगेगा तो बेटी मिल या मजूरी में चली जाया करेगी, अपने लायक भात तो कमा ही लेगी। 'भात कमाने' वाली उसकी बात कितने महत्व की है वह खुद भी नहीं जान रही थी। खैर मुद्दा मेरे सामने कुंवारी माँ का था जो अदिवासी समाज के लिए कोई गैर सामाजिक मुद्दा ही नहीं था।

उसी समाज की रानी थी पर वह एक केंद्रीय विश्वविद्यालय में केन्द्रीय पुस्तकालय के भीतर झाड़ - पोंछ के लिए चौथे स्तर की कर्मचारी थी। अपने काम में वह जितनी मुस्तैद थी अपने साज-संवार में भी उतनी ही दुरुस्त थी। खूब छींटदार साड़ी, परित्यक्ता-होने के लक्षणों से दूर भरपूर सिंदूर, मैरून बिंदी, कान और गले में चांदी के गहने, हाथों में सीमित चूड़ियां और चांदी का लहरदार बाला। पूरे व्यक्तित्व पर धीरे-धीरे कब जो एक अभिजात्य का रान या कि लेप चढ़ गया रानी को पता भी नहीं और रानी? रानी तो अपने समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही थी जो अपनी नौकरी के माध्यम से तथाकथित सभ्य समाज से पूरी तरह प्रभावित चल रहा था। 'एखन अमादेर सुअर काटा बंदों कोरे दीएछि, खासी काटा होचछे।' सुअर से खस्सी की बलि पर पहुंचना सभ्यता की एक ऊंची छलांग लगाने जैसी बात थी रानी के समाज की। रानी के माध्यम से मुझे

उसके समाज के निरंतर उन्नत होने का पता मिलता जा रहा था। बच्चे स्कूल जाने लगे थे। उनके माँ-बाप उन्हें स्कूल पहुंचाने लगे थे। स्कूल में बच्चों को दोपहर मिल यानी भोजन मिलने लगा था। घर-घर आधार कार्ड, वोटर कार्ड, मेडिकल इंश्योरेंस आदि सुविधाओं का चेन पहुंच रहा था। कई घरों में बाथरूम बन गए थे और मैदानों में शौच का रिवाज लगभग खत्म हो रहे थे। उज्ज्वला गैस योजना ने भी बहुतों की रसोई जगमगा दी थी, यह अलग बात है कि जंगलों से लाये गए पत्तों और लकड़ियों वाले जलावनों में पकने वाली रसोई के लिए ये योजनाएं बहुत कारगर सिद्ध नहीं हो रही थीं, हां गैस चूल्हा घर की शान बढ़ाने के काम जरूर आ रहा रहा है। लब्बोलुआब यह कि रानी गैर आदिवासियों की जीवन शैली, रहन-सहन, रीति-रिवाज में केवल पग ही नहीं रही थी बल्कि मानों बाढ़ के पानी में डूबी चली जा रही थी। वह केवल नहीं उस जैसे जाने और भी कितने। उनके माध्यम से मानो सभ्यता खुद को परिभाषित करने लगी थी।

आज रानी जब काम पर आयी तो बड़ी जल्दी में थी, मैंने पूछा तो पता चला उसे जाना है बैंक, स्पये निकलने हैं, उधार देने हैं। मैंने कहा 'क्या रोक नहीं सकी तुम?' उसने सर हिलाया ना में। मुझे फूलमनी मासी याद आती रही जो तथाकथित सभ्यता की दस्तक को अनसुना करती जी रही थी।

संपर्क : विश्वभारती, शान्तिनिकेतन, पश्चिम बंगाल, मो. 9434326334

## तिथि

—रंजना जायसवाल

“हेलो!”

“कौन?”

“जी मैं!”

उधर किसी महिला की आवाज़ थी। वह आवाज़ बोलते-बोलते चुप हो गई थी।

“माफ़ कीजिएगा, मैंने पहचाना नहीं...”

उसने मोबाइल में उभर आए उन दस नम्बरों पर फिर निगाह डाली। बच्चों ने कितनी बार कहा कि टू कॉलर सेव कर लो आज कल फोन से कितनी धोखाधड़ी हो रही है, पर सुधा, सुधा ही थी।

“मेरे पास वैसे भी क्या धरा है मुझे धोखा देकर कोई क्या पाएगा उल्टा अपनी किस्मत को रोएगा। किस कंजूस के पल्ले पड़ गया। एकाउंट में एक ढेला भी नहीं...”

सच कहूँ तो सुधा को ये नई टेक्नोलॉजी थोड़ा कम ही समझ आती थी। आवाज़ कुछ सुनी-सुनी सी लग रही थी पर किसकी थी यह याद नहीं आ रहा था। सुधा ने अपने दिमाग पर जोर डाला।

“भाभी! मैं वर्षा...!”

एक पल को लगा सामने वाले को ये एक वाक्य कहने में बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी।

“वर्षा?”

न जाने कितना कुछ सुधा की आँखों के आगे से गुजर गया। उसकी आवाज़ लरज गई थी। सुधा ने बिस्तर से उठकर बेडरूम के दरवाजे को बंद कर दिया था। लोग कहते हैं दरवाजों के भी कान होते हैं पर यह तो वर्षा थी! अपनी वर्षा... इस घर की बहू, बहू! नहीं भूतपूर्व बहू... मोनू भइया की ब्याहता, मोनू भइया अर्थात् मुकेश भइया का हँसता-खिलखिलाता चेहरा सुधा की आँखों के सामने से गुजर गया। मुकेश भइया घर में सबसे छोटे थे। जिन्दगी से भरपूर दिन

भर शरारतें करना मानों उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। दिन भर बच्चों की तरह भाभियों को छेड़ते और तंग करते रहते। कितनी बार तो उनकी शरारतों से सुधा भी झुंझला जाती पर मुकेश भइया की हरकतें और शरारतें खत्म नहीं होतीं। मुकेश भइया दिल्ली में एक प्राइवेट कंपनी में काम करते थे। ठीक-ठाक नौकरी थी, बाबू जी उनकी शादी कर अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होना चाहते थे, पर न जाने क्यों मुकेश भइया ही तैयार नहीं होते।

“मुझे नहीं इन झंझटों में फँसना... कल आप ही लोग कहेंगे बीबी के आते ही बदल गया। सबको लड़कियों पर तो दया आती है पर कभी लड़कों के बारे में सोचा है अचानक से इंसान कितना बड़ा हो जाता है। परिवार और बीबी के बीच तालमेल बिठाना क्या आसान है? साँप-छछून्दर सी हालत हो जाती है आखिर वो बेचारा भी किधर जाए। माँ-बाप की सुने तो ममास बाँय और बीबी की सुने; तो बीबी का गुलाम... मुझे नहीं करनी शादी-वादी।”

उनकी बात सुन पूरा घर हँसने लगता।

“तू कोई अनोखा तो नहीं है, तेरे बाबू जी ने की तेरे भाइयों की भी हुई, अब तेरी भी होगी।”

“मतलब! अगर उन्होंने गलती की है तो मैं भी करूँ?”

“अच्छा बता कब तक मैं तेरे लिए बैठी रहूँगी, मेरे बाद तेरा क्या होगा।”

अम्मा जी उन्हें समझाने बैठ जाती।

“जिसकी तीन-तीन भाभियाँ हैं उसको क्या सोचना।”

“अच्छा! तेरी भाभियाँ अपने बच्चों का वर्तमान-भविष्य छोड़कर तेरी सेवा कब तक करती रहेंगी। तू ही बता क्या कष्ट है तुम्हारे बाबू जी और भइया लोगों को...”

“वो तो बाबू जी और भइया से पूछे पर बाबू जी और भइया डर के मारे कभी यह थोड़ी बताएंगे कि उन्हें अपनी बीवी से यह दिक्कत है। बवाल थोड़ी कराना है, आखिर उन्हें इसी घर में आप लोगों के साथ रहना है।”

“धत्त! कुछ भी बोलता है।”

अम्मा जी झूठ-मूठ मारने का उपक्रम करती। बेचारी कहाँ जानती थी उनका लाडला उनसे पहले ही इस दुनिया को छोड़कर चला जाएगा। कभी-कभी लगता क्या उन्हें आभास हो गया था या फिर नियति उन्हें रोक रही थी। मुकेश भइया जितने बातूनी वर्षा उतनी ही शांत और गंभीर थी। मुकेश भइया की बातें मानों खत्म होने को नहीं आती। शायद उन्हें इस दुनिया से जाना था इसलिए वो सब कुछ कह देना चाहते थे। ये शायद भी कितना अजीब शब्द है सम्भवनाओं और असम्भावनाओं के बीच झूलता हुआ। शादी के सिर्फ तीन साल ही तो हुए थे। रात में ऐसा सोए फिर कभी नहीं उठे।

“हेलो-हेलो! आप सुन रही है न सुधा भाभी...?”

सुधा अपने सोच के दायरे से बाहर निकल आई।

“हम्म! कैसी हो वर्षा?”

“ठीक हूँ भाभी और आप कैसी हैं?”

“मैं भी ठीक हूँ।”

“घर में सब कैसे हैं?”

“सब ठीक हैं?”

एक अजीब सी स्थिति थी दोनों के बीच में... कहने और पूछने को बहुत कुछ था पर शब्द मानो चुक से गए थे। सुधा सोच रही थी क्या बाबू जी के बारे में उसे बताए पर वह तो उसका अतीत थे। क्या उसके अतीत के बारे में बात करना ठीक होगा। वर्षा ने ही उसकी मुश्किल आसान कर दी।

“भाभी! आप सब ने तो वायदा किया, मुझे कोई नहीं भूलेगा पर आप सबने मुझे भूला दिया। मैंने वह घर क्या छोड़ा, आप सब ने मुझे पराया ही मान लिया।”

सच ही तो कहा था उसने... उसकी शादी शुदा जिन्दगी में कोई दखल नहीं करना चाहता था। पता नहीं उसकी नई ससुराल और पति को उनका उसे फोन करना अच्छा लगे या न लगे। आखिर अब उनका हक ही क्या था? वर्षा पर मुकेश भइया के साथ जुड़ा हुआ अधिकार उनके साथ ही चला गया था। कैसे निभाते वो ये वायदा...

वर्षा आखिर कैसे समझाती, अधूरे वादे उम्मीद जगाए रखते हैं।

“मैं समझी नहीं वर्षा!”

वर्षा के स्वर में नाराज़गी थी। सुधा उसकी नाराज़गी का कारण समझ गई थी पर सुधा जानकर भी अनजान बनी रही। वो कुछ कहने ही वाली थी...

“वर्षा वो...!”

पर इससे पहले ही वर्षा बोल पड़ी।

“कल एक कार्यक्रम में रानी बुआ जी मिल गई थी।”

रानी बुआ! बाबू जी की इकलौती बहन थी। उनकी कोई संतान नहीं थी। भाई के बच्चे ही उनके बच्चे थे। मोनू भइया की मृत्यु पर जितना कष्ट हम सबको हुआ था उनका दुख हमसे रत्ती भर भी कम नहीं था। बुआ जी ने बताया तो था वो एक शादी में दिल्ली जा रही पर उस वक्त ये बात दिमाग में नहीं आई थी कि दिल्ली जैसे शहर में कभी कोई जान-पहचान का भी टकरा सकता है पर जिसे मिलना होता है नियति उसे मिला ही देती है। शायद नियति को यही मंजूर था। वर्षा के धागे इस घर से टूटकर भी नहीं टूटे थे।

“कल बुआ जी से बाबू जी के बारे में पता चला। रात भर सो नहीं पाई। क्या हुआ था उन्हें...?”

क्या हुआ था? क्या कहती वह... सुधा चाहकर भी नहीं कह पाई, बेटे के कंधे पर चढ़कर श्मशान घाट जाने की हर पिता का सपना होता है। जिस बेटे को कंधे पर चढ़ाकर सारी दुनिया दिखाई थी उस जवान बेटे की अर्थी को कंधे देने का दर्द वो बर्दाश्त नहीं कर पाए। वह दर्द उन्हें अंदर ही अंदर खाए जा



रहा था। उनका घाव दिखता तो नहीं था पर आँखों से रिसता जरूर था। उनके इस दर्द की टीस घर में हर एक ने महसूस की थी। जिस बहू को इतने गाजे-बाजे के साथ वह घर में लाए थे वही जवान बहू सूनी मांग और बुझे चेहरे के साथ घर में इधर-उधर डोलती, उनका कलेजा फटने लगता।

“भाभी! मैं आप सबसे मिलने घर आना चाहती हूँ।”

सुधा चाह कर भी कुछ कह नहीं पाई, कुछ रिश्ते टूटकर भी नहीं टूट पाते।

“भाभी! मैं परसों आ रही हूँ।”

“हम्म...”

सुधा फोन लिए बैठी हुई थी, उधर फोन कब का कट चुका था। दिमाग सुन्न हो चुका था। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह घर वालों से कैसे कहेगी और क्या कहेगी। अतीत का एक ऐसा पन्ना जो कोई पलटना नहीं चाहता आज उनके सामने खड़ा था। जो घाव भरने लगे थे उसकी सियन एक-एक करके खुलने लगी थी। सब जानते थे वर्षा के सामने पहाड़ सी जिंदगी थी, वह अकेली आखिर उसे कैसे काटेगी? पर आदर्श की बातें सुनने और कहने में जितनी अच्छी लगती है खुद पर लागू नहीं होती। वैसे भी अपने घर की बहू को किसी और के साथ सोचना ये बात सोचने में भी अजीब थी। समझते सब थे पर हर आदमी इस सच से बचता रहा। पर कहते हैं न सच कितना भी छुपाओ बाहर आ ही जाता है पर किसी ने कभी यह नहीं सोचा होगा कि सच इस तरह से और किसके माध्यम से आएगा।

सुधा कभी-कभी सोचती पीपल पीपल न होता गर उसके नीचे बुद्ध न बैठे होते। आज बाबू जी भी बाबू जी न होते गर उन्होंने घर की बहू वर्षा के लिए इतना बड़ा निर्णय न लिया होता। एक ससुर एक पिता के तौर पर बाबूजी का सम्मान सुधा और घर के सभी लोग करते थे पर बाबू जी के एक फैसले ने

उनके आगे नतमस्तक होने के लिए मजबूर कर दिया। वर्षा की यह बदली हुई जिंदगी उन्हीं की देन थी। शायद इसीलिए उनकी मृत्यु की खबर सुन वह अपने आप को रोक नहीं पाई थी।

उम्र के इस पड़ाव में भी उनके चेहरे से तेज़ चमकता था। नौकरी से रिटायर होने के बाद बाबू जी की दुनिया घर तक ही सीमित रह गई थी। धर्म-कर्म में उनका बहुत मन लगता था। इस उम्र में भी वह प्रदोष, एकादशी का व्रत रखना नहीं भूलते। बिना नहाए-धोए चाय का एक घूँट गले से नहीं उतरता। बाबू जी अपनी चीज़ों, आदतों के लिए हमेशा से दृढ़ थे। घर में बैठने की जगह पहले से ही नियत थी। वो घर में हो चाहे न हो उस जगह पर कोई नहीं बैठता था। आवाज़ ऐसी की नुक्कड़ तक सुनाई दे। वक्त बदला वक्त के साथ चीज़ें भी बदली पर बाबू जी वैसे के वैसे... घर में सभी जानते थे वो एक बार जो सोच ले तो ब्रह्मा जी भी उनके निर्णय को बदल नहीं सकते थे।

पर ईश्वर के आगे किसी की कब चली। बाबू जी का कथन पत्थर की लकीर थी। जीवन में एक ही बात समझ में आई इंसान जिस चीज़ से दूर भागता है वह स्थितियाँ घूम-फिर कर किसी न किसी रूप में उसके सामने आ ही जाती हैं। सामने वाले शुक्ला जी के दामाद की सड़क दुर्घटना में मृत्यु के बाद उनकी बेटी का जीवन ससुराल में ही गुजर गया। घर में इस बात को लेकर कई बार चर्चा हुई।

“शुक्ला जी को अपनी बेटी को मायके बुला लेना चाहिए।”

पर बाबू जी...

“ईश्वर ने उसके भाग्य में इतना ही सुख लिखा था। इतना ही साथ था उन दोनों का... मायके आकर क्या करेगी। ससुराल ही अब उसका घर है।”

बाबू जी की बात सुन बहुत गुस्सा आता था किस दुनिया में जी रहे हैं वो... सुधा का मन करता जोर से चिल्ला कर कहे।

“मरने वाला तो मर कर चला गया जो जिंदा है उसे मारने पर आप सब क्यों तुले हैं।”

पर बाबू जी ने वर्षा के लिए जो किया वो तो कोई सपने में भी नहीं सोच सकता था। मुकेश भइया हम सबको रोता-बिलखता छोड़ कर चले गए थे। उनकी निशानी के तौर पर सूनी मांग लिए वर्षा घर के आंगन में डोलती तो मन न जाने कैसा-कैसा हो जाता।

कोई कहता एक बच्चा हो गया होता तो उसके सहारे पहाड़ सी जिंदगी कट जाती तो कोई कहता अच्छा ही हुआ कोई बच्चा नहीं था वरना बेचारी पहाड़ सी जिंदगी कैसे काटती। घर में मरघटी सन्नाटा पसर गया था। हँसना तो मानो सब भूल ही गए थे, कभी कहीं कोई गलती से हँस भी देता तो लगता अपराध कर दिया हो। सब सांसें ले रहे थे पर जीना मानो भूल गये थे।

माँ के त्याग, आँसू और समर्पण की बात तो हर आदमी करता है पर पिता उलझा किए बिना चुपचाप अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता रहता है। इस बात पर कभी किसी की नज़र क्यों नहीं जाती। वो दिन आज भी भुलाए नहीं भूलता। बाबू जी ने बड़ी भाभी और भइया को कमरे में बुलाया था। इस तरह से अचानक बड़ी भाभी और भइया को कमरे में बुलाने की बात सुन सब असमंजस में थे। सब उनके कमरे से बाहर निकलने का इंतजार कर रहे थे। बड़ी भाभी का चेहरा पीला पड़ चुका था शायद वो एक बड़े तूफ़ान से गुजर कर आ रही थीं। सब अंदाजा लगा रहे थे, जरूर कोई ऐसी बात थी जो उनके गले से नीचे नहीं उतर रही थी। बड़ी भाभी बहुत समझदार और घर को लेकर चलने वाली थी पर आज उनकी हालत देखकर हम सब असमंजस में थे आखिर बाबूजी ने ऐसा क्या कहा था। सुधा दौड़ कर रसोई घर से पानी का गिलास ले आई। वर्षा अपने कमरे में थी।

सब बड़े भैया और भाभी को घर कर बैठ गए। सुधा ने पूछा –

“भाभी क्या हुआ सब ठीक है ना। बाबूजी ने आपको अपने कमरे में क्यों बुलाया था?”

“वर्षा को देखने के लिए कल रायपुर से लड़के वाले आ रहे हैं। वर्षा के मायके वाले उन्हें अपने साथ लेकर आएंगे। बाबूजी उसका दूसरा विवाह करना चाहते हैं।”

सबका मुँह खुला का खुला रह गया, मानो पैरों के तले जमीन खिसक गई हो। जिंदगी का भूगोल हम सब की समझ से परे था। जिंदगी साँप-सीढ़ी का खेल बनकर रह गई थी। दुख का साँप कब, कहाँ से किस रूप में डँसेगा कोई नहीं जानता था।

“यह निर्णय किसका है और यह बात वर्षा को कौन बताएगा? यह बात सोची है?”

छोटे भइया ने दबे स्वर में कहा।

“बाबूजी की इच्छा है वर्षा अपने जीवन की एक नई शुरुआत करें। बाबूजी ने वर्षा से खुद बात करने की जिम्मेदारी ली है।”

बड़े भैया ने सर झुकाए-झुकाए कहा, उनका दर्द उनके चेहरे से पता चल रहा था। जिस भाई को गोदी में खिलाया था उससे जुड़ी हुई यह आखिरी निशानी भी इस घर से विदा होने जा रही थी।

बाबूजी ने आज तक किसी बहू के कमरे में कदम भी नहीं रखा था, उस दिन बाबूजी ने पहली बार वर्षा के कमरे में कदम रखा। सब आंगन में खड़े हुए थे पर उनके कान वर्षा के कमरे की ओर लगे हुए थे। बाबूजी की आवाज बाहर तक आ रही थी। वर्षा की रोने की आवाज सुन सबका कलेजा फट गया। कभी उसका रुदन बढ़ जाता तो कभी छटपटाहट से आवाज...

“क्या मैं इस घर के लिए बोझ हूँ, मुझे घर के किसी कोने में पड़े रहने दीजिए। अगर जीवन में सुख लिखा होता तो फिर मेरे साथ ऐसा क्यों होता?”

“हवा के डर से कोई रेगिस्तान में घर बनाना तो नहीं छोड़ देता।”

बाबूजी ने कहा, बाबूजी आज उसकी एक बात भी सुनने को तैयार नहीं थे।

“जितना कहा जा रहा है उतना सुनो... इसे तुम मेरा आदेश समझो या मेरी अंतिम इच्छा।”

बाबूजी कहकर कमरे से बाहर निकल आए। वर्षा के सिसकने की आवाज बहुत देर तक आती रही। किसी की हिम्मत नहीं थी कि कोई उसके कमरे में जाकर उसके आँसू पोंछे। घर का हर व्यक्ति एक अलग ही दर्द से गुजर रहा था। आज उनके घाव फिर से खुल गए थे। उस रात किसी ने घर में खाना नहीं खाया। मुकेश भइया के साथ जुड़ा हुआ रिश्ता कहीं ना कहीं खत्म होने जा रहा था, उस दिन लगा चीज़ों की तरह शायद रिश्तों की भी एक्सपायरी डेट होती है।

बाबूजी के लिए भी यह फैसला लेना आसान नहीं रहा था। मुकेश की अंतिम निशानी के तौर पर उनके पास वर्षा ही तो थी। कहीं ना कहीं उसे देखकर उन्हें मुकेश की याद आती थी उसके जाने से रिश्तों का वह धागा भी टूट गया था। कभी-कभी लगता वर्षा के हिस्से का दर्द भी उन्होंने खुद ही ले लिया था। वर्षा के इस घर से जाने के बाद वह टूट से गए थे। सब उनसे बार-बार पूछते बाबूजी चुप क्यों हो गए हैं। सब उनके दर्द को लफ्जों में ढूँढ़ रहे थे पर उनका दर्द खामोशियों में बदल चुका था। वर्षा की दुनिया को बदलते-बदलते वह अंदर से खुद कितना बदल चुके थे शायद उन्हें खुद भी यह बात पता नहीं थी।

जब से वर्षा के आने की बात हुई थी, घर में एक अजीब सा सन्नाटा पसर गया था। हर व्यक्ति एक-दूसरे से नज़रे चुरा रहा था। वर्षा से क्या कहना है क्या नहीं शायद कोई नहीं जानता था। घर की बहू आ रही थी पर किसी में कोई उत्साह नहीं

था। अतीत का वह पन्ना जिसने सिर्फ आँसू ही आँसू दिए थे उसका सामना करना इतना आसान नहीं था।

घर के सामने किसी गाड़ी के रुकने से सब घर के बाहर आ गए। हल्की धानी रंग की साड़ी में लिपटी वर्षा खड़ी थी। मांग में सिंदूर, हाथों में चूड़ियाँ पहने वर्षा को देख मन भर आया। शरीर पहले से भर गया था। उसकी मांग में आज किसी और के नाम का सिंदूर था। वर्षा ने आगे बढ़कर सबके पैर छू लिए। बड़े भइया ने आँखों से बच्चों को इशारा किया। बच्चों ने आगे बढ़कर वर्षा के पैर छू लिए... उसकी आँखों में ममता हिलोर मार रही थी। घर की दीवारें उसे एकटक देख रही थी, आखिर घर की बहू इतने सालों बाद घर वापस आई थी।

“मिश्रा निवास!”

घर के मुख्य द्वार पर संगमरमर की पटिका पर उभरे नामों में वह अपने वजूद को ढूँढ़ने लगी पर वह भी अब वह कहाँ रह गई थी। वर्षा मिश्रा अब वर्षा तिवारी बन चुकी थी। दरवाज़े के चारों तरफ वर्षा के सुघड़ हाथों से बनी बेल इस घर के लोगों के चेहरों की तरह फीकी पड़ चुकी थी। सच कहते हैं लोग यदि घर के लोग खुश होते हैं तो घर भी हँसता-खिलखिलाता है। घर के लोगों के साथ यह घर भी हँसना-खिलखिलाना भूल गया था।

वर्षा ने वर्षों से अलसाई और उनींदी सीढ़ियों पर जैसे ही कदम रखा। सीढ़ियों ने मानो आँखें खोलकर वर्षा की ओर देखा, घर के साथ-साथ इन सीढ़ियों ने भी तो वर्षा को विदा कर दिया था। कभी इन्हीं सीढ़ियों ने पलकें-पावड़े बिछाकर उसका स्वागत किया था। आज वही सीढ़ियाँ उसे अपरिचितों की तरह देख रही थी।

“मम्मी! ये कौन है ?”

बड़ी भाभी के बेटे शुभम ने पूछा, वर्षा की दूसरी शादी के समय वो तीन साल का ही था। वर्षा से जुड़ी

हुई यादें घर के किसी कोने में पड़ी सिसक रही थी। किसी को समझ नहीं आ रहा था कि शुभम की बात का क्या जवाब दिया जाए तब सुधा ने ही आगे बढ़कर कहा था।

“सारी बातें यहीं कर लोगे या अंदर भी चलोगे।”

सबका ध्यान वर्षा की तरफ ही था किसी का ध्यान वर्षा के साथ आई उस नन्ही सी जान की ओर नहीं गया। जो नए अंजान चेहरों को देख माँ के आंचल में छिप गई थी।

“सबको नमस्ते करो।”

उस छोटी बच्ची ने अपनी नन्ही हथेलियों को जोड़कर सबको नमस्ते किया। एकदम वर्षा की सूरत पाई थी उसने...

सब वर्षा को लेकर घर के अंदर आ गए, औपचारिक बातचीत के बाद कमरे में सन्नाटा पसर गया। पंखे की धर्-धर् की आवाज़ के अलावा कोई आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी।

“क्या नाम है तुम्हारा?”

बड़े भइया ने वर्षा की बेटी के छोटे-छोटे हाथों को अपनी हथेलियों में लेकर कहा।

“खुशी।”

सुधा की आँखों में आँसू झिलमिला गए। दो पीढ़ी से इस घर में कोई लड़की पैदा नहीं हुई थी। मुकेश भइया को बेटियों का कितना शौक था। वह हमेशा कहते थे।

“भाभी मुझे तो बेटी ही चाहिए, मेरी बेटी इस घर की खुशी होगी, हम सब की खुशी होगी।”

बड़े भइया का चेहरा सफ़ेद पड़ गया था। शायद अतीत का कोई पन्ना अचानक से उनके सामने खुल गया था। वो कमरा छोड़कर बाहर निकल गए। बड़ी भाभी सुधा को इशारा करके बड़े भइया के पीछे पीछे चल दी। धीरे-धीरे करके सब कोई न कोई बहाना करके कमरे से बाहर चले गए।

“शुभम खुशी को अपने खिलौने दिखाओ।”

सुधा ने शुभम से कहा, शुभम खुशी की उंगली पकड़ कर कमरे से बाहर चला गया।

जिन बच्चों का बचपन एक साथ बीतना चाहिए था, आज वे एक-दूसरे से अनजान थे। कमरे में सुधा और वर्षा ही रह गए थे।

“कैसी हो वर्षा...?”

“ठीक हूँ भाभी और आप कैसी हैं?”

“ठीक हूँ।”

“तेरी ससुराल..?”

शब्द निकलते-निकलते गले में अटक कर रह गए थे।

“वो भी ठीक हैं।”

“भइया?”

“वो दुकान गए हैं।”

“छोटे भइया-भाभी नहीं दिख रहे?”

वर्षा के सवाल खत्म होने को नहीं आ रहे थे।

“शिरडी दर्शन करने गए हैं।”

“ओह! उनसे मुलाकात नहीं हो पाएगी।”

वर्षा के चेहरे पर एक अफ़सोस पसर गया। सुधा चाहकर भी नहीं कह पाई तेरा ही घर है उनसे मिलने के लिए कभी भी आ जाना। वर्षा ने एक भरपूर नजर ड्राइंग रूम की दीवारों पर डाली। घर की दीवारें उसे अपरिचितों की तरह देख रही थी। जो घर कभी उसका अपना था आज वो उस घर में मेहमानों की तरह बैठी थी। वर्षा की बनाई पेंटिंग ड्राइंग रूम की दीवार पर अभी भी सजी हुई थी। वर्षा के चेहरे पर मुस्कुराहट आ गई। सच कहते हैं लोग कभी-कभी सब छूटकर भी कुछ बाकी रह ही जाता है। वर्षा भी पूरी तरह से इस घर से कहाँ जा पाई थीं। सुधा सोच रही थी आखिर ससुराल में अपने पति से वह क्या कह कर आई होगी?

“अम्मा जी कहाँ हैं?”

वर्षा की आवाज़ सुन उसकी तन्द्रा टूटी।

“आगे वाले कमरे में हैं, मिलना चाहती हो।”

“हम्म।”  
 “चलो वहीं मिल लेते हैं।”  
 सुधा ने कहा, कहने को तो उसने कहा दिया पर...  
 “वहाँ क्यों...इस वक्त तो वो!”  
 इस घर के धागों से उसका मन अभी भी कहीं न कहीं जुड़ा हुआ था।  
 “घुटनों में दर्द रहने लगा है, अब रोज़ मन्दिर नहीं जा पाती।”  
 “ओह!”  
 “आओ तुम्हें उनसे मिलवा दूँ।”  
 “जी...”  
 वर्षा सुधा के पीछे-पीछे चल दी, उसका प्यासा मन तेज़ी से उस दृश्य को अपनी आँखों में भर लेना चाहता था। कोई नहीं जानता था कि वर्षा का अब दुबारा इस घर में आना कब होगा शायद खुद वर्षा को भी...  
 “वर्षा बाबूजी की चाय चढ़ा दो। चाची मोनू चाचा बुला रहे हैं। छोटी जरा सब्जी चला देना, मैं अभी आती हूँ।”  
 जिस घर में हर तरफ वर्षा की पुकार लगी रहती थी, आज उस घर में लोग उसका नाम पुकारने से भी बच रहे थे। कमरे के बाहर किसी पुरुष की आवाज़ सुन उसके कदम रुक गए, तब सुधा ने ही कहा  
 “विष्णु पंडित जी आए हैं।”  
 “विष्णु पंडित?”

वर्षा ने अपनी यादाश्त पर ज़ोर डाला आज तो एकादशी भी नहीं थी और न ही प्रदोष फिर वह सुधा भाभी के साथ कमरे की ओर बढ़ गई। कमरा अगरबत्ती और धूपबत्ती की खुशबू से गमक रहा था। अम्मा जी की पीठ उसकी तरफ थी दीवार से सटाकर एक तस्वीर रखी थी, उसके सामने घी का दीपक जल रहा था। तस्वीर पर चंदन की माला टंगी थी वर्षा का चेहरा सफेद पड़ गया मुकेश तस्वीर में मुस्कुरा रहे थे, मुकेश तस्वीर बन चुके थे।

“आज कुछ है क्या? कोई ख़ास बात?”  
 वर्षा की आवाज़ कांप रही थी।  
 “पितृ पक्ष चल रहे हैं न...आज मोनू भइया की तिथि है।”

वर्षा की रुलाई छूट गई, उसने अपने रूलाई अपने दाँतों और होठों के बीच कसकर दबा ली। अतीत के घने कुहासे ने उसे चारों तरफ से घेर लिया था। कहने को तो सब अपनी जिन्दगी में आगे बढ़ गए थे, खुद वर्षा भी... मुकेश की एक तस्वीर भी उसके पास नहीं थी, होती भी तो कैसे? अब वह किसी और की ब्याहता थी, अतीत की यादें समेटने का उसे कोई अधिकार नहीं था और समाज की नजर में शायद जायज़ भी नहीं था पर अम्मा जी और इस परिवार की यादों में मुकेश आज भी जिंदा थे। उसकी आँखों से आँसू बह चले। कुछ आवाज़ें कभी खत्म नहीं होतीं जिसमें दर्द की आवाज़ सबसे ऊपर होती है।

संपर्क : लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश,  
 पिन कोड : 231001, मोबाइल न- 9415479796, Email address- ranjana1mzp@gmail.com

## एक छोटी-सी यात्रा...

-नीरजा हेमेन्द्र

“पापा, जब भी मौका मिलेगा हम आपसे मिलने आ जाएँगे। जल्दी-जल्दी नहीं तो भी दो वर्ष में एक बार अवश्य आ जाएँगे पापा। आप फिर बिलकुल न कीजिएगा। आराम से रहिएगा। आपके पास मनोज है। वो आपका पूरा ध्यान रखेगा।” शेखर का छोटा बेटा आज नौकरी के लिए विदेश जा रहा था। जाते-जाते अपने पिता को समझा रहा था कि उन्हें आगे का जीवन कैसे मैनेज करना है।

बहू की गोद में एक वर्ष का उनका पोता था। जो बार-बार माँ की गोद से उनकी गोद में आने के लिए लपक रहा था। पोते को बहू कस कर पकड़ अपनी ओर खींच ले रही थी। पोते को देखकर शेखर की आँखें नम हुई जा रही थीं। जिसे वो छुपाने का प्रयास कर रहे थे। कुछ ही देर में टैक्सी दरवाजे पर आ गयी।

“ठीक है पापा। हम लोग चल रहे हैं। तीन घंटे के पश्चात् फ्लाइट का समय है। अभी निकलेंगे तो सारा काम आराम से हो जाएगा। कोई हड़बड़ी नहीं रहेगी।” बेटे ने टैक्सी में सामान रखते हुए कहा। बेटे की बात सुनकर शेखर कुछ नहीं बोले। जितना बोलना था वो पहले ही बोल चुके हैं।

जब से छोटे बेटे ने विदेश में जाकर नौकरी करने की बात कही है तब से शेखर बेटे को समझा रहे हैं कि तुम्हारे ऑफिस से कोई और विदेश चला जाएगा। मात्र दो वर्ष की बात है। कोई और भी चला जाएगा। किन्तु बेटे ने नहीं सुनी। बाद में पता चला कि बेटा स्वयं ही विदेश जाने के लिए रुचि ले रहा था। उसने ही अपना नाम आगे भेजा था।

बेटा चला गया। शेखर कुछ देर वहीं खड़े होकर उधर ही देखते रहे जब तक कि बेटे की टैक्सी आँखों से ओझल न हो गयी। कुछ देर पश्चात् घर में आकर सूनी आँखों में बस एक उम्मीद थी कि शाम

को मनोज आ जाएगा। घर का एकान्त टूटेगा।

.....शेखर ड्राइंगरूम में आकर धम्म से सोफे पर निढाल होकर बैठ गये। बैठे-बैठे वो सोचने लगे कि अभी तीन वर्ष पूर्व की बात है, इस घर में कितनी रौनक थी, चहल-पहल थी। तब उनकी पत्नी जीवित थी। बड़ा बेटा दूसरे शहर में काम करता था। उन्होंने दोनों बेटों का ब्याह कर दिया था। बड़ा बेटा तीज-त्योहार आदि की छुट्टियों में घर आ जाया करता था।

शेखर की पत्नी बहुत खुश थीं। छोटा बेटा उनके साथ रहता था। और सबसे बड़ी खुशी की बात यह थी कि वह इसी शहर की एक अच्छी प्राइवेट कम्पनी में काम करता था। सभी खुश थे कि उनकी खुशियों को न जाने किसकी नजर लग गयी। शेखर की पत्नी इस क्षणभंगुर दुनिया को छोड़ कर चली गयीं।

बड़ा बेटा माँ के अन्तिम संस्कार में परिवार सहित आया। उसके बाद तीन वर्षों के अन्तराल में मात्र एक बार आया है। नौकरी के उत्तरदायित्व उसे कदाचित पिता का हाल पूछने का समय निकालने नहीं देता। यह भी सम्भव है कि स्थान की दूरियों ने दिलों की दूरियाँ बढ़ा दी हों।

शेखर के मन में यह निश्चिन्तता अवश्य है कि बेटा ठीक है। परिवार सहित खुशी से जीवन यापन कर रहा है। यदाकदा उसका फोन आ जाता है। अब छोटे बेटे के साथ जीवन का अन्तिम प्रहर कट रहा था कि.....वो भी चला गया। उम्मीद टूट गयी?

पत्नी की स्मृतियाँ जीवन के अन्तिम प्रहर तक तरोताजा रहेंगी। पत्नी की स्मृतियों का सहारा तो था ही, छोटे बेटे के साथ रहने से जीवन का एकाकीपन हृदय के कचोटता नहीं था। आज वह भी हाथ और साथ छुड़ा कर जा रहा है।

छोटे बेटे के चले जाने पश्चात बड़े-से घर में पसरे सन्नाटे में ड्राइंगरूम के सोफे पर बैठ कर शेखर एकाकी पलों को समेटने के प्रयास में विगत स्मृतियों में चले गये।.....दो-दो बेटों के होते हुए आज वो अकेले बैठे हैं।...अकेले? नहीं। तत्काल उनके मन में आया कि.....नहीं वो अकेले नहीं है। आज उनके साथ मनोज है।

अभी शाम होते ही मनोज घर आ जाएगा। जीवन का शून्य तो मनोज ने पहले ही भर दिया था। बेटों के न होने का शून्य.....भी अब शून्य नहीं रहेगा। मनोज के कारण पूरा घर भरा हुआ है।

हाँ...मनोज। मनोज उनका अपना बेटा नहीं है। ये सत्य वो विस्मृत कर चुके हैं। किन्तु कभी-कभी मनोज का अपने जीवन में आश्चर्यजनक रूप से आने की घटना स्मृतियों में सजीव हो जाती हैं। आज से लगभग बाईस वर्ष पूर्व की बात है.....

.....उसका नाम नाटे था। उसका परिवार शेखर के गाँव में रहता था। अत्यन्त निर्धन परिवार था उसका। माता-पिता का इकलौता बेटा था नाटे। उसकी उम्र यही कोई तीन या चार वर्ष की रही होगी कि उसके पिता गुज़र गये थे।

नाटे की माँ बूढ़ी.....ऊपर से विधवा। उस वृद्ध स्त्री के लिए गाँव में रह कर एक बच्चे का पालन-पोषण करना भी कठिन हो रहा था। कारण....गाँव में रोज़गार की कमी थी। खेतों में निराई, गुड़ाई, जोताई, बुआई-कटाई के जो काम होते थे वो युवक और प्रौढ़ पुरुषों को मिल जाते थे। वह किसी-किसी के घरों में जाकर अनाज फटकने, घर लीपने-पोतने का काम कर आती थी। वो लोग जो पैसे दे देते थे, उनसे ही किसी प्रकार दो रोटी की व्यवस्था कर लेती थी।

घर के नाम पर एक टूटी-फूटी झोंपड़ी व खपरैल का एक टूटा-फूटा दालान। सब कुछ जर्जर अवस्था में था। कभी-कभी नाटे की माँ सुखिया सोचती कि सुना है शहर में निर्धन महिलाएँ घरों में चौका-बर्तन का काम कर के इतने पैसे कमा लेती हैं कि घर का गुजारा ठीक-ठाक हो जाता है।

गाँव में ऐसा नहीं है। सभी स्त्रियाँ घर के काम स्वयं कर लेती हैं। सुबह घर का काम खत्म करने के पश्चात अपने खेतों में काम करने भी चली जाती हैं।

सुखिया के पास अपनी खेती-बारी नहीं है। कभी कोई उसे बुलाकर अपने खेत में मजूरी करा लेता है। मजूरी में जो पैसे मिल जाते हैं उससे कितने दिन दाना-पानी चलता। कभी दो जून तो कभी एक जून की रोटी-नमक बड़ी कठिनाई से जुटा पाती।

नाटे के पिता जीवित थे तो इतनी कठिनाई नहीं थी। वो मजूरी कर के उसके और नाटे के लिए दो समय का भोजन कमा लाते थे। अब वृद्ध सुखिया करे भी तो क्या करे? नाटे छोटा है। मजूरी नहीं कर सकता। अत्यन्त दुर्दिन में दिन कट रह थे।

इस वर्ष नाटे नौ बरस का हो जाएगा। बड़ा हो रहा है। उसकी भूख बढ़ रही है। किन्तु सुखिया उसको दो समय का भरपेट भोजन दे पाने में असहाय है।

“कैसी हो काकी?” पूस का महीना था। जाड़े के मारे बुरा हाल था। दुआरे पर बोरी बिछाकर सुखिया चादर ओढ़कर सिकुड़ी हुई बैठी थी।

काकी सम्बोधन के साथ किसी ने उसका हाल पूछा तो सुखिया ने गर्दन उठाकर ऊपर देखा। सामने वाले व्यक्ति को पहचानने का प्रयत्न करने लगी।

.....अरे! ई त मालिक के बिटवा है। हाँ... ई त बहुत बड़ा हो गवा हैं। पहचानते नहीं बन रहा है।....हाँ याद आवा! ई मालिक सुदर्शन ओझा के बेटे हैं। शेखू नाम है इनका।” शेखर को पहचानते ही सुखिया खड़े होने का प्रयत्न करने लगी। किन्तु जाड़े के मारे अकड़े हुए घुटने शीघ्र उठने कहाँ दे रहे थे?

“बैठी रहो....बैठी रहो...काकी। ठंड बहुत है।” कह कर शेखर घर की टाटी से सटा कर रखी खटिया को काकी के पास सरका कर उस पर बैठ गये।

“मुझे पहचाना काकी?” खटिया पर इत्मीनान से बैठ कर शेखर ने काकी से पूछा।

“तुम मालिक सुदर्शन ओझा के बेटे शेखू हौ।” स्वीकारोक्ति में सिर हिलाते हुए सुखिया ने कहा।

“हाँ, किन्तु काकी अब हम शेखू नहीं शेखर हो गये हैं।” शेखर ने कहा। शेखर की बात सुनकर सुखिया मुस्करा दी।

“महादेव (सुखिया के पति) कहाँ है? काम पर गये है क्या?” शेखर ने पूछा।

“ऊ...” शेखर के पूछते ही सुखिया के मुँह से सहसा निकल पड़ा।

“हाँ, तुम्हारा आदमी महादेव?” सुखिया को हड़बड़ाया देख शेखर ने पुनः पूछा।

“ऊँ तो नहीं रहे।” सुखिया ने कहा।

“कब?” शेखर ने अचम्भे से पूछा।

“कई बरस हो गये। नाटे छोटा था। तीन-चार बरस का रहा होगा तभी।” सुखिया ने कहा।

“नाटे?”

“हाँ, हमार बिटवा नाटे। अब त ऊ नौ बरस का हो गवा है। इधर ही कहीं खरिहान-बगिया में खेल रहा होगा।” शेखर चुपचाप सुखिया की बात सुन रहे थे।

शेखर जब से शहर में रहने लगे हैं, अपने क्षेत्र की ठेठ गँवई बोली सुन कर मुस्करा पड़ते हैं। आज सुखिया की पीड़ा से दुखी तो थे किन्तु सुखिया की बोली सुनकर बीच-बीच में मन ही मन मुस्करा दे रहे थे। मन ही मन सोच रहे थे कि अपनी बोली में कितनी मिठास होती है। बहुत दिनों पश्चात, सुनने को मिली है अपनापन भरी अपनी बोली।

“माई....माई.....बड़ी भूख लगी है। कुछ खाये बदे है क्या?” आठ नौ वर्ष का एक बालक सुखिया के पास आकर बैठ गया और बोला।

शेखर को समझते देर न लगी कि यही सुखिया का बेटा नाटे है। देखने में नाटे कितना मासूम है। धूल मिट्टी में सना है इस कारण अपना आकर्षण खो बैठा है। अन्यथा एक प्यारा-सा बच्चा है।

“देखो, सीकर पर डलिया में दो रोटी रखी है। ले कर खा लो।” सुखिया ने कहा।

“एक खा लेते हैं। एक तुम्हारे लिए रख देते हैं माई। शेखर की ओर सहमा हुआ नाटे बोला।

“नाही बेटा। दूनों रोटी खा लो। हमारा कोई जरूरी नाही है। नीचे घूँचे (मिट्टी की छोटी मटकी) में नमक है। रोटी के साथ ले लेना।” सुखिया ने कहा। नाटे मड़ई के भीतर चला गया।

“तुम्हारा बेटा देखने में अच्छा है। लम्बा भी है, फिर इसका नाम नाटे क्यों रखा?” शेखर ने सुखिया से पूछा। वैसे शेखर जानते हैं कि गाँव में शरीर के रंगरूप से नाम का कोई लेना-देना नहीं होता। दोनों पैरों से ठीक ठाक चलने वाले को लंगड़ा कहा जा सकता है...तो साफसुथरे गोरे-चिट्टे को कल्लू।

“बिटवा! इसका नाम मनोज है। गरीब-गुरबे का बेटा है इसलिए सब लोग इसको नाटे कहते हैं। मनोज कह देंगे तो गरीब के लड़के की इज्जत न बढ़ जाएगी?...और सुनाओ बेटा तुम आपन कहौ? इहाँ का आपन पुरनका घर बनवईहौ का?” कह कर उत्तर की आशा में सुखिया शेखर की ओर देखने लगी।

“.....घरवा एकदमै टूट गया है। कोई देखे वाला नाही है त गाँव के लोग ईटा, थूनी सब उठा-उठा कर ले जा रहे हैं।.....शेखर को कोई उत्तर न देते देख सुखिया ने बात आगे बढ़ाते हुए कहा। इन बातों में सुखिया अपनी पीड़ा छुपा गयी थी। किन्तु उसकी पीड़ा को शेखर ने महसूस कर लिया था।

“नहीं....नहीं....। अभी घर नहीं बनवाना है। इस समय तो हम अपना घर देखने और गाँव घूमने आये हैं।” कह कर शेखर चुप हो गये।

“अउर सुनाओ....शहर में नीकै हो बेटा।” शेखर को चुप देख सुखिया ने पूछा।

“हाँ काकी। ठीक हैं।” शेखर ने कहा।

....काकी चुपचाप बैठी शेखर की ओर देख रही थी। और शेखर बचपन के दिनों को याद करते हुए उसकी स्मृतियों में गुम होने लगे....उस समय वे



सात-आठ वर्ष के थे। वे गाँव के ही सरकारी विद्यालय में पढ़ते थे, जो कक्षा पाँच तक था।

उस समय सुखिया के पति महादेव शेखर के घर में स्थाई नौकर थे। घर के काम के लिए पानी भरना, दलान झाड़ना, गेहूँ-चावल फटकना, गेहूँ पिसवा कर चक्की पर से ले आना आदि काम करते थे।

उस समय महादेव किशोर उम्र के थे। उनकी उम्र यही कोई चौदह - पन्द्रह वर्ष की रही होगी। उनका विवाह नहीं हुआ था। एक वर्ष पश्चात शेखर पढ़ने के लिए शहर चले गये। इस बीच फोन द्वारा वे पापा-मम्मी से हालचाल लेते रहते। उनसे पता चला कि महादेव का विवाह हो गया है। शेखर बीच-बीच में शहर से गाँव आते रहते।

महादेव की पत्नी सुखिया उनके घर आकर रसोई में माँ के काम में हाथ बँटा दिया करती। तब नाटे नहीं हुआ था। इस बीच अनेक घटनाक्रम ऐसे ऐसे घटित होते गये कि शेखर के जीवन को परिवर्तित करते चले गये।

.....शेखर की माताजी के निधन की दुखद घटना साथ ही शेखर की शिक्षा पूरी होने, नौकरी लग जाने की सफलता और व्यस्तता। माँ के न रहने के पश्चात शेखर अपने पिताजी को अकेले गाँव में छोड़ नहीं सकते थे। अतः गाँव वाले घर में ताला लगाकर घर पट्टीदारों के भरोसे छोड़कर पिताजी को साथ में लेकर शहर में आ गये।

इस बीच एक-दो बार उनका गाँव आना हुआ। दो खेतों में से एक खेत बेचने के लिए पिता जी ने कहा था। ताकि उसे बेचकर शहर में एक घर ले सकें। बस उस समय उसी सिलसिले में गाँव आना पड़ा था। एक खेत है जिसे उन्होंने उसी समय बँटाई पर दे दिया था।

शेखर जब भी गाँव आते इतना समय न रहता कि महादेव के घर की ओर जाते। नौकरी से एक दिन का अवकाश लेकर गाँव आना और उसी दिन काम कर लौट जाना, बस इतना ही हो पाता।

आज कई वर्षों पश्चात शेखर गाँव आये तो सोचा कि महादेव के घर का हाल ले लें। पहले तो

महादेव उनके घर काम करता था तो बड़े आराम से दोनों का गुज़र-बसर हो जाता था। अब महादेव क्या करता है? कैसा है?...जानने की बड़ी इच्छा थी। उनके पग महादेव के घर की ओर बढ़ चले।

सुखिया और उसके बेटे से मिलना हुआ। यहाँ आकर शेखर ने महादेव के घर का ये हाल देखा तो मन पीड़ा से भर उठा। महादेव अब इस दुनिया में नहीं रहा।

“आओ बेटा, यहाँ आओ। नमस्ते करो।” रोटी खाकर नाटे मड़ई के दरवाजे पर खड़ा अचम्भे से शेखर को देख रहा था। सुखिया ने हाथ के संकेत से उसे पास बुलाते हुए कहा।

“नमस्ते।” नाटे आया और दोनों हाथ जोड़कर बोला।

“नमस्ते...नमस्ते...। आओ। यहाँ आओ। बैठो।” शेखर ने चारपाई पर अपने पास बैठने का संकेत करते हुए नाटे को अपने पास बुलाया।

नाटे आया और सिकुड़ कर चारपाई के एक कोने पर बैठ गया।

“क्या नाम है तुम्हारा?” शेखर ने पूछा।

“नाटे।”

“तुम्हारी माँ कहती हैं कि तुम्हारा नाम मनोज है।” शेखर ने कहा।

“सब लोग नाटे बुलाते हैं।” नाटे ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

“पढ़ने जाते हो।” शेखर ने पूछा।

“नहीं” जमीन की ओर देखते हुए नाटे ने सीधा सपाट उत्तर दिया।

“क्यों नहीं जाते हो? तुम्हारे गाँव में सरकारी स्कूल है। प्राइवेट भी है।” शेखर ने पूछा।

शेखर की बात सुनकर नाटे सुखिया का मुँह देखने लगा।

“अच्छा ये बताओ.....तुम स्कूल जाना चाहते हो?” शेखर ने पूछा।

शेखर की बात सुनकर नाटे सहमति में सिर हिला कर चुप हो गया।

“गरीब घर का लड़का है। प्राइवेट में पढ़ाना तो हमारे लिए दूर की बात है। सरकारी स्कूल में एक बार इसको भेजे थे। दू-तीन दिन गवा। स्कूल में लड़के चिढ़ा दिये तब से गवा नहीं। ई गरीब का लड़का है न बेटवा।” सुखिया ने कहा।

“तुम हमारे साथ शहर चलोगे पढ़ने? वही रहना। बीच-बीच में माई से मिलने भी गाँव आते रहना। वहाँ हमारे दो बेटे हैं। उनके साथ ही तुम भी पढ़ना।” सुखिया की बात सुनकर शेखर कुछ देर सोचते रहे तत्पश्चात बोले। अपनी बात पूरी कर शेखर ने सुखिया की ओर देखा।

सुखिया चुप थी। नाटे भी चुप था। शेखर प्रश्नवाचक मुद्रा में बारी-बारी से दोनों की ओर देख रहे थे।

“बोलो, कुछ बोलत काहे नाही हो। बिटवा कुछ रहे हैं। उनके घर जाओगे पढ़ने शहर मा।” नाटे को चुप देख सुखिया ने उससे पूछा।

“हाँ, जाएंगे। कह तो रहे पढ़ने जाएंगे।” नाटे स्पष्ट बोला।

तुम भी खूब अच्छी तरह सोच लो सुखिया। आज शाम को मुझे निकलना है। तुम चाहो तो नाटे को हमारे साथ भेज देना। पढ़ने में इसका मन लगेगा तो हम इसे पढ़ाएंगे। इसका जीवन बन जाएगा। शेखर ने सुखिया से कहा।

“हम आपके साथ चलेंगे।” नाटे ने पुनः कहा।

“कपड़े-लत्ते कुछ भी रखने की जरूरत नहीं। सब कुछ हम इसको दिला देंगे। तुम एक साफ-सुथरा कपड़ा पहना कर तैयार कर देना काकी इसको।” शेखर ने कहा।

दिन में शेखर अपना घर, खेत देखते...गाँव के परिचितों से मिलते-जुलते शाम को सुखिया के घर आये। एक डोरीदार साफ जांधिया और कमीज पहन, बालों में तेल लगाकर कंधी कर नाटे चलने के लिए एकदम तैयार था।

नाटे इतना समझदार बच्चा लगा था कि अब शेखर सोचते हैं कि यदि वह गाँव में होता तो उसका क्या होता? शेखर का हाथ थामकर नाटे अब नाटे

नहीं मनोज बन चुका था। उसका नाटे नाम गाँव के सीवान के बाहर निकलते समय शेखर वहीं फेंक आये थे। शेखर के घर वह मनोज बन चुका था।

समय आगे बढ़ता रहा। शेखर के दोनों बेटों के साथ मनोज भी पढ़ने जाता। बेटों के साथ उसी स्कूल में पढ़ाना, उसी प्रकार की पुस्तकें, यूनीफार्म, खाना-पीना सब कुछ अपने बेटों जैसा मनोज के लिए भी शेखर करते। अपने बेटों और मनोज में कोई भेदभाव नहीं।

कुछ माह के अन्तराल पर शेखर मनोज को लेकर गाँव आते। मनोज को सुखिया से मिलवा कर ले जाते। मनोज संकोच के कारण कभी नहीं कहता। शेखर स्वयं समय-समय पर उसे लेकर माई से मिलवाने गाँव आते।

मनोज प्रखर मेधा का बालक था। कक्षा में बहुधा प्रथम आता तथा अपने गुरुजनों का प्रिय भी था। शेखर की पत्नी को वह उनके बेटों के समान ही मम्मी जी कहता। उनकी कही गयी कोई बात, कोई काम वह कभी मना नहीं करता। जब कि शेखर की पत्नी कोई भी काम बताती तो ये अवश्य कहती कि पढ़ाई करने के बाद यदि समय बचे तभी ये काम करना।

दिन किसी परिंदे की भाँति उड़ते चले जा रहे थे। देखते-देखते चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। मनोज युवा तो हो ही गया था, इण्टर की परीक्षा भी दे चुका था। वह आगे और पढ़ना चाहता था तथा ग्रेजुएशन करने की तैयारी में था।

गर्मियों के दिन थे। विद्यालयों में परीक्षा के पश्चात ग्रीष्मावकाश घोषित था। शेखर ने सोचा कि मनोज उच्च कक्षा में जाएगा तो उसके पास समय व अवकाश का अभाव रहेगा। पढ़ाई पर अधिक समय देना पड़ेगा। क्यों न इन्हीं छुट्टियों में इसको गाँव ले जाकर इसकी माँ से मिलवा लायें। और शेखर मनोज को ले कर गाँव के लिए निकल पड़े।

शेखर मनोज को सुखिया से मिलवाने के साथ स्वयं भी गाँव में लोगों से मिलजुल लेते। उन्हें गाँव

में लोगों से मिलना-जुलना अच्छा लगता। बँटाई का अनाज वो वहीं सुखिया को दे आते। ताकि उसे खाने-पीने की कोई दिक्कत न हो। साथ ही सुखिया से यह भी कह देते कि साल भर खाने-पीने भर का अनाज रख कर बचे हुए अनाज को बेचकर पैसे अपने पास रख लेना। आखिर गाँव में उसे कमाकर खिलाने वाला भी तो कोई नहीं था।

मनोज गाँव और शेखर के बीच एक सेतु बन गया था। जब मनोज को शेखर अपने साथ नहीं लाये थे तब कई बार गाँव जाने की सोचते किन्तु आलस्य कर जाते। अब मनोज के कारण वर्ष में एक-दो बार गाँव के चक्कर तो लगा ही लेते।

गाँव से मोह मनोज के कारण बना हुआ था। मनोज के साथ शेखर गाँव पहुँचे। मार्ग में गाँव के कुछ परिचितों के साथ अभिवादन का आदान-प्रदान करते हुए मनोज को लेकर सुखिया के दरवाजे पहुँच गये। सुखिया के छोटे दलान में बाँस के एक छोटे टट्टर का गेट लगा था। आज ये गेट रस्सियों से बँधा था। शेखर को थोड़ा आश्चर्य हुआ। क्यों कि हमेशा ये गेट इस प्रकार उड़का रहता था कि कोई मिलने वाला खोल कर अन्दर आ जाये। कभी इस प्रकार कस कर रस्सियों से बँधा नहीं रहता।

टट्टर बँधा देखकर शेखर ने सोचा कि सुखिया गाँव में किसी काम से गयी होगी। मनोज के मन में भी कुछ इसी प्रकार के विचार चल रहे थे। गेट की रस्सी खोलकर शेखर और मनोज दलान में चले गये। ये क्या? मड़ई के दरवाजे पर ताला लटक रहा था।

“लगता है माई कहीं गयी है?” मनोज ने कहा।

“हाँ, प्रतीत तो ऐसा ही हो रहा है। किन्तु कहाँ गयी होगी? उसे कैसे सूचित करें कि हम आये हैं?” शेखर ने कुछ चिन्तित होते हुए कहा।

मनोज दलान से बाहर निकल कर इधर-उधर देखने लगा।

“अरे बिटवा तुम कहाँ रहै? गाँव वाले व प्रधान जी तुमको बहुत याद करत रहै।” पड़ोस की काकी ने मनोज को बाहर देखा ता कहने लगीं।

“माई कहाँ है? कुछ जान रही हो काकी?” मनोज ने पूछा।

“अरे बेटवा तुमका नहीं मालूम भवा का? महीना भर हो गवा काकी को गुजरे?” पड़ोस की काकी ने अचम्भे से कहा।

“अरे....? ई का कह रही हो काकी? अभी त हम फगुआ में माई से मिलकर गये हैं।” मनोज माई....माई...कर के रोने लगा और रोते-रोते बोला।

शेखर भी इस बात पर हतप्रभ थे कि एक माह हो गये सुखिया काकी को गुजरे। फोन द्वारा किसी ने सूचित भी नहीं किया? जब कि शेखर ने और बाद में मनोज ने भी सुखिया काकी को और उनके पट्टीदार का अपना दूरभाष नम्बर दे दिया था।

रोते-रोते मनोज निढाल होकर जमीन पर बैठ गया। शेखर उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे ढाढ़स देते रहे।

“पापा, हम माँ को अन्तिम बार हम देख भी नहीं पाये। न ही मुखाग्नि के दे पाये।” कह कर मनोज पुनः रोने लगा।

कुछ देर में गाँव के प्रधान जी आ गये। गाँव के किसी व्यक्ति ने मनोज के आने की सूचना उन्हें दे दी थी।

“प्रधान जी, हमारा माई नाही रही। आप खबर नाही दिये।” बुत्त बन कर खड़े प्रधान जी से मनोज ने कहा।

बहुत कोशिश किये तुमसे सम्पर्क करने की। किन्तु न हो पाया। रात को माई नहीं रही थी। अगले सारे दिन हम लोग तुमसे सम्पर्क करने और तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु सम्पर्क नहीं हो पाया। हमको छिमा (क्षमा) करना।.....

.....तुम्हारे पट्टीदारी के लोग तुम्हारा नम्बर खोज रहे थे। नम्बर न जाने कहाँ बिला (खो) गया था। मौके पर नाही मिला। कहीं गुमा दिये थे ये लोग।....तुम तो जानते हो बेटवा कि देहात में बरफ नाही मिलता है। मिलता भी तो कब तक माई को

रखा जाता?” .....प्रधान जी कहते जा रहे थे। मनोज उनकी बात सुनकर माई-माई कर रोता जा रहा था।

“बेटा, तुम तनिक भी अफसोस न करो, न चिन्तित हो। माई के जाने का दुःख बहुत बड़ा दुःख होता है। माई हमहूँ का बेटा की तरह मानती थीं। तुम्हरे नाम से, तुमको हाजिर-नाजिर मान कर उनके अन्तिम संस्कार का सारा काम हम नियमपूर्वक किये हैं।” प्रधान जी ने मनोज से कहा।

इतनी देर में मनोज के दुआर पर कुछ लोगों की भीड़ एकत्र हो गयी थी। धीमे-धीमे स्वर में सब आपस में खुसर-पुसर करते रहे। थोड़ी देर में सब चले गये।

“बेटा तुम्हें किसी चीज की आवश्यकता हो तो निःसकोच मेरे पास आ जाना।” प्रधान जी ने कहा और वो भी चले गये।

सब लोग जो चुके थे। शेखर ने दालान में खड़ी चारपाई बिछाई और उस पर कर बैठ गये। मनोज को सांत्वना दे कर चुप कराने के पश्चात उसे भी अपने पास चारपाई पर बैठने के लिए कहा।

मनोज कुछ नहीं बोला। वह यूँ ही भूमि पर बैठा रहा। उसकी नेत्रों से अश्रु अब भी लगातार बह रहे थे। शेखर खामोश हो गये यह सोचकर कि अश्रुओं के साथ उसकी पीड़ा भी बह जाये तो अच्छा है।

“चलो बेटा, घर खोलो भीतर चलें।” कुछ देर पश्चात शेखर ने कहा।

मड़ई के दरवाजे पर ताला लटक रहा था। शेखर और मनोज जब से आये हैं तब से दालान में ही बैठे हैं। मनोज ने दो पग आगे बढ़ाये ही थे कि अपने पग पीछे खींच लिए।

“चाबी तो हमारे पास है नहीं। माई के जाने के पश्चात किसी ने अपना ताला लगा दिया है। माई के बिना कोई घर खोलता है भला?” कहता हुआ मनोज ने पास में पड़ा ईंट का आधा टुकड़ा उठाकर ताले को तोड़ा। दरवाजे को खोलकर शेखर और मनोज भीतर गये।

मड़ई में सीलन की महक आ रही थी। मड़ई का दरवाजा खोलते ही वहाँ थोड़ी-सी रोशनी हो गयी। सुस्त कदमों से भीतर जा कर मनोज ने टाँड़ पर रखे एक छोटे-से डिब्बे को उठा लिया। डिब्बे को खोला तो उसमें दो-तीन पर्चियाँ मिली। उन पर्चियों में ही तो मनोज ने अपना और शेखर का दूरभाष नम्बर तथा शेखर पापा के घर का पता लिख कर माई को दिया था।

पर्चियाँ देते समय माई को समझा दिया था कि आवश्यकता पड़ने पर गाँव में किसी से भी इन्हीं नम्बरों पर कहीं से फोन करवा देना। फोन पाते ही हम लोग अवश्य और तुरन्त आएंगे। कदाचित माई को मौका ही न मिला होगा, पर्चियाँ निकाल कर फोन करवाने का।

मनोज के घर में कुछ खास नहीं था। मड़ई के एक कोने में खटिया बिछी थी। जिस पर गुदड़ी का बिछावन व उस पर एक चादर पड़ी थी। मड़ई के दूसरे कोने में एक अरगनी पर सुखिया की एक-दो साड़ियाँ, कुछ अंगरखे आदि रोजमर्रा के पहनने के कपड़े टंगे थे। लकड़ी की एक मचिया पर जस्ते के दो भगौने, कड़ाई, थाली, कलछी आदि रखे थे। सभी चीजों पर बेतहाशा धूल जमी थी। महीने भर की धूल।

“क्या करें पापा? माई से हम मिल नहीं पाये। माई के बिना हमरा ये घर सूना हो गया।” मड़ई में रखी सभी चीजों को स्नेह से देखते हुए मनोज ने कहा।

“मनोज, किसी की भी माँ हमेशा नहीं रहती बेटा। सब करो बेटा। माई का आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। ईश्वर ने यही भाग्य में लिखा था। ईश्वर की मर्जी के आगे किसकी चली है बेटा?” शेखर ने मनोज को समझाते हुए कहा।

“पापा, हमको ऐसा लग रहा है कि माई हमारे साथ है।” मड़ई में चारों ओर मनोज आशा भरी दृष्टि से देख रहा था।

शाम ढलने लगी थी। धीरे-धीरे अँधेरा सृष्टि पर अपना आँचल फैलाने लगा था। कुछ देर मड़ई में रहने के पश्चात शेखर और मनोज मड़ई का साँकल लगा कर बाहर निकल आये।

गाँव की गलियों से निकल कर दोनों मुख्य सड़क की ओर बढ़ने लगे। गाँव के परिचित लोग 'कइसन हो बिटवा' कह कर हाल पूछ लेते। मनोज खामोशी से आगे बढ़ जाता। गाँव में एक-दो नहीं बल्कि सभी तो परिचित थे। मनोज किससे क्या पूछता? क्या कहता?

“आओ बेटा, सड़क तक चलो। टीन के शेड के नीचे होटल टाइप की दुकान दिख रही है। शायद वहाँ कुछ खाने को मिल जाये। आज रात यही रुकना पड़ेगा। तो चलकर कुछ खा लेते हैं।” शेखर ने कहा।

सड़क के किनारे एक टीन के शेड के नीचे मिट्टी के चूल्हे पर एक महिला कुछ बना रही थी। एक पुरुष उसकी सहायता कर रहा था। शेखर मनोज के साथ वहीं आये और एक बेंच पर बैठ गये।

“कुछ खाने को मिल सकता है यहाँ।” शेखर ने उस पुरुष की ओर देखते हुए पूछा।

“हाँ साहेब, रोटी और आलू-परवल की रसेदार सब्जी बनेगी। थोड़ा समय लगेगा। अभी उसी की तैयारी चल रही है।” उस पुरुष ने कहा।

“कितना समय लगेगा?” शेखर ने पूछा।

“आधा घंटा तो लग ही जाएगा।” उस पुरुष ने महिला की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

“हाँ, सब्जी बदक रही है। आटा गुथा रखा है। सब्जी बनते ही रोटी बनाने लगेंगी।” उस महिला ने पुरुष की बातों में सहमति जताते हुए कहा।

“चले तब तक चाय पी लेते हैं। चाय मिल जाएगी क्या?” शेखर ने होटल वाले व्यक्ति से पूछा।

“हाँ, ये बना देगी।” उस व्यक्ति ने महिला की ओर देखते हुए कहा।

“कितने कप चाय बनेगी?” महिला ने सहमति में सिर हिलाया और उस व्यक्ति से पूछा।

“दो प्याले।” शेखर ने कहा।

उस महिला ने झट से सब्जी का भगोना उतार कर एक छोटे-से भगोने में दो कप के अनुमान से चूल्हे पर पानी चढ़ा दिया। कुछ ही मिनटों में दो प्याले चाय बना कर शेखर के सामने रख दिया।

मनोज के कुछ भी खाने-पीने की अनिच्छा प्रकट करने के पश्चात भी शेखर ने किसी प्रकार उसे चाय पिलाई। भोजन बन जाने पर भोजन भी कराया।

भोजन कर दोनों वापस मनोज के घर आ गये। दालान में खटिया बिछाकर दोनों ने सोने की व्यवस्था की। शेखर को नींद नहीं आ रही थी। कदाचित् वातावरण खुला होने के कारण। यही हाल मनोज का भी था। वह गुमसुम चारपाई पर बैठा था। जब कि रात गहराती जा रही थी। किसी प्रकार थोड़ी देर बैठ कर, थोड़ी देर लेट कर दोनों ने रात काटी। नींद दोनों को नहीं आयी। आती भी कैसे?....

.....किसी की माँ इस प्रकार गुज़र जाती है क्या कि उसके इकलौते पुत्र को खबर ही न मिले? जितनी पीड़ा से मनोज गुज़र रहा था, उससे कम पीड़ा शेखर को न थी।

भोर हुई। वातावरण में कुछ उजास फैली। पूर्व दिशा में लालिमा फैल चुकी थी। चिड़ियों की चहचहाहट से शेखर उठ कर बैठ गये। कभी-कभी पशुओं के हॉकने की हुर्र-हुर्र की आवाजें भी आ रही थीं। कदाचित् गाँव के किसान पशुओं को हॉकते हुए खेतों की ओर जा रहे थे।

शेखर के मन में रात्रि से ही कुछ विचार आ रहे थे। जिसे वे इस समय शान्त वातावरण और मनोज के संयत हो जाने पर उससे कहना चाहते थे।...

“मनोज! क्यों न हम अपने गाँव का घर और खेत बेंच दें? गाँव में अब कौन है हमारा? सुखिया काकी थी तो लगता था कि गाँव में कोई अपना है जिससे मिलने जा रहे हैं। उन्हीं के कारण हमारा गाँव हमारा था। अब तो वो नाता भी टूट गया। अब क्या रखा है गाँव में?” शेखर ने मनोज से कहा।

“नहीं पापा, ऐसा नहीं है। गाँव की मिट्टी में हमारे पुरखों का पसीना मिला हुआ है। गाँव हमारी

पहचान है। भले ही आज वो टूटा-फूटा है। किन्तु इसी घर के कारण हम खानाबदोश नहीं हैं।....गाँव हमारी नींव है....हमारी जड़ है।” मनोज कहता जा रहा था और शेखर खामोशी के साथ सुन रहे थे। उन्हें मनोज की बात उचित प्रतीत हो रही थी।

गाँव के प्रधान और अपने नाते रिश्तेदारों से मिलकर शेखर और मनोज उसी दिन वापस शहर आ गये। समय के साथ मनोज माई के जाने के दुःख से उबर रहा था। किन्तु माई को वह प्रतिदिन स्मरण करता था। शनैः-शनैः वह अपनी पढ़ाई और नौकरी पाने की तैयारियों में लग गया।

शेखर के अपने दोनों पुत्र नौकरी में आ चुके थे। एक निजी कम्पनी में काम करने लगा, एक बैंक में लग गया।...इन्हीं स्मृतियों में विचारमग्न होकर शेखर निढाल-से सोफे पर बैठे थे।

ओह!....स्मृतियाँ हैं कि आती ही चली जा रही हैं। मनोज के बचपन से लेकर अब तक की स्मृतियों को मानसपटल से हटाने की इच्छा नहीं हो रही है। अँधेरे के बीच की उजली किरण को कौन नहीं चाहेगा कि वो प्रकाशित रहे।

ट्रिंग....ट्रिंग....ट्रिंग्स....सहसा दरवाजे की घंटी बजी।

“मनोज आ गया।” कहते हुए शेखर सोफे से उठे दरवाजे की झिरी से बाहर देखा। मनोज था। शेखर ने दरवाजा खोल दिया। मनोज के साथ एक ताजा हवा का झोंका भी भीतर आ गया।

“छोटे भईया चले गये क्या पापा?” मनोज ने पूछा।

“हाँ बेटा, उनको तो आज जाना ही था।” एक ठंडी आह भरते हुए शेखर ने कहा।

मनोज इस बात से भिन्न था कि आज छोटे भईया परिवार सहित विदेश जाने वाले हैं। वो वहीं

नौकरी करेंगे और परिवार सहित वहीं रहेंगे।....न जाने कब तक? छोटे भईया की बातों से प्रतीत हो रहा था कि वो स्थाई रूप से वहीं बसने वाले हैं।

“पापा, आज ऑफिस में एक ऐसा आवश्यक कार्य आ गया था कि आधे दिन का अवकाश भी न ले सका।” मनोज के चेहरे पर छोटे भाई से न मिल पाने की विवशता स्पष्ट थी।

मनोज की बात सुनकर शेखर ने कुछ न कहा। वह चुपचाप निढाल होकर सोफे पर बैठे रहे।

“पापा, आप किसी बात की चिन्ता न कीजिए। दोनों भईया इस शहर से भले ही दूर हैं। आप उनके हृदय से दूर नहीं हैं, न वे आपके हृदय से। जीवन में चाहे जो भी परिस्थिति हो मैं सदा आपके साथ, आपके पास रहूँगा। आपको और इस शहर को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।.....

.....मैं जानता हूँ पापा कि इस शहर से आपका आत्मिक लगाव है। आपने गाँव के मेरे घर के साथ-साथ, मेरी माई की स्मृतियों को भी बचा कर रखा है। मैं नाटे से मनोज बनने की अपनी यात्रा को भी कभी नहीं भूल सकता। आप मेरे लिए अनमोल हैं पापा।” कहते-कहते मनोज की आँखें नम हो गयीं।

“ऐसा मत कह बेटा। मैं वो सब भूल चुका हूँ। मुझे अपना बेटा मनोज याद है और कुछ नहीं।” कहते हुए शेखर स्नेह भरी दृष्टि से मनोज को देखते रहे।

“आपका आशीर्वाद मेरे सिर पर हमेशा बना रहे पापा। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए।” कहते हुए मनोज शेखर के पैरों के पास बैठ गया।

शेखर ने मनोज के सिर पर अपना हाथ रख दिया। वे अपने दोनों बेटों की स्मृतियों को विस्मृत कर देना चाहते थे।....हाँ, पूरी तरह विस्मृत।

## बेचारगी

-डॉ० अस्मिता सिंह

पूरे टोले में वहीं एक घर था, जिसे पूरे टोले वाले बेचारगी की नजर से देखते थे। घर का मुखिया राधेश्याम शहर के किसी फैक्टरी में काम करता था, वहीं से कुछ पैसे हर महीने भेजता रहता था, जिससे दाल-रोटी का जुगाड़ हो जाता था। हारी-बीमारी के नाम पर पुश्तैनी जमीन टुकड़े-टुकड़े में कब की बिक चुकी थी। जायदाद के नाम पर घर से सटे एक एकड़ का बगीचा ही शेष था। घर में किसी मर्द के न रहने से बगीचे के फलों को टोले वाले ही लूटपाट कर खा जाते थे। कभी-कभार किसी के पकड़े जाने पर राधेश्याम की पत्नी, खूब हो-हल्ला मचाती थी, बल्कि उन बच्चों के घर जाकर उनकी मां से झगड़ा भी कर आती। पर सामान्य दिनों में वह किसी के घर अमूनन नहीं जाती थी, सिर्फ शादी-ब्याह या किसी पर्व-त्यौहार को छोड़कर! उसके लड़ने की आदत तथा स्पष्ट बोलने के कारण सारे टोले वाले उसे पीछे में पगली कहकर ही संबोधित करते थे। ऊपर से तोहमत भी लगाते थे कि खाने-पीने के चक्कर में पगली ने पुश्तैनी जमीन भी बेच डाली। राधेश्याम को तीन बेटियाँ और एक बीमार बेटा था। बड़ी बेटी चन्दा बाइस साल की हो चली थी। गांव के चलन के हिसाब से अब-तलक उसकी डोली उठ जानी चाहिए थी।

राधेश्याम छुट्टियों में जब भी घर आता, गांव के भाई बन्द उस पर चन्दा की शादी के लिए दबाव बनाते। पर राधेश्याम के पास कोई जवाब नहीं होता। बस यही कहकर बात टाल जाता था कि कोशिश कर रहा है। इसके लिए पीछे में उसका मजाक भी उड़ाया जाता था। पर गलती से भी कभी चन्दा की माँ को कोई टोक देता तो चन्दा की माँ छिलमिला जाती और मुहतोड़ जवाब देती, “इतनी ही चिन्ता सता रही है इज्जत की तो क्यों नहीं

लड़का खोजकर मिलजुलकर चन्दा का निबाह कर देती हैं आप लोग? कोई लड़का खोजने में मदद नहीं करेगा बस बैठे बिठाये पागेगा।” उसके बाद

गाली-गलौज भी करती कि कैसे उसके सीधे-साधे पति को ठगकर जमीन हड़प कर बैठे हैं। सरापती “अरे भला नहीं होगा, भगवान देख रहा है, अपना संभालो, दूसरे के घर में झांकते हुए शर्म नहीं आती, करना, धरना कुछ है नहीं, बड़का हितैषी बनने चली हैं।”

इसी कारण चन्दा की माँ से जल्दी कोई मुंह नहीं लगता था। राधेश्याम की जमीन को टोले वालों ने संकट के समय, मदद के नाम पर टुकड़े-टुकड़े में खरीद लिया था, औने पौने भाव में, इस आश्वासन के साथ कि घटे-बढ़े तो आखिर वहीं काम देंगे कि बाहर से लोग आर्येंगे?

एकबार छुट्टियों में जब चन्दा के पिता हमेशा की तरह गांव आये हुए थे। रामेश्वर जी जो गांव में सबसे बड़े थे, राधेश्याम को मिलने के लिए अपने दालान में बुलवा भेजा। पूरे टोले में उनकी ऊंची शान थी। अच्छी खेती बारी थी। नियम से पूजा-पाठ करते थे। जबकि बाकी मर्द पूजा-पाठ नहीं करते थे। इतना रौब था कि कोई उनकी बात टाल नहीं सकता था। धार्मिक और सत्यनिष्ठ उनको माना जाता था, पर अन्दर से धूर्त थे। मदद के नाम पर स्वयं आगे बढ़कर मदद की पेशकश करते थे, पर कुछ दिनों पश्चात चुपके से जिसकी भी मदद कर थे, उसका एक टुकड़ा जमीन जरूर हड़प लेते थे।

चन्दा के पिता को भी उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके एक-दो बार मदद की थी, उस उधारी को राधेश्याम अभी तक नहीं चुका पाया था। उनके बुलावे को राधेश्याम टाल नहीं सकता था, सो उनके दरबार में हाजिर हो गया। प्रणाम करते ही रामेश्वर

जी ने कहा, “आओ! आओ! बैठो, क्या हलचाल है? कहीं बात बनी की नहीं?”

कोई जवाब नहीं मिलने पर फिर बोले, “देखो राधेश्याम हमारी लड़की हो या तुम्हारी, इस घराने की कोई भी लड़की? हमसब की इज्जत है। लड़की ब्याह के लायक हो जाये तो, घर बैठाये रखना उचित नहीं है। गांव की इज्जत का सवाल है, बड़े तो बड़े अब छोटे भी कानाफूसी करने लगे हैं। किसी भी तरह अब उसका विवाह हो जाना चाहिए।” कहकर रामेश्वर जी, राधेश्याम को नजरों से तौलने लगे।

चन्दा के पिता पेशोपेश में सर झुकाए रहे। कोशिश तो कर ही रहे थे। पर बात हमेशा दान-दहेज को लेकर बिगड़ जाती थी।

“बोलो! कुछ बोलते क्यों नहीं? चुप रहने से तो काम नहीं चलेगा?”

राधेश्याम ने हिम्मत जुटाते हुए कहा, “भईया, आप से तो कुछ छिपा हुआ नहीं! मेरे पास क्या है और क्या नहीं, बहुत जगह कोशिश की पर हर बार लेने-देने के नाम पर बात बिगड़ जाती है। अब देखिए, सुमित्रा बुआ ने अपने गांव के एक लड़के के बारे में संदेशा भिजवाया है, लड़का बिना दहेज के शादी करने के लिए तैयार है पर लड़की उसे अच्छी चाहिए। देखता हूँ जाकर शायद बात बन जाये।”

कहकर राधेश्याम सर झुकाए बैठा रहा। उसका मन तो कर रहा था जल्दी से जल्दी घर जाने का पर कुछ कह नहीं पा रहा था। बस जाने की आज्ञा का इंतजार कर रहा था।

## 2

कुछ मन-ही-मन गूँथते हुए, रामेश्वर जी ने अपनी अगली चाल चली। उनके लिए राधेश्याम के बगीचे को हड़पने के लिए इससे अच्छा मौका नहीं था। सो आवाज में अपनत्व घोलते हुए बोलें, “जो मदद चाहो वो मैं करने को तैयार हूँ। संकोच मत करना! चंदा सिर्फ तुम्हारी ही बेटी नहीं है, बल्कि पूरे गांव की बेटी है।”

—कोशिश तो कर ही रहा हूँ ना” झिझकते हुए राधेश्याम ने धीमी आवाज में कहा।

—पर इससे तो काम नहीं चलेगा, लड़की का मामला है। हर हाल में विदाई तो करनी ही पड़ेगी न?”

चुंगे को दाना डालकर रामेश्वर जी ने राधेश्याम को कहा “ठीक है अब जाओ। घराने की जरूरत नहीं है। मेरे रहते शादी में कोई अडचन नहीं आ पायेगी।”

राधेश्याम प्रणाम करके विदा हो गये। अगले ही दिन वो अपनी चचेरी बुआ के गांव रवाना हो गये। बुआ से उसे मालूम हुआ कि लड़का पहलवानी करता था, उसी चक्कर में उसने शादी नहीं की थी। थोड़ी बहुत खेती-बारी थी। लड़के की आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक थी। मिलने के पश्चात ये भी पता लग गया कि लड़का स्वभाव से भी अच्छा। बस खटकने वाली बात सिर्फ ये थी की चन्दा से उम्र में वह 14-15 साल बड़ा था। पर लड़के वालों के नखरे और माँगे सुनकर राधेश्याम थक चुके थे।”

चन्दा का फोटो भी लड़के ने पसन्द कर लिया था। उम्र को लेकर थोड़ी दुविधा में थे। राधेश्याम की बुआ चाहती थी कि हर हाल में उसके गांव में उसकी भतीजी ब्याही जाय, ताकि भाई-भतीजे आते-जाते रहें। उसे तो अब कोई याद भी नहीं करता। भतीजी आ जायेगी तो संबंध फिर से हरा हो जायेगा। भतीजी की बड़ी तारीफ करके उसने उस लड़के को शादी के लिए तैयार किया था। रात्रि में भाई को खाना खिलाते समय जितनी तारीफ हो सकती थी लड़के की ओर से, उसके घरबार की, बढ़ा-चढ़ाकर की। नतीजा ये हुआ कि राधेश्याम ने लगे हाथ लड़के का छेँका भी कर दिया। अब सवाल था शादी के खर्चे की जुटान का। ये सोचते हुए कि देखा जायेगा, पी.एफ. से थोड़ा लोन ले लूंगा, थोड़ा ओवरटाइम करना पड़ेगा और क्या? राधेश्याम शादी की योजना बनाते हुए लौटे अपने घर।

शादी तय हो गयी, ये सुनकर पूरा टोला राहत की सांस ले रहा था। रामेश्वर जी भी इंतजार में थे



कि आयेगा नहीं तो जायेगा कहाँ? राधेश्याम ने पी.एफ. से कर्जा लेकर कुछ पैसों का इंतजाम तो कर लिया था, पर वे काफी नहीं थे। दिन-रात हिसाब लगाते रहते खर्चे का, पर हिसाब पूरा नहीं हो रहा था। रामेश्वर जी के पास जाने का मतलब भी समझ रहे थे। घर में एक दिन इसी की चर्चा चन्दा की माँ से कर बैठे। चन्दा की माँ का साफ-साफ कहना था, गांव घर से किसी से कर्जे नहीं लेने हैं। सब गिद्ध हैं। जब लड़के की कोई मांग ही नहीं है तब क्यों और कर्जे का बोझ उठाया जाय। अभी निबाहने को और दो-दो पड़ी हैं।”

राधेश्याम ने समझते हुए कहा, “पर दरवाजे पर तो स्वागत-बात ठीक से करनी ही होगी। इसके अलावे भी छिटपुट हजार खर्चे हैं।”

—स्वागत, औकात के हिसाब से होती है। बराती को पूड़ी-सब्जी खिलाकर विदा कर देंगे।” चन्दा की माँ ने तपाक से कहा।

उधर रामेश्वर जी का धैर्य जवाब दे रहा था। राधेश्याम पैसा मांगने अभी तक क्यों नहीं आया! अन्त में हारपांछ कर चन्दा के दरवाजे हालचाल लेने पहुँच ही गये। उनको देखते ही राधेश्याम ‘प्रणाम’ करते हुए उठकर खड़े हो गये। रामेश्वर जी आराम से चौकी पर बैठ गये। बैठते ही बोले “क्या भाई सब इंतजाम बात हो गया?”

—क्या इंतजाम बात होगा भैया, पी.एफ. से कुछ कर्जा उठाया है, उसी से खींच-खांच कर इंतजाम किसी तरह से कर रहा हूँ चिन्तामग्न हो धीमे से राधेश्याम ने कहा।

—देखो भाई, शादी भले ही सुराजी हो रही है। लड़के वालों की कोई मांग नहीं है, बहुत अच्छी बात है, पर बाराती के स्वागत में कोई कमी नहीं होनी चाहिए। हमारे गांव का एक नाम है, रूतबा है, तुम भी जानते हो कि हमारे खानदान में बारातियों का स्वागत किस ठाट-बाट से होता आया है। उसमें कोई कमी न हो, इसका ख्याल जरूर रखना। पुरूखों द्वारा बनायी गयी इज्जत में कोई बड़ा नहीं लगना चाहिए। इसके लिए जो मदद चाहिए, पूरे टोले वाले तैयार हैं और फिर मैं तो हूँ ही।” कहकर टटोलती

नजर से ताकते रहे और सोचते रहे कि ये ससुरा तो मान ही जायेगा, पर इसकी पगलेट पत्नी पता नहीं क्या करेगी?

राधेश्याम को कुछ कहते नहीं बन रहा था। पत्नी से राय-विचार करने के पश्चात जो तय हुआ था, संकोचवश वो कह नहीं पा रहे थे। पर बार-बार पूछने पर बोले, “क्या बोलूँ, मेरी औकात आप जानते ही हैं, बस किसी तरह बारातियों को पूड़ी-सब्जी खिलाकर भोर में ही विदा कर दूंगा। मरजाद भी नहीं रखूंगा। किसी तरह चंदा की विदाई हो जाय, ओर क्या?”

“क्या बात कर रहे हो? अपनी इज्जत का ख्याल नहीं है तो गांव घर की इज्जत का तो ख्याल करो! पुरूखों की कमाई प्रतिष्ठा पर कालिख पोतोगे क्या?” भृकुटि तान कर रामेश्वर जी ने कहा।

“क्या कर सकता हूँ? पुरखे क्या छोड़ के गये हैं? तंगहाली और फटेहाली के सिवाय! नौकरी नहीं मिली होती तो पूरा परिवार भूखे मरता।” हिम्मत जुटा कर राधेश्याम ने कहा।

“ऐसे मत बोलो। बोलो कितना रूपया चाहिए। मेरे जीते-जी गांव की इज्जत पर कोई आंच नहीं आ सकती!”

“पहले वाला तो चुका नहीं पाया हूँ, फिर और लेकर कैसे चुका पाऊँगा?”

आवाज थोड़ी धीमी करते हुए रामेश्वर जी ने कहा, “देखो तुम्हारे घर का खर्चा तो तुम्हारी नौकरी से ही न चलता है? ये बगीचा भी तो तुम्हारे काम का नहीं। फल-फूल तो नंगे-भुच्चे ही लूटपाट कर खा जाते हैं, तुम्हारे यहां तो कोई मर्द रहता नहीं, तुम बाहर ही रहते हो और तुम्हारा बीमार-गूंगा बेटा भी किसी काम का नहीं है। इसी बगीचे को गिरवी रख दो।”

राधेश्याम सिर्फ मुंह ताके जा रहे थे, जवाब देते नहीं बन रहा था। ऊपर से चंदा की माँ का डर अलग सता रहा था, कि ये बगीचा गिरवी रखने की बात पर कहीं भड़क गयी तब तो और मुश्किल बढ़ जायेगी। पगलेट जब गर्माती है तो ताण्डव करने

लगती है, किसी की सुनती कहाँ है? रामेश्वर जी पाशे पर पाशा फेंक जा रहे थे, “देखों मैं शादी का पूरा खर्चा उठाने को तैयार हूँ, और पहले जो लिया है उसे भी इसी में शामिल समझो। मैं तुमसे सूद भी नहीं लूंगा। मन-ही-मन सोचते हुए कि ये कहा से कर्जा उतार पायेगा। अगली लडकी की शादी में बगीचा तो इसे बेचना ही पड़ेगा और हां जब इसमें फल आयेंगे तो आधा तुम्हारे घर को मिल जायेगा। मेरे पास बागीचा रहेगा तो मैं इसकी रखवारी भी करा लूंगा। सोच लो! मंजूर हो तो कल लिखा-पढी कर लो और रुपये ले जाओ।” कहते हुए रामेश्वर जी विदा हो गये।

दरवाजे की ओट से चंदा की माँ सारी बातें सुन रही थी। अन्दर ही अन्दर उबल रही थी। जैसे ही रामेश्वर जी विदा हुए, पति पर उबल पड़ी, “क्या कह रहे थे, मैंने सुन लिया, ओ अब बगीचा हड़पने के चक्कर में हैं। भला नहीं होगा कभी। बेइमान कहीं का, खबरदार जो उनकी बात मानी। बाप-दादा की निशानी बस एक बगीचा ही तो बचा है, इसे बेचने का सोचना भी मत,” कहकर रामेश्वर जी को सरापने लगी।

“तो क्या करूँ?”

“करना क्या है, जो नून-भात होगा, बराती को खिलाकर विदा कर दें। गांव वालों की इज्जत चली जायेगी तो जाए। बाल-बच्चों के मुँह में जाब लगाकर तो शान नहीं बघारेंगे, ‘घर में भूजड़ी-भांग नहीं और ड्योढी पर नाच’ कैसा लगेगा? अगर चेट में पैसे ही रहते तो उस बुढ़वा से शादी करने को राजी होते कि कोई जोड़ का लडका खोजते! ऊँची आवाज करके चन्दा की माँ बोली।

“वो तो ठीक है, पर गांव घर की, खानदान की इज्जत का भी तो ख्याल रखना पड़ता है।” दबी जुबान में डरते हुए राधेश्याम ने कहा। उसे डर भी लग रहा था कि कहीं पगलेट का दिमाग फिरा, तो शादी-ब्याह क्या होगा, दूसरा ही तमाशा शुरू हो जायेगा।

“किस गाँव-घर की बात कर रहे हैं? कभी किसी ने पूछा है क्या कि घर में खाना पका है या नहीं?”

चले हैं बड़ा परोपकार करने, नहीं गिरवी रखने दूंगी बगीचा, जिसको हंसना है, हंसे, नाराज होना है, हो, ठेंगा से। बड़ा चले हैं सुरखरू बनने, इतना ही ख्याल था तो क्यों नहीं ढंग का लडका खोजने में मदद किये? हम पुरूखों की निशानी बेचें और ये भोज का मजा उड़ाये, बड़ा हितैषी बनने चले हैं।” झगडा इतना बढ़ गया कि अन्ततः चन्दा की माँ की भरपेट पिटाई हो गयी। दूसरे दिन वह दर्द से कराहती रही, सरापती रही, पर बगीचे का सौदा हो गया।

अब चन्दा के पिता को थोड़ी राहत हो गयी, ये सोचकर कि चलो ब्याह-शादी तो आराम से निपट जायेगा और पी.एफ. का पैसा भी चुक जायेगा, बाद की बाद में देखी जायेगी। पर दूसरे ही दिन गांव-वालों ने एक गंभीर समस्या खड़ी कर दी, चन्दा के 12 वर्षीय भाई को लेकर। जो बचपन से ही किसी ऐसी बीमारी का शिकार था, जिसके कारण उसके हाथ-पैर की उंगलियों से बराबर मवाद निकलता रहता था, कभी कभार कीड़े भी निकल जाते थे। ऊपर से गूंगा भी था। चंदा की मां बचपन से उसका इलाज करवाते जा रही थी, पर उसके जख्म ठीक नहीं हो सके थे। सारे लोग उसे गूंगा ही कहते थे। वह पूरे टोले के लिए त्याज्य था पर चन्दा की मां तीन बेटियों के पश्चात प्राप्त पुत्र के ठीक होने की आशा कभी नहीं छोड़ पायी थी।

उसी रात गांव वालों ने एक मिटिंग की। राधेश्याम को जब बुलावा आया, तब राधेश्याम नहीं समझ पाये कि अब क्या समस्या आन पड़ी है? सब लोग रामेश्वरजी के दालान में जमा थे, राधेश्याम के पहुँचते ही बात-चीत शुरू हो गयी। रामेश्वर जीने बोलना शुरू किया, “सुनो सब! ममला गंभीर है।

राधेश्याम के घर पहली शादी है, वो भी बेटे की, ऊपर से अभी दो-दो बेटियाँ और हैं, राधेश्याम की। कल को उनकी भी शादी होगी। परसों बारात

आनेवाली है, गूंगा मानेगा नहीं सामने आ ही जायेगा और अगर बरातियों ने गूंगे को देख लिया तो सोचो क्या होगा? क्या वे शादी के लिए कोढ़वंश में तैयार होंगे? हारगिज नहीं। ऊपर से हिते-नाते बात फैल जायेगी सो अलग। और अगर बात फैल गयी तो, सोचिए, क्या हमें कोई लडकी देगा या हमारे कुनबे की लडकी से शादी करेगा नहीं न? एक के चलते पूरे कुनबे को बहिष्कार की सजा भोगनी पड़ेगी। इसलिये मेरी राय है कि गूंगे को किसी दूर-दराज के मंदिर के पास छोड़ आया जाय, जहाँ मंदिर के पास कुष्ठ रोगियों की जमात जमी रहती है। और कोई चारा नजर नहीं आ रहा है।”

रामेश्वर जी उम्र में सबसे बड़े थे। उनकी बात सुनकर सब चुप थे। किसी के मुंह से एक शब्द नहीं निकल पाया। राधेश्याम की तो जीभ तालु में चिपक गयी। बेबश नजरों से सबको ताकते रह गये।

सबकी चुप्पी का ‘हाँ’ में मतलब निकालते हुए, रामेश्वर जी ने कहा, “तो यह तय रहा कि कल गूंगा को कही मंदिर के पास छोड़ आया जाय।”

राधेश्याम ने हिम्मत जुटाते हुए कहा, “गूंगा को बहलाना-फुसलाना आसान नहीं है, वो सिर्फ अपनी माँ की सुनता है, और किसी की नहीं।”

वहाँ उपस्थित सभी लोग यही सोच रहे थे, मन-ही-मन कि गूंगे की माँ को कैसे समझाया जाय। सब जानते थे कि गूंगा अपनी माँ का दुलारा हैं, न जाने उसने कितने उपवास, व्रत अबतलक कर डाले हैं। दान-पुण्य, दवा-दारू वह करवा चुकी थी और करवा रही थी और किसी को कोई उम्मीद हो-न-हो उसकी माँ जो हमेशा गूंगा को नजर के सामने ही रखती थी और इसी उम्मीद में जिये जा रही थी कि कभी-न-कभी उसका गूंगा ठीक हो ही जायेगा। माँ से गूंगे को अलग करना एक तरह से सबको असंभव लग रहा था। राधेश्याम मन-ही-मन सोच रहे थे कि पगलेट पत्नी को कैसे समझायेंगे। सबकी दुविधा को समझते हुए, रामेश्वर जी ने कहा, ‘एक उपाय है। ऐसे तो चन्दा की माँ मानेगी नहीं, किसी तरह से

गूंगा को ही बहलाना फुसलाना होगा।” सबने एक साथ कहा, “पर कैसे?”

“कल सबेरे राधेश्याम और अशोक दोनों बनारस जा रहे हैं, कुछ खरीदारी करने। बस गूंगे को भी नये कपड़े दिलवाने के नाम पर बहला-फुसला कर साथ ले जाना होगा। उसे नये कपड़े खरीद कर देने होंगे, साथ ही मिठाई खिलाकर खुश रखना होगा। फिर किसी बहाने मंदिर के पास चुपचाप उसे छोड़कर खिसक लेना होगा।”

“पर ये तो धोखा होगा।” एक ने कहा।

“तो तुम क्या समझते हो, उसे किसी तरह समझा-बुझाकर राजी करना ही होगा।”

तुनककर रामेश्वर जी ने कहा।

“पर उसकी माँ को कैसे समझाया जायेगा?”

“तुम भी सनक गये हो क्या? अगर उसके कान में भनक गई पड़ गयी तो समझो हो गया काम?”

“पर पता तो चल ही जायेगा ना!”

“बाद में पता चल भी जायेगा तो क्या होगा? रोयेगी-गायेगी फिर कलेजे पर पत्थर रखकर शान्त हो जायेगी। गांव से तो शहर नहीं ही न जा पायेगी खोजने के लिए?”

बैठकी समाप्त हो गयी। सब अपने-अपने घरों की तरफ मुखातिब हो गये। राधेश्याम का दिल रो रहा था, पर जुबान खामोश थी। उदासी ओढ़े ही घर गये और चुपचाप जाकर सो गये। सुबह होते ही खरीददारी के लिए, साथ जाने के लिए अशोक भाई आ पहुँचे। पूरा घर सुबह चार बजे से ही काम में व्यस्त था। अशोक के आवाज लगाते ही राधेश्याम बेमन से उठ बैठे। किसी को फुरसत न थी, उनके चेहरे पर छाया मुर्दानी देखने की। रात भर इस चिन्ता से चिन्तित रहे कि क्या होगा? पर संयोग से उसकी नौबत नहीं आई। एकबार उन्होंने गूंगे को कहा, “चलो तुमको भी साथ ले चलते हैं कपड़े खरीदने के लिए। अभी तक गूंगे ने गांव से बाहर कभी कदम नहीं रखा था। खुशी-खुशी तैयार हो गया। चलते वक्त चन्दा की माँ ने हिदायत दी, उसका हाथ कभी मत छोड़ियेगा, कभी बाहर भीतर

नहीं गया है। भटक जायेगा।” गूंगे को भी समझा दी कि बाप के साथ ही रहना।

राधेश्याम जी अशोक भाई के साथ गूंगे का हाथ पकड़े-पकड़े बस स्टैण्ड पहुँचे। बस आयी, उसपर सब सवार हो गये। गूंगा खुशी-खुशी खिड़की के पास वाली सीट पर बैठ गया। स्टेशन पर पिता का हाथ पकड़े-पकड़े ही रेलगाड़ी में साथ-साथ बैठा रहा। खुशी से उसकी आँखें चमक रही थी।

अपनी गूंगी भाषा तथा हाथ के इशारे से राधेश्याम को न जाने क्या-क्या बताता रहा। उसके लिये सबकुछ नया था, अनोखा था। ट्रेन बनारस स्टेशन पर रुकी। तीनों उतर कर बाजार की तरफ बढ़ चले। गूंगा बाजार की रौनक देख ताली पीट-पीट कर बार-बार अपनी खुशी का इजहार कर रहा था।

सबसे पहले राधेश्याम जी ने बेटे के लिए पैट-शर्ट ही खरीदी, जिसे उन्होंने एक झोले में डालकर गूंगे के गर्दन में टांग दी। सब खरीदारी हो जाने के उपरान्त सब एक होटल में बैठकर खाना भी खाये।

राधेश्याम को लौटना भी था, पर क्या करें? कैसे करें की दुविधा में झूल रह थे। फिर भाई और बेटे के साथ स्टेशन से लगे विशाल मंदिर की तरफ चले। उनका बेटा एक क्षण के लिए भी उनका हाथ नहीं छोड़ रहा था। मंदिर की सीढ़ियों पर तीनों थकहार कर बैठ गये। राधेश्याम ने पहले अशोक भाई को इशारे से स्टेशन की तरफ बढ़ने का इशारा किया, अशोक धीरे से खिसक लिए सामान के साथ।

फिर राधेश्याम ने एक बड़ा झोला खरीदा, फिर एक तकिया, एक चादर, फिर मिठाई और सब्जी-पूड़ी खरीदी। फिर सब सामान झोले में डालकर बेटे को प्यार से मंदिर की सीढ़ियों पर बैठा दिया। फिर उसकी जेब में एक-एक रुपये के 10 नोट डाले फिर झोला पकड़ाकर बेटे को समझाया “बस दो-मिनट में भगवान के दर्शन कर लौट आता हूँ। तू बस यहीं बैठा रह। कहीं इधर-उधर नहीं जाना।”

बड़ी मिन्नत के पश्चात गूंगा तैयार हो गया। एक मिठाई का डब्बा राधेश्याम ने उसको खाने के

लिए दिया और एक डब्बा मिठाई लेकर मंदिर के अन्दर चले गये। गूंगा उनको देखे जा रहा था और मिठाई खाये जा रहा था। राधेश्याम भक्तों की लाइन में खड़े होकर, गूंगे की नजर कब हटे, ये देखने लगे।

गूंगा मगन होकर मिठाई खाने लगा। राधेश्याम मन पर पत्थर रखकर गूंगे की आंख बचा वहां से निकलने में कामयाब हो गये और जाकर सीधे ट्रेन में धम्म से बैठ गये। अशोक पहले से ही आकर सामान के साथ बैठा हुआ था। रास्ते भर यहीं सोचते रहे कि कैसे पत्नी को समझायेंगे। और खुद के बेहाल मन को ढाढ़स बंधाते रहे। गूंगे बेटे का ख्याल उनके भी मन को मथ रहा था।

जैसे ही राधेश्याम ने ड्योडी में साजो-सामान के साथ कदम रखा, चन्दा की माँ ने दाये-बाएं देखकर सीधा सवाल किया, “बाबू कहां है? बाबू तो आज बहुत खुश होगा?”

“हाँ खुश तो बहुत था। आ रहा है, अशोक के साथ, वहीं ठहर गया है। सुबह की गाडी से लौटेगा।”

कहकर आंख बचाते हुए रामेश्वर जी काम का बहाना बनाकर निकल लिये।

दूसरे दिन बारात आयी। बारातियों के स्वागत बात में पूरा कुनबा लगा हुआ था, पर चन्दा की माँ सांस टांगे बेटे का इंतजार करती रही। उधर शादी के रस्मो-रिवाज चल रहे थे। आखिरी ट्रेन का समय बीतते ही चन्दा की माँ का दम-फूलने लगा। वह व्याकुल हो बार-बार पूछती कि, “अशोक अभी तक नहीं आया।”

बार-बार राधेश्याम कुछ-न-कुछ बहाना करते जा रहे थे। ऐसे करते-करते विवाह तो सम्पन्न हो गया। उसके पश्चात तो चन्दा की माँ को रहा नहीं गया, उसका मन आशंकाओं से भर उठा, बाहर से चन्दा के पिता को बुलवा भेजी, जो किसी-न-किसी बहाने बचते फिर रहे थे। चन्दा की माँ ने कसम देखकर पूछा, ‘सच-सच बताइए, मेरा बेटा कहां है, उसे कहां छोड़कर आये है। और जोर-जोर से रोने लगी। राधेश्याम को मुंह खोलना ही पड़ा। बोले, ‘गूंगा स्टेशन पर कहीं बहक गया था, क्या करते,

बारात आनी थी सो लौटना पड़ा। अशोक को छोड़कर आया हूँ, उसे ढूँढ़ने के लिए।”

इतना सुनना था कि चन्दा की माँ भड़क उठी, और पति को अनाप-शनाप बकने लगी, “कहा था उसका हाथ किसी हाल में नहीं छोड़ना, कभी गांव से बाहर नहीं गया है। मेरा बाबू बोल नहीं सकता है, हे भगवान! उसकी रक्षा करना! ठाकुर जी उसे बचा लेना! “कहते-कहते पुग्गा-फाडकर रोने लगी। लोगों ने बहुत समझाया पर उसका रोना कम नहीं हुआ, रोते-रोते बेहोश हो गयी। किसी तरह उसे कमरे के अन्दर उठाकर ले जाया गया। जब-जब होश आता वह जोर-जोर से रोने लग जाती और फिर बेहोशी की हालत में चली जाती।

विदाई के समय चन्दा जार-जार रो रही थी। पर उससे भी ज्यादा दिल दहलाने वाली रूलाई चन्दा की माँ रो रही थी। लोगों ने समझा कि चन्दा ही घर का सारा काम संभालती थी, इसीलिए उसकी माँ रो रही है कि अब कौन घर संभालेगा? तभी बाकी औरतों ने कहा कि चन्दा गयी तो क्या?

अभी तो दो-दो बेटियाँ हैं, घर संभालने के लिए, ये पगली कुछ करती है? पूजा-पाठ छोड़कर जो अब करेगी। तभी एक ने धीरे से कहा, ‘अरे पगली, बेटा के लिए नहीं रो रही है। शायद तुम सबको मालूम नहीं है, पूरी शादी में तुमलोगों ने गूंगे को देखा क्या? नहीं न, अरे उसको बनारस स्टेशन के पास मंदिर के सामने धोखे से छोड़ आए हैं।”

“अच्छ! वही कहूँ कि गूंगा कहीं नजर नहीं आ रहा था।” दूसरी औरत ने आश्चर्य से कहा।

“मैंने सोचा कि उसे बारातियों से छुपाने के लिए कहीं कोठरी में बन्दरकर छोड़ दिया होगा।” तीसरी औरत ने कहा।

“अरे, नहीं! सखी उसे हमेशा के लिए छोड़ आये हैं। सोनी के बाबू बता रहे थे कि अगर बरातियों को जरा भी सुनगुन हो जाती तो बिदक जाते, शादी करते ही नहीं। आखिर कबतक यह बता छुपी रहती कि इस वंश में कोढ़ी है। कोढ़वंश से आखिर दुनिया का कौन आदमी रिश्ता बनाना चाहेंगा। और जानती हो! ये बात चन्दा की माँ को नहीं बताया गया है पर लगता है, उसे पता चल गया है, तभी इतना बिलख-बिलख कर रो रही है, बेचारी!”

चन्दा विदा हो गयी। रिश्तेदार विदा हो गये, शादी का सारा तामझाम समाप्त हो गया पर गूंगे की माँ के आँसू नहीं थम रहे थे। बस, एक ही रट, ‘हाय मेरा बाबू कहाँ-कहाँ भूखे-प्यासे भटक रहा होगा।” साथ ही पूरे कुनबे को जितना कोस सकती थी, श्राप दे सकती थी, वो देती और फिर रोने लगती है। रोते-रोते गूंगे की माँ ने खाट पकड़ ली। पूरे छै महीने चन्दा की माँ बेटे की हूक में बीमार रही। जब भी टोला-मुहल्ले से उसे खबर मिलती कि कोई बनारस जाकर लौटा है, वह एक आस लिये उसके पास अवश्य जाती और पूछ बैठती की कहीं उसका बाबू नजर आया था क्या?

उस गांव के लोग शादी-ब्याह की खरीददारी करने बनारस ही जाते थे। किसी ने एकाध बार गूंगे को भीख मांगते भी देखा था, पर छै महीने पश्चात किसी ने उस गूंगे को कभी नहीं देखा। सबने मान लिया कि गूंगा मर-हेरा गया होगा। गांव वालों ने भी राहत की सांस ली कि कोढ़ी से छुटकारा मिला। कुनबे की इज्जत बच गयी पर चन्दा की माँ गूंगे को कभी नहीं भूल पायी। जब भी उसकी याद आती चन्दा की माँ की आँखों से दो-चार बूंद आँसू बह ही जाते।

संपर्क : 402, रॉयल रिटीट मैनसन, न्यू पी.पी. कॉलोनी, पटना-800013,  
मो0 8789057436

## खाल

मूल भाषा अंग्रेजी का अनुवाद

अनुवादक : सुशांत सुप्रिय

ठंड का वह मौसम लम्बा खिंच गया था। शहर की गलियों में बेहद ठंडी हवा चल रही थी और आसमान में बर्फबारी करने वाले बादल उमड़-घुमड़ रहे थे।

द्रिओली नाम का वह बूढ़ा आदमी रू दी रिवेली के पास दर्द से अपने पैर घसीटते हुए पटरी पर चला जा रहा था। वह ठंड से पीड़ित और दुखी था। शीशे वाली दुकानों में कई चीज़ें सजी हुई थी — इत्र, रेशमी टाई, हीरे, मेज़-कर्सियाँ, किताबें आदि। लेकिन वह इन चीज़ों को बिना किसी रुचि के देखते हुए आगे बढ़ रहा था। फिर उसके रास्ते में एक चित्र-दीर्घा आई। चित्र-दीर्घाएँ उसे हमेशा अच्छी लगती थीं। इस दीर्घा में शीशे के उस पार दर्शकों को दिखाने के लिए एक ही कैन्वस था। वह उसे देखने के लिए रुका। अचानक स्मृति ने जैसे उसके ज़हन पर दस्तक दी। पहले कहीं देखी किसी चीज़ की पुरानी याद उसके ज़हन में कौंधी। उसने उसे दोबारा देखा। वह एक प्राकृतिक दृश्य की पेंटिंग थी। जैसे तेज़ चलती हवा की वजह से वृक्षों का एक समूह एक ओर झुक गया हो। चौखटे के साथ एक फलक लगा था जिस पर चित्रकार का नाम अंकित था : चैम सुतीने (1894-1943)।

द्रिओली उस पेंटिंग को घूरते हुए अनिश्चितता से यह सोचता रहा कि इस पेंटिंग में वह क्या चीज़ थी जो उसे जानी-पहचानी लग रही थी। कैसी अजीब-सी, सनक भरी पेंटिंग है — उसने सोचा। लेकिन मुझे यह अच्छी लग रही है। चैम सुतीने ...

सुतीने ...। “हे भगवान! “वह अचानक चिल्लाया। “यह तो मेरा पुराना छोटा मित्र है। पेरिस की सबसे शानदार दुकान में उसकी बनाई हुई पेंटिंग टँगी हुई है! सोचिए! “बूढ़ा अपना चेहरा खिड़की के शीशे के करीब ले गया। वह उस लड़के का चेहरा याद कर सकता था। लेकिन कब की बात है यह? बाक्री चीज़ें उसे इतनी आसानी से याद नहीं आईं। यह बहुत साल पहले की बात थी। कितनी पुरानी बात? बीस, शायद तीस साल पहले का वाक्या था यह, है न? एक मिनट रुकिए। हाँ, यह युद्ध से एक साल पहले की बात थी। प्रथम विश्व युद्ध से पहले, 1913 की बात थी यह। हाँ, यही साल था। और इस सुतीने ... इस बदसूरत लड़के सुतीने को वह चाहता था — बल्कि उससे वह लगभग प्यार करता था। ऐसा अन्य किसी कारण से नहीं था बल्कि केवल इसलिए था क्योंकि वह पेंटिंग्स बनाता था। और, कितनी शानदार पेंटिंग्स बनाता था वह! अब उसे सब कुछ ज़्यादा स्पष्ट रूप से याद आ रहा था। वह लड़का कहीं रहता था?

फ़ैल्गुएरे शहर में, हाँ वही। तब वहाँ एक स्टूडियो

होता था, जहाँ केवल एक कुर्सी थी और एक गंदा सोफ़ा था जिस पर वह चित्रकार लड़का सोता था। वहाँ शराब में धुत्त लोगों की पार्टियाँ होती थी, सस्ती सफ़ेद दारु मिलती थी, प्रचंड झगड़े होते थे, और हमेशा वहाँ उस लड़के का उदास चेहरा नज़र आता था जो अपने काम के बारे में सोचता रहता था। यह अजीब बात थी, द्रिओली ने सोचा, कि अब यह सब उसे बिल्कुल स्पष्ट याद आ रहा था। हर छोटे-से-छोटा तथ्य उसे उसी समय किसी और घटना की याद दिला रहा था।

उदाहरण के लिए वहाँ गोदना गुदे होने की मूर्खता थी। यदि उसे वैसा समझा जाए तो वह पागलपन भरा कार्य था। वह कैसे शुरू हुआ था? अरे हाँ — एक दिन वह अमीर बन गया था। हाँ, ठीक यही हुआ था। और उसने शराब की ढेर-सी बोतलें खरीद ली थी। वह अब खुद को शराब की ढेर-सी बोतलें लिए स्टूडियो में दाखिल होते हुए देख सकता था। लड़का तब चित्रफलक के सामने बैठा था। द्रिओली की पत्नी उस समय कमरे के बीचोबीच खड़ी होकर अपने चित्र के लिए एक ख़ास मुद्रा बना रही थी।

“आज रात हम सब उत्सव मनाएँगे, “उसने कहा। “केवल हम तीनों आज रात छोटा-सा उत्सव मनाएँगे।”

“हम किस बात का उत्सव मनाएँगे?” बिना ऊपर देखे लड़के ने पूछा। “क्या वजह यह है कि आप अपनी पत्नी को तलाक दे रहे हैं ताकि वह मुझसे ब्याह कर सके?”

“नहीं,” द्रिओली बोला। “हम उत्सव मना रहे हैं क्योंकि आज मुझे अपने काम के एवज़ में बहुत सारी धन-राशि मिली है।”

“लेकिन मुझे आज कुछ भी नहीं मिला है। हम इस बात का भी उत्सव मना सकते हैं।” युवती उस पेंटिंग को देखने के लिए चल कर उसके पास आ गई। द्रिओली भी वही आ गया। उसके एक हाथ में शराब की बोतल थी और दूसरे हाथ में गिलास था।

“नहीं!” लड़का चिल्लाया। कृपा करो, नहीं। “उसने झपट कर चित्रफलक से वह पेंटिंग उतार ली और दीवार के साथ लग कर खड़ा हो गया। लेकिन द्रिओली ने वह पेंटिंग देख ली थी।

“यह अद्भुत है। तुम्हारी बनाई सभी पेंटिंग्स मुझे पसंद हैं। यह पेंटिंग भी। समझे ? मुझे तुम्हारी बनाई हुई सभी पेंटिंग्स अच्छी लगती हैं।”

“समस्या यह है कि मेरी पेंटिंग्स अपने-आप में पौष्टिक चीज़ नहीं हैं। मैं उन्हें खा कर अपना पेट नहीं भर सकता हूँ।” लड़के ने उदास हो कर कहा।

“पर फिर भी वे पेंटिंग्स शानदार हैं,” ट्रिओली ने उसे शराब से भरा एक फीका पीला गिलास देते हुए कहा। “इसे पियो,” वह बोला। यह चीज़ तुम्हें प्रसन्नचित्त कर देगी। “उसने आज तक इस लड़के से अधिक दुखी या उदास चेहरे वाला आदमी नहीं देखा था।”

“मुझे थोड़ी और शराब दो,” लड़के ने कहा। “यदि हमें उत्सव ही मनाना है तो हमें उसे ढंग से मनाना चाहिए।”

सबसे करीब की दुकान से ट्रिओली ने शराब की छह बोतलें खरीदी, और वे उन बोतलों को स्टूडियो ले आए। फिर वे वहाँ बैठ गए और आराम से शराब पीते रहे।

“केवल बेहद अमीर लोग ही इस तरह से उत्सव मना सकते हैं।”

“यह सही बात है।” लड़के ने कहा।

“जोसी, क्या यह सही नहीं?”

“बिल्कुल सही है।”

“यह बेहतरीन शराब है। इसे पीना हमारा सौभाग्य है।”

धीरे-धीरे और बेहद व्यवस्थित ढंग से उन्होंने इतनी शराब पी कि वे नशे में धुत हो जाएँ। यह पूरी प्रक्रिया यूँ तो एक लोक पर चलने वाली थी, किंतु इसमें भी पूरी औपचारिकता निभाई जा रही थी।

“सुनो,” अंत में ट्रिओली ने कहा, “मेरे ज़हन में एक ज़बर्दस्त विचार आया है। मुझे एक पेंटिंग चाहिए, एक प्यारी-सी पेंटिंग ...। लेकिन मैं चाहता हूँ कि वह पेंटिंग तुम मेरी खाल पर बनाओ, मेरी पीठ पर। फिर मैं चाहता हूँ कि अपनी बनाई पेंटिंग पर तुम गोदना गोद दो ताकि वह हमेशा के लिए वहाँ मौजूद रहे।”

“तुम्हारे दिमाग में बौराए हुए विचार आते हैं।” लड़के ने कहा।

“गोदना कैसे गोदना है, यह मैं तुम्हें सिखा दूँगा। यह आसान होता है। एक बच्चा भी इसे कर सकता है।”

“तुम पागल हो गए हो। आखिर तुम चाहते क्या हो?”

“मैं तुम्हें दो मिनट में सब सिखा दूँगा।”

“यह असम्भव है।”

“क्या तुम यह कहना चाह रहे हो कि मुझे नहीं पता, मैं क्या बात कर रहा हूँ?”

“देखो, मैं केवल यह कह रहा हूँ कि तुम अभी नशे में धुत हो। तुम्हारा यह विचार शराब के नशे की उपज है।” लड़के ने कहा।

“तुम मेरी पत्नी को इस पेंटिंग के लिए मॉडल के रूप में इस्तेमाल कर सकते हो। मेरी पीठ पर जोसी का एक भव्य चित्र।”

“यह कोई अच्छा विचार नहीं है,” लड़के ने कहा।

“और सम्भवतः मैं सही ढंग से गोदना गोदने का काम नहीं कर पाऊँगा।”

“यह आसान काम है। मैं तुम्हें दो मिनट में यह काम सिखा दूँगा। फिर तुम खुद ही देखोगे। अब मैं जा कर सारे उपकरण ले आता हूँ।”

आधे घंटे बाद ट्रिओली लौट आया। “मैं सारा ज़रूरी सामान ले आया हूँ,” वह चहक कर बोला। उसके हाथ में एक भूरा सूटकेस था। “इस सूटकेस में गोदना गोदने के सारे ज़रूरी उपकरण मौजूद हैं।”

उसने सूटकेस उठा कर मेज़ पर रख दिया, उसे खोला और उसमें से बिजली से चलने वाली सुइयाँ तथा रंगीन स्याही की बोतलें निकाल कर बाहर रख दीं। उसने सुई की तार का प्लग बिजली के सॉकेट में लगाया। फिर उसने उस उपकरण को अपने हाथ में उठाया और उसके स्विच को दबाया। इसके बाद उसने अपना जैकेट उतार दिया और अपनी बाईं आस्तीन ऊपर मोड़ ली। “अब देखो। मुझे ध्यान से देखो और मैं तुम्हें बताता हूँ कि यह कितना आसान है। मैं अपने हाथ पर यहाँ एक नमूना बना रहा हूँ ... देखा, यह कितना आसान है ... देखा, मैं अपनी बाँह पर कितनी आसानी से एक कुत्ते का नमूना बना रहा हूँ ...।” लड़के में कुतूहल का भाव उत्पन्न हो गया।

“ठीक है, अब मैं तुम्हारी बाँह पर इसका अभ्यास करता हूँ।” गुँजने वाली सुई की मदद से लड़का ट्रिओली की बाँह पर नीले निशान बनाने लगा। “देखा, यह कितना आसान है,” ट्रिओली बोला। “यह कलम और स्याही से तस्वीर बनाने जैसा है। दोनों में केवल यही अंतर है कि गोदना गोदने का काम थोड़ा धीमा है।”

“अरे, यह तो कोई बड़ी बात नहीं है। क्या तुम तैयार हो? क्या हम शुरू करें?”

“अरे, मॉडल कहाँ है?” ट्रिओली ने कहा। “जोसी, यहाँ आओ!” वह उत्साह के हलचल से भरा हुआ था और सब कुछ ऐसे व्यवस्थित ढंग से कर रहा था जैसे कोई बच्चा किसी खेल को खेलने से उत्साहित हो जाता है। “आप उसे कहाँ चाहते हैं? वह कहाँ खड़ी हो?”

“उसे वहाँ” ड्रेसिंग टेबल “के बगल में खड़ी होने दो। वह वहाँ ब्रश से अपने बाल सँवारेगी। मैं उस समय की उसकी पेंटिंग बनाऊँगा जब वह कंधे पर गिर आए अपने बालों को ब्रश से सँवार रही होगी।”

“ज़बर्दस्त! तुम प्रतिभाशाली हो।”

“पहले मैं एक साधारण पेंटिंग बनाऊँगा। फिर यदि वह पेंटिंग मुझे अच्छी लगी तो मैं उस पर गोदना गोद दूँगा।” लड़के ने कहा। एक चौड़े ब्रश की मदद से वह ट्रिओली की पीठ की नंगी खाल पर पेंटिंग बनाने लगा।

“अब हिलो नहीं! हिलो नहीं!” जैसे ही उसने पेंटिंग बनाना शुरू किया, उसकी एकाग्रता इतनी ज़्यादा हो गई कि उस एकाग्रता ने उसके शराब के नशे को निष्प्रभावी कर दिया।

“ठीक है। अब हो गया।” अंत में उसने यवती से कहा।

लड़का सुबह होने तक ट्रिओली की पीठ की खाल पर काम करता रहा। ट्रिओली को याद आया कि जब अंत में उस कलाकार ने पीछे हटकर कहा, “लीजिए, आपकी

पेंटिंग बन गई, “तो उस समय बाहर दिन का प्रकाश फैला हुआ था और बाहर सड़क पर से लोगों के आने-जाने की आवाज़ें आ रही थी।

“मैं यह पेंटिंग देखना चाहता हूँ,” ट्रिओली ने कहा। लड़के ने एक आईना उठा कर दिखाया और ट्रिओली ने पेंटिंग को ठीक से देखने के लिए अपनी गर्दन उठाई।

“हे ईश्वर,” वह चिल्लाया। वह एक चौंका देने वाला दृश्य था। उसकी पूरी पीठ रंगों से प्रदीप्त थी। वहाँ हर तरह के रंग चमक रहे थे “सुनहरा, हरा, नीला, काला, लाल आदि। खाल पर गुदा हुआ गोदना बेहद गहरा था। वह पेंटिंग बेहद जीवंत लग रही थी। वह सुतीने की अन्य पेंटिंग्स की विशिष्टता लिए हुई थी। “यह ज़बरदस्त है!”

“मुझे भी अपनी यह पेंटिंग अच्छी लग रही है, “लड़के ने कहा। वह थोड़ा पीछे हटकर उस पेंटिंग को पारखी निगाहों से देख रहा था।” जानते हो, यह एक बढ़िया पेंटिंग है और मैं इस पर अपने हस्ताक्षर कर सकता हूँ। “और फिर मशीन हाथ में लेकर उसने लाल स्याही में पेंटिंग के दाईं ओर पीठ की खाल पर उस जगह अपना नाम गोद दिया जहाँ भीतर ट्रिओली की किडनी मौजूद थी। ट्रिओली नाम का वह बूढ़ा चित्र-दीर्घा की खिड़की में से वहाँ लगी पेंटिंग को घूरते हुए लगभग स्तब्ध-सा खड़ा था। यह बहुत अरसा पहले की बात थी” लग रहा था जैसे यह किसी और ही जन्म की बात थी। और वह लड़का? उसका क्या हुआ? उसे याद आया कि प्रथम विश्व युद्ध से लौटने के बाद उसने लड़के की अनुपस्थिति को महसूस किया था और उसने जोसी से लड़के के बारे में पूछा था।

“मेरा वह छोटा पेंटर कहाँ है?”

“वह पता नहीं कहाँ चला गया।” उसने जवाब दिया था।

“शायद वह वापस लौट आए।”

“शायद ऐसा ही हो। कौन जानता है?”

वह अंतिम बार था जब उन्होंने उसका ज़िक्र किया था। इसके कुछ समय बाद वे “ले हैब्रे” चले गए थे जहाँ अधिक संख्या में नाविक थे और व्यापार करना बेहतर था। वे बेहद खुशनुमा बरस थे — दो युद्धों के बीच का समय। गोदी के पास उसकी छोटी-सी दुकान थी। वहाँ आरामदायक कमरे थे और काम की कमी नहीं थी।

फिर द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया था। जोसी मारी गई। जर्मन फ़ौज वहाँ पहुँच गई, और इसके साथ ही उसके व्यापार का अंत हो गया। उसके बाद किसी को भी अपनी बाँह पर कोई चित्र नहीं चाहिए था। और तब तक वह कोई और काम सीखने के लिए बहुत बूढ़ा हो चुका था। निराश हो कर वह पेरिस पहुँचा था। उसे एक अनिश्चित उम्मीद थी कि शायद उस बड़े शहर में जीवन जीना आसान होगा। किंतु ऐसा नहीं हुआ।

और अब युद्ध के ख़त्म हो जाने के बाद उसके पास न साधन बचे थे, न ऊर्जा कि वह अपना छोटा-सा पुराना

व्यापार दोबारा शुरू कर पाता। एक बूढ़े के लिए यह जानना आसान नहीं था कि जीवनयापन के लिए क्या किया जाए, विशेष रूप से तब जब वह भीख माँगना नहीं चाहता था। लेकिन तब वह कैसे जीवित रह सकता था?

उसने पेंटिंग को अब भी घूरते हुए सोचा — तो यह पेंटिंग मेरे पुराने मित्र की है! वह अपना चेहरा खिड़की के शीशे के करीब ले गया और उसने भीतर दीर्घा में निगाह डाली। दीर्घा की दीवारों पर वह उसी चित्रकार की कई अन्य टंगी हुई पेंटिंग्स देख सकता था। दीर्घा में बहुत-से लोग पेंटिंग्स देखते हुए टहल रहे थे। जाहिर है, यह एक विशेष नमाइश थी। अचानक जैसे आवेग में आ कर ट्रिओली मुड़ा, उसने दीर्घा का दरवाज़ा खोला और भीतर चला गया। वह एक लम्बा कमरा था जहाँ फ़र्श पर शराब के रंग की कालीन पड़ी हुई थी। हे ईश्वर, यहाँ सब कुछ कितना सुंदर और गर्म था। वहाँ बहुत सारे कला-प्रेमी पेंटिंग्स को सँराह रहे थे। वे साफ़-सथरें, प्रतिष्ठित लोग थे और हर व्यक्ति ने अपने हाथ में सूची-पत्र पकड़ रखा था। उसे अपने बगल से आती उसे ही सम्बोधित एक आवाज़ सुनाई दी, “तुम यहाँ क्या चाहते हो?” ट्रिओली निश्चल खड़ा रहा।

“तुम कृपा करके मेरी दीर्घा से बाहर निकल जाओ,” काला सूट पहना हुआ आदमी कह रहा था।

“क्या मुझे पेंटिंग्स देखने की इजाज़त नहीं है?”

“मैंने तुम्हें यहाँ से चले जाने के लिए कहा है।” लेकिन ट्रिओली अपनी जगह खड़ा रहा। उसने अचानक खुद को पराजित और अपमानित महसूस किया।

“यहाँ गड़बड़ी नहीं करो,” वह आदमी कह रहा था। “आओ, चलो। इस ओर आओ।” उसने अपना मोटा, सफ़ेद हाथ ट्रिओली की बाँह पर रखा और उसे दरवाज़े की ओर जोर से धक्का देने लगा। बस, फिर क्या था!

“अपना हाथ मेरी बाँह पर से हटाओ!” ट्रिओली चिल्लाया। उसकी आवाज़ उस लम्बी दीर्घा में गूँज उठी और सभी लोगों के सिर आवाज़ की दिशा में मुड़ गए। सभी चौंके हुए चेहरे कमरे के दूसरे छोर से उसी व्यक्ति को घूर रहे थे जो चिल्लाया था। सब चुपचाप अपनी जगह खड़े थे और इस संघर्ष को देख रहे थे। उनके चेहरे पर केवल अपने हित का भाव मौजूद था जो यह कहता प्रतीत हो रहा था — सब ठीक है। हमें कोई ख़तरा नहीं। इस समस्या से निपटा जा रहा है।

“मेरे पास भी इस पेंटर की बनाई हुई एक पेंटिंग है,” ट्रिओली चिल्ला रहा था। वह मेरा मित्र था और मेरे पास उसके द्वारा दी गई एक पेंटिंग मौजूद है।

“यह कोई पागल आदमी है।”

“अरे, कोई पुलिस को बुलाओ।”

अपनी देह को मोड़ कर ट्रिओली अचानक उस आदमी की पकड़ से आज़ाद हो गया। इससे पहले कि कोई उसे रोक पाता, वह चिल्लाता हुआ दीर्घा के दूसरे छोर की ओर दौड़ा, “मैं आप सब को दिखाता हूँ! मैं आप



सब को दिखाता हूँ !” उसने अपना ओवरकोट उतार कर फेंक दिया। फिर उसने अपनी जैकेट और क्रमीज़ भी उतार फेंकी। वह मुड़ा जिससे उसकी नंगी पीठ अब लोगों की ओर थी।

“यहाँ देखिए!” तेज़ी से साँस लेते हुए वह चिल्लाया। “देखा आपने ? यह पेंटिंग यहाँ है !”

अचानक पूरे कमरे में सन्नाटा छा गया। हर व्यक्ति जहाँ था, वहीं रुक गया। सभी बिना हिले-डले जैसे स्तब्ध रह गए। वे सब बेचैनी से उस गोदी गई पेंटिंग को घूर रहे थे। वह पेंटिंग अब भी ट्रिओली की पीठ पर मौजूद थी – उसके रंग पहले जैसे चटख थे। वहाँ मौजूद लोग कहने लगे — “हे भगवान ! यह पेंटिंग यहाँ वाकई मौजूद है ! “यह उसकी शुरुआती पेंटिंग्स जैसी है, हाँ ?” यह विलक्षण है, विलक्षण है ! “और देखो, चित्रकार ने यहाँ अपने हस्ताक्षर भी किए हैं ! “यह उसकी पुरानी पेंटिंग है। यह उसने कब बनाई?”

बिना मुड़े हुए ट्रिओली बोला, “यह पेंटिंग 1913 में बनाई गई थी। 1913 के पतझड़ के समय। सुतीने को गोदना गोदने का काम किसने सिखाया? उसे यह काम मैंने सिखाया था। और इस चित्र में यह युवती कौन थी ? यह मेरी पत्नी थी।”

उस चित्र-दीर्घा का मालिक भीड़ को धक्के मारता हुआ ट्रिओली की ओर बढ़ रहा था। अब वह शांत और बेहद गम्भीर था और उसके अधरों पर एक मुस्कान आ गई थी। “मान्यवर, मैं इस पेंटिंग को खरीद लूँगा। मैंने कहा, मैं इस पेंटिंग को खरीद लूँगा, मान्यवर।”

“आप इसे कैसे खरीद सकते हैं ?” ट्रिओली ने धीरे से पूछा।

“मैं इस पेंटिंग के लिए आपको दो लाख फ्रैंक्स दूँगा।”

“ऐसा मत करो !” भीड़ में से कोई फुसफुसाया।

“इसकी कीमत इससे बीस गुना ज़्यादा होती चाहिए।”

ट्रिओली ने बोलने के लिए अपना मुँह खोला। लेकिन उसके मुँह से कोई शब्द बाहर नहीं आया। इसलिए उसने अपना मुँह बंद कर लिया। फिर उसने दोबारा अपना मुँह खोला और धीरे से बोला, “लेकिन मैं इसे कैसे बेच सकता हूँ ?” उसने अपने हाथ उठाए और फिर उन्हें असहाय-सा अपने बगल में गिर जाने दिया।

“श्रीमन, मैं इसे कैसे बेच सकता हूँ?” उसकी आवाज़ में पूरी दुनिया की उदासी समाहित थी।

“हाँ !” भीड़ में वे सभी कह रहे थे। “वह इसे कैसे बेच सकता है ? यह तो उसके शरीर का हिस्सा है।”

“सुनिए,” व्यापारी ने पास आते हुए कहा।

“मैं आपको मदद करूँगा। मैं आपको अमीर बना दूँगा। हम मिल-जुल कर एक साथ इस पेंटिंग के बारे में किसी नतीजे पर पहुँच सकते हैं, है न ?”

ट्रिओली ने उसे चिंता से भरकर देखा।

“श्रीमन, आप इसे कैसे खरीद सकते हैं? इसे खरीद लेने के बाद आप इसका क्या करेंगे ? आप इसे कहाँ रखेंगे ? आप आज रात इसे कहाँ रखेंगे ? और कल आप इसे कहाँ रखेंगे?”

“ओह, मैं इसे कहाँ रखूँगा? हाँ, मैं इसे कहाँ रखूँगा? चलिए, देखते हैं...”

ऐसा लगता है, “उसने कहा,” यदि मुझे यह पेंटिंग चाहिए तो मुझे आपको भी साथ रखना पड़ेगा। यह तो असुविधा है। इस पेंटिंग की तब तक कोई कीमत नहीं जब तक आपकी मृत्यु नहीं हो जाती। आप की उम्र कितनी है, मित्र?

“इकसठ वर्ष।”

“लेकिन सम्भवतः आप ज़्यादा स्वस्थ नहीं हैं, है न ?” व्यापारी ने धीरे-धीरे ट्रिओली को ऊपर से नीचे तक आँका जैसे कोई किसान किसी बूढ़े घोड़े को देखता है।

“मुझे यह पसंद नहीं,” ट्रिओली ने उससे दूर जाते हुए कहा। “ईमानदारी से कहूँ श्रीमन तो मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं।” वह मुड़ा और चलता हुआ सौधे एक लम्बे आदमी की बाँहों में पहुँच गया जिसने अपना हाथ आगे बढ़ा कर उसे धीरे से कंधे से पकड़ लिया।

“सुनिए, मित्र,” अजनबी ने मुस्कुराते हुए कहा, “क्या आपको तैरने और धूप सेंकने में मज़ा आता है?”

ट्रिओली ने चौंक कर उसकी ओर देखा।

“क्या आपको बोर्डरू के महान् महल से आया स्वादिष्ट भोजन और लाल शराब पसंद है ?” वह व्यक्ति अभी भी मुस्कुरा रहा था। उसके उजले, चमकते दाँतों के बीच से एक सुनहली कौंध आ रही थी। वह बेहद मृदु ढंग से बोल रहा था और उसका दस्ताने वाला हाथ अब भी ट्रिओली के कंधे पर था। “क्या आपको ऐसी चीज़ें पसंद हैं?”

“जी हाँ,” ट्रिओली ने उलझन से भरकर उत्तर दिया। “बिल्कुल।”

“क्या आपने कभी विशेष स्न से अपने पैर के लिए कोई जूता बनवाया है? नहीं? क्या आप ऐसा करना चाहेंगे?”

“देखिए ...”

“और क्या आप एक नाई की सुविधा चाहेंगे जो हर सुबह आपकी दाढ़ी बनाए और आपके बालों को काट कर छेँटा किया करे ?” ट्रिओली केवल खड़ा हो कर घूरता रहा। “और क्या आप एक मोटी किंतु आकर्षक युवती की सेवा चाहेंगे जो आपकी उँगलियों के नाखूनों का प्रसाधन करे ?” भीड़ में से कोई हँसा। “और क्या आप अपने बिस्तर के बगल में एक घंटी चाहेंगे, जिसे सुनकर हर सुबह एक सेविका आपका नाश्ता ले आया करे? क्या आपको ऐसी चीज़ें पसंद हैं, मित्र ? क्या आपको ऐसी चीज़ें अच्छी लगती हैं ?” ट्रिओली बिना हिले-डले खड़ा रहा और उसे देखता रहा।

“देखिए, मैं कैनेस में मौजूद होटल ब्रिटल का मालिक हूँ। मैं आप को आमंत्रित करता हूँ कि आप वहाँ

आएँ और अपने जीवन का बाक़ी बचा समय मेरे अतिथि बन कर ऐशो-आराम से बिताएँ। “वह आदमी रूका ताकि उसके श्रोताओं को इस खुशगवार सम्भावना को समझने का मौका मिले।” आपकी एकमात्र ज़िम्मेदारी, मैं इसे आपकी सुख-सुविधा कहूँगा, यह होगी कि आप अपना समय समुद्र-तट के मेरे निजी इलाक़े में नहाने वाले वस्त्र पहन कर बिताएँगे। आप मेरे अतिथियों के बीच टहलेंगे, धूप-सेवन करेंगे, समुद्र में तैरेंगे और तट पर ही शराब पिएँगे। क्या आपको यह प्रस्ताव पसंद है?”

“आप समझ रहे हैं न, आपके ऐसा करने से मेरे होटल के सभी अतिथि श्री सुतीने द्वारा आपकी पीठ पर बनाई गई शानदार पेंटिंग को ठीक से देख सकेंगे। आप मशहूर हो जाएँगे और लोग कहेंगे,” देखो, वहाँ वह शरूस् है जिसकी पीठ पर दस मिलियन फ़्रैंक की पेंटिंग बनी है। “क्या आपको यह विचार पसंद है, श्रीमन ? क्या आपको यह बात अच्छी लगी?”

ट्रिओली ने दस्ताने पहने उस लम्बे व्यक्ति को देखा। फिर उसने धीरे से कहा, “क्या आप वाक़ई मुझे यह प्रस्ताव दे रहे हैं ?”

“हाँ, मैं आपको यह प्रस्ताव दे रहा हूँ।”

“रुकेए,” व्यापारी ने हस्तक्षेप किया। “बुजुर्गवार, देखिए। हमारी समस्या का समाधान यह है। मैं यह पेंटिंग ख़रीद लूँगा। फिर मैं एक शल्य-चिकित्सक की सेवा लूँगा जो आपकी पीठ से आपकी खाल उतार लेगा। तब आप आराम से जहाँ चाहें, वहाँ जा सकेंगे और आपको जो अपार धन-राशि मैं दूँगा, आप उसका उपयोग कर सकेंगे। “तो क्या मेरी पीठ पर कोई खाल नहीं होगी?”

“नहीं, नहीं। कृपया मुझे ग़लत न समझें। यह शल्य-चिकित्सक आपके पीठ की पुरानी खाल हटा कर वहाँ नई खाल प्रत्यारोपित कर देगा। यह बेहद आसान है।”

“क्या वह ऐसा कर सकता है ?”

“यह कोई मुश्किल काम नहीं है।”

“असम्भव,” दस्ताने पहने हुए आदमी ने कहा। “त्वचा-प्रत्यारोपण के इतने बड़े प्रयोग के लिए ये बहुत बड़े हो चुके हैं। इससे इनकी मौत भी हो सकती है। मेरे मित्र, इस प्रयोग से आपकी मृत्यु हो जाएगी।”

“क्या इससे मेरी मृत्यु हो जाएगी ?”

“ज़ाहिर है। आप यह शल्य-चिकित्सा नहीं झेल पाएँगे। केवल पेंटिंग ही बच पाएगी।”

“हे ईश्वर !” ट्रिओली चिल्लाया।

भयभीत हो कर उसने वहाँ मौजूद दर्शकों के चेहरे देखे। व्याप्त चुप्पी के बीच भीड़ में पीछे खड़े एक और व्यक्ति की आवाज़ सुनाई दी, “यदि कोई इस बुजुर्ग को ढेर सारी रक़म दे तो कौन जाने, यह बूढ़ा यही आत्म-हत्या करने के लिए तैयार हो जाए।”

कुछ लोग यह सुनकर हँसने लगे। व्यापारी बेचैनी से क़ालीन पर अपने पैर रगड़ने लगा।

“आइए,” लम्बा आदमी अपनी चौड़ी श्वेत मुस्कान बिखेरते हुए बोला, “आप और मैं चल कर बढ़िया भोजन करते हैं। खाना खाते हुए हम इस विषय पर और चर्चा करेंगे। कैसी रही ? आप को भूख लगी है न ?”

ट्रिओली अप्रसन्नता से उसे देखता रहा। उसे उस व्यक्ति की लम्बी, लचीली गर्दन पसंद नहीं आई। वह जब बोलता था तो वह अपनी गर्दन किसी साँप की तरह आगे की तरफ़ उठा लेता था।

“भुनी हुई बत्तर और लाल शराब,” वह आदमी कह रहा था। “साथ ही कोई हल्की मिठाई।” ट्रिओली की निगाहें छत की ओर चली गई और उसके मुँह में पानी आ गया।

“आप अपनी बत्तर को कैसे खाना पसंद करते हैं ?” वह आदमी कहता रहा। “क्या आप उसे बाहर से भूरी भुनी हुई और कुरकुरी पसंद करते हैं या वह ...”

“मैं आप के साथ चल रहा हूँ,” ट्रिओली ने जल्दी से कहा। वह अपनी क़मीज़ पहले ही उठा चुका था और अब उसे पहन रहा था। “रुकेए श्रीमन, मैं आ रहा हूँ।” और एक मिनट के भीतर वह अपने नए संरक्षक के साथ उस चित्र-दीर्घा से बाहर निकल कर ग़ायब हो गया।

कुछ हफ़्तों के बाद सुतीने द्वारा बनाई गई एक पेंटिंग ब्यूरोस एयरसे में बिक्री के लिए आई। उस पेंटिंग में एक युवती का सिर बना हुआ था और वह बड़ी असाधारण-सी पेंटिंग थी। उसका चौखटा बेहद सुंदर था और उस पर ढेर सारा रोगन किया गया था। इसी वजह से और इस वजह से भी कि कैनेस में ब्रिस्टल नाम का कोई होटल नहीं है, उस बूढ़े आदमी के स्वास्थ्य को लेकर आप चिंतित होते हैं और उसकी सलामती के लिए आप प्रार्थना करते हैं। साथ ही आप यह पुरज़ोर उम्मीद करते हैं कि वह बूढ़ा आदमी जहाँ कहीं भी होगा, एक मोटी किंतु आकर्षक युवती उसके नख-प्रसाधन के लिए मौजूद होगी और एक सैविका हर रोज़ सुबह के समय बिस्तर पर ही उसका नाश्ता लेकर आती होगी।

संपर्क : A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,  
इंदिरापुरम, गाज़ियाबाद-201014 (उ.प्र.) मो : 8512070086

## खरपतवार: पितृसत्तात्मक समाज की खोखली अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाती कहानियाँ

-डॉ. वन्दना गुप्ता

नब्बे के दशक से निरन्तर साहित्य सृजन कर्म में सक्रिय कवि, आलोचक, कथाकार पूनम सिंह जी ने हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेखनी चलाई। हिन्दी साहित्य को अनमोल कृतियाँ देकर समृद्ध किया, इतना ही नहीं लेखिका ने लेखन के माध्यम से नई पीढ़ी के सामने सृजनात्मकता के कई आयाम खोले। वे एक सच्चे साधक की भाँति साहित्य साधना में रत रचना के स्तरीय स्वरूप गढ़ने में निरन्तर संघर्षरत हैं। बड़े सधेपन, कुशलता, परिपक्वता, प्रौढ़ता और कलात्मकता के साथ वे रचनाओं के ताने-बाने को ऐसे बुनती हैं कि उनकी रचनाएं समय से सार्थक संवाद करती हैं

कथाकार पूनम जी ने अपनी नवीनतम कृति 'खरपतवार' (कहानी संग्रह) की कहानियाँ, पात्रों की मनः स्थिति, पात्रों से जुड़ी घटनाओं के संदर्भों को बड़े मनोयोग से गढ़ा है। यदि लेखन के सरोकारों और संवेदनाओं में गहरे उतर कर उनकी कहानियों के मूल सत्व पर प्रकाश डाला जाए तो हम पाते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के दुर्भेद गढ़ को ढहाती उनकी कहानियों की तमाम स्त्री पात्र, संस्कारों, मर्यादाओं की दुहाई के चक्रव्यूह से निकल दकियानूसी जकड़न की कैद से मुक्त होना चाहती हैं। वे अपना विरोध प्रतिरोध के नये स्वर, नयी भाषा में दर्ज करती हैं। और स्वनिर्मित उसूलों पर बनाए गए रास्तों, अपने विकास, अपने अस्तित्व के नये संदर्भों को खोजती निकल पड़ती हैं दहलीज़ के बाहर, अपने भविष्य को गढ़ने खातिर...

इतना ही नहीं ये स्त्रियाँ वर्तमान समाज में समय के साथ खुद को बदलने की नयी उद्भावनाओं के समीकरण सूत्र भी खोजती नजर आती हैं। इस संग्रह की शीर्षक कहानी 'खरपतवार' की नायिकाएं पितृसत्तात्मक समाज की खोखली, दकियानूसी कई

अवधारणाओं पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। उन दायरों की कैद से मुक्त दहलीज़ें लांघकर अपने वजूद को अपनी महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप ढालने की कोशिश करती हैं।

कहानी की दो स्वतंत्र चेता लड़कियाँ दिव्या और माही अपने परम्परागत परिवार की बंदिशों की सांकल खोल अपने वजूद की तलाश में निकल पड़ती हैं। बिहार और यूपी के छोटे कस्बों से बड़े शहर में थियेटर की दुनिया में अपनी जमीन तलाशने। तलाश पूरी होने पर इस बात से आशंकित होती हैं कि अगर उन्हें कामयाबी न मिली तो लौटेंगी कहां?

एक दूसरे की हौसला अफजाई करती ये लड़कियाँ आपस में अपनी आपबीती साझा करती हैं। भागने के पीछे के घटनाक्रम, पितृसत्तात्मक समाज की क्रूरताओं का वर्णन, थियेटर की दुनिया में उनका संघर्ष और उस दुनिया में होने वाली साजिशों का चित्रण कथाकार ने बड़ी बारीकी से किया है। कथाकार का मानना है कि बाजार की दुनिया भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक प्रतिरूप है। बाजार ने स्त्री के अंग प्रत्यंग पर अपना नाम लिख दिया है। वे कहती हैं 'कि ग्लैमर की दुनिया में जाकर कोई भी स्त्री अपने मुकाम को नहीं पा सकती है।'

यह अहसास जब दिव्या को होता है तो वह माही से कहती है- 'थियेटर की दुनिया में जीवन एक अबूझ पहेली की तरह कई-कई दृश्यों में घटित होता रहता है। इस जीवन को रचने, गढ़ने, संवारने और बचाने में हम कितने हिस्सों में काटे, बांटे, तोड़े और जोड़ें जाते हैं, इसे कभी तुमने महसूस है माही?'

यही कारण है कि दिव्या थियेटर के भीतर की क्रूर हकीकत से वाकिफ होकर हाशिए के उस समाज की ओर उन्मुख हो जाती है जहां उसे लगता है कि

वह वहां के लोगों के बीच रहकर उनके जीवन में रोशनी भर सकती है। शायद वही उसे उसकी पहचान मिलेगी और अस्मिता की खोज भी वहीं पूरी होगी वह भुवन वनमाली को मेल में लिखती है -

‘ओ भुवन! अपनी लघुता में इतना परिपूर्ण, इतना विराट, इतने निराभिमान कैसे हो तुम? आज लहरों के इन थपेड़ों से जुझती मैं तुम्हें और सिर्फ तुम्हें याद कर रही हूँ।’

कथाकार पूनम सिंह स्त्री को केन्द्र में रखकर आस-पास की बिखरी दुनिया को जानते हुए, उनकी संवेदना का हिस्सा बन, स्त्री के सूक्ष्म अन्तर्द्वंद्व का उद्घाटन कर पितृसत्तात्मक परम्परागत व्यवस्था के प्रतिरोध को दर्शाती हैं। इनके द्वारा सृजित अनेक स्त्री पात्र विरोधी परिस्थितियों से टकराने का अदम्य साहस रखती हैं।

वे समाज में घटित यथार्थ के साथ समाज के बदलते परिदृश्य में लैंगिक समानता को लेकर समाज में समाजशास्त्रीय परिवर्तन पर जोर देती हैं। ऐसे ही मुद्दे को उठाने के लिए वे विक्रमचंद मानविकी शोध संस्थान की पी.जी की टॉपर छात्रा मीनल के बेलाग, आसाधारण चरित्र को गढ़ती हैं। जो कहानी ‘धुआं है न शोला’ में लैंगिक समानता, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता जैसे मुद्दों को उठाकर संस्थान से संबंधित अधिकारियों को सकते में डाल देती है। जब उसे गर्ल्स हॉस्टल छोड़ने का नोटिस दिया जाता है तो वह ब्योंज हॉस्टल में रहने की जनतांत्रिक मांग रखती है। उसकी इस मांग से विश्वविद्यालय का सारा प्रशासन सकते में आ जाता है। वह अपने आवेदन में लिखती हैं -

“हमारे विश्वविद्यालय में” खाप पंचायत’ की एक नई अवधारणा जन्म ले रही है। स्त्री देह को संस्कृति बताकर हमारे लिए कई नीतियां, पाबंदियां सुनिश्चित की जा रही हैं। शुचितावादी इन नीतियों - पाबन्दियों के विरुद्ध हम अपने बोलने की, अपने रहने की जगह पैदा करना चाहती हैं। हमें लड़की की तरह रहने की तालीम नहीं चाहिए। हमें स्वतंत्र परिवेश में विकसित होने का समान अवसर चाहिए।

हमारा जीवन, हमारी चाहत, हमारे सपने अगर हमारे लिए नहीं तो किसी के लिए क्यों हो? हम परजीवी वृक्ष नहीं, आत्मजीवी वृक्ष बनना चाहती हैं।”

कथाकार ने मीनल जैसी सशक्त युवती में नये तेवर का नया रंग भर कर यह दर्शाने की कोशिश की है कि स्त्रियों को मर्यादाओं की दुहाई देकर जंग लगी जंजीरों में जकड़ना अब संभव नहीं है। कहानी में मीनल द्वारा उठाए गए जेंडर इक्युलिटी के सवाल वास्तव में हमारी पूरी समाज व्यवस्था को झकझोरते हैं और विश्वविद्यालय परिवेश में होने वाली हिंसा, दंगवाई, मुद्दों के पीछे की साजिशों का पर्दाफाश करते हैं।

ऐसे ही विषयों को लेकर रची गई कहानी ‘कबीर’ के पात्र हेमा और कबीर जातिगत बन्धनों की परवाह किए बगैर शादी के बन्धन में बंधते हैं, तो उन पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है। एक सच्चा प्रेमी, खूबसूरत इंसान हिन्दू लड़की से शादी करने कारण धार्मिक कट्टरता का शिकार हो, भीड़ तंत्र के हाथों क्षत-विक्षत हो जाता है।

‘कबीर’ कहानी में कथाकार ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि मानवीयता धार्मिक आस्था अनास्था, कट्टरता से बड़ी चीज है। यही संवेदना लेखिका के अन्तःस्थ को संवेदित करती है। यही कारण है कि वे ‘कबीर’ जैसी कहानी में इसी मानवीय तत्व को विस्तार देती नजर आती हैं।

पूनम जी अपने पात्रों की मनःस्थिति व अवसाद की प्रक्रिया से स्वयं गुजरकर उन्हें भाषा के कसाव के साथ शिल्प में ढालती हैं। पात्रों के अन्तर्मन में चल रहे द्वन्द्व, भावों, घटनाओं को बड़ी तारतम्यता के साथ प्रस्तुत करती हैं। इनकी कहानियां व्यापक उम्मीदों का संचरण कर आज की युवतियों में नई चेतना जागृत कर रही हैं। कहानी की इन युवतियों में परिस्थितियों से टकराने का हौसला भी है, जोखिम उठाने का दुस्साहस भी है।

ऐसी ही कहानी ‘डायरी के बेतरतीब पन्ने’ की पात्रा सुप्रिया जब बड़े घर के वैभव की आड़ में बुने गए आतंकी जालों की हकीकत से वाकिफ होती है तो वह जान पाती है कि उसका पति पुंसत्वहीन है

इसलिए उसकी सास उसे धोखे में रखकर रहस्यमय तरीके से पुत्र की पैदाइश का दबाव डाल रही है। वे समाज में अपना दबदबा बनाए रखने के लिए इस हकीकत को बहू से छिपाए रखने की साज़िशें रचती है। कहानी की नायिका इस वस्तुस्थिति से वाफिक होते ही अपने पति से कहती हैं कि “तुम्हारी आड़ लेकर तुम्हारी मां मेरी देह पर जिस वंश बेल को लहराना चाहती है, उसे मैं हरगिज नहीं होने दूंगी।”

वह ससुराल की दहलीज लांघ कर खुली सड़क पर निकल पड़ती है और अपने पुराने प्रेमी के पास चली जाती है। कहानी की नायिका सुरभि अपने आस-पास बनाए गए दबावों और षड़यंत्रों को न केवल अनावृत करती है अपितु निडरता के साथ ससुराल की दहलीज के पार जाने का दुस्साहस भी करती है।

वर्तमान समय की संकटपूर्ण चुनौतियां बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री के वजूद को एक उत्पाद की वस्तु बना दिया है। इस संग्रह की अत्यंत प्रभावशाली कहानी ‘मोनालिसा’ में कथाकार ने सीधी-साधी नायिका मुनिया के चरित्र को गढ़ा है जो शहरी वातावरण से एकदम अनभिज्ञ है। वह शहर में आकर अपनी मधुर मुस्कान, रूप, सौन्दर्य, अपनी पड़ोसन रूपा के कहने पर एक चित्रालय को बेच देती। यह सोच कर कि वह इन पैसों से पति को कर्ज मुक्त कर सकेगी। एक कलाकार उसके अनोखे सौन्दर्य में रंग भरता है। जब मुनिया का पति उसके चित्र को देखता है तो उसके पुष्पत्ववादी अहंकार को चोट लगती है।

मुनिया के सौन्दर्य पर एकाधिकार रखने वाला उसका पति उसके प्रेम को नहीं समझ पाता है। भोली - भाली मुनिया को आश्चर्य तब होता है जब उसके गोरे गुलाबी गालों पर बटेशर की पांचों उंगलियों की धारियां बन जाती हैं। यही वह स्थल है जहां वह प्रेम और पुष्पवादी अहंकार के दो अलग-अलग स्वरूप देखती है। लेखिका ने इस प्रस्थान बिंदु पर जाकर कहानी को मोड़ा नहीं है वरन उसे वहीं छोड़ दिया है। यही इस कहानी का वैशिष्ट्य है कि आगे एक नई कहानी जन्म लेती नजर आ रही है।

‘छ पंजे तीस’ कहानी में स्वयं के भोगे हुए यथार्थ ने लेखिका को भीतर तक इतना झकझोर दिया कि अवचेतन में प्रसूत सत्य का प्रवाह अनायास ही ऐसा बहा कि एक सशक्त रचना उभर कर सामने आई। पीड़ा के भावात्मक क्षणों में जीवन के न जाने कितने सत्य पृष्ठ खुलते नजर आए।

पूनम जी की कहानियों की यह विशेषता है कि वर्तमान समय की विसंगतियों और पीढ़ियों के अन्तर्द्व को, विचारों की टकराहट में घटनाओं को इतनी बारीकी से रखती हैं कि घटनाओं में घटित सत्य प्रासंगिक लगने लगता है।

‘चंपारण वाली गाढ़ी चाय’ और ‘बोलिए न, पापा कुछ तो बोलिए’ दोनों कहानियाँ शब्दों के गहन आलोक में सघन और घनत्व पूर्ण भाषा में ज़िन्दगी की बहुत प्रामाणिक और सच्ची तस्वीर पेश करती हैं।

‘बोलिए न पापा कुछ तो बोलिए’ कहानी में कथाकार ने सादियों पहले पितृसत्तात्मक समाज के ठेकेदारों द्वारा गढ़े गए बंदिशों के प्रतिमानों को केंद्र में रखकर कहानी की नायिका की वस्तुस्थिति को दर्शाया है। आज भी एक सक्षम स्त्री को जीवन में कई जिल्लतों का सामना करना पड़ता है। पिता की मृत्यु के बाद अपनी मां की स्वतंत्रता की पैरोकार बेटी को अपने पति, बुआ व भाई के दकियानूसी विचारों के दंश को झेलना पड़ता है। पति व परिवार के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली उसकी मां, पिता की मृत्यु के बाद अपनी कलात्मक प्रतिभा को निखारने के लिए पति के मित्र का साथ इसलिए चाहती कि उसके पति ने अन्तिम समय में अपने मित्र सोम से वचन लिया था कि वह उसकी कला की प्रतिभा को निखारने में उसका साथ दे।

‘सोम तुम ही मेरी सरला के लिए भरोसे का संबल बन सकते हो। मुझे वचन दो-तुम उसकी कला को मरने नहीं दोगे।’

पिता की मृत्यु के बाद एक बेटी का द्वंद्व और पीड़ा अपनी माँ के लिए उस समय और भी सघन हो जाती है जब वह अपने भाई का माँ के प्रति उपेक्षित व्यवहार देखती है वह उनके बीच संवादहीनता को

नहीं पाट पाती है। तिरस्कार और उपेक्षाओं की पीड़ा को हर समय झेलने वाली माँ का दर्द जब उसके लिए असहनीय हो जाता है, तब अपने मृतक पिता से पूछती हैं कि “सोम अंकल और मां के रिश्ते में जो संयम, धैर्य और पारदर्शिता है, उसे आपकी तरह कोई और क्यों नहीं देख पाता है? क्यों नहीं सोच पाता कि जिस रिश्ते में मन निर्भय हो और मस्तिष्क ऊँचा, वह रिश्ता ईश्वरीय होता है, उसे कलुषित कैसे कहा जा सकता है पापा?”

इस कहानी का वैशिष्ट्य यह है कि प्रमुख पात्रा की पीड़ा, संघर्ष, मौन का दर्द उसकी बेटी की संवेदनाओं में झरता है शब्द बनकर पत्रों पर वह बेजुबान ही रहती है।

‘चंपारण वाली गाढ़ी चाय’ कहानी में लेखिका ने दो बुजुर्ग पात्र शैलजा और सुदर्शन के माध्यम से वर्तमान समय में अपने बच्चों के साथ रह रहे वृद्धों की मनःस्थिति का चित्रण किया है। जो एक लम्बे अन्तराल के बाद पार्क में मिलते हैं। इन पात्रों के माध्यम से रिश्तों के संदर्भ में वर्तमान पीढ़ी के युवाओं की सोच, जीवन जीने के तरीकों, उनके संघर्षों की पड़ताल की गई है। इतना ही नहीं कहानी में वर्तमान जीवन की विसंगतियों के बीच बनते-बिगड़ते-रिश्तों, सच्चाइयों को भी उजागर किया गया है जो आज के माता-पिता के लिए गहरी चिंता का विषय है। पर वे बच्चों के जीवन में दखल न देकर उनके साथ एडजस्टमेंट कर अपने-अपने सच को छिपाने का प्रयास करते हैं।

संवादहीनता के इस दौर में जब संवेदनाओं की तरलता सूखती चली जा रही है, मानवीय मूल्यों का

अवमूल्यन निरन्तर हो रहा है ऐसे कठिन समय में कोरोना काल में लिखी गई कहानी ‘गर्दिश का सितारा’ तत्कालीन स्थितियों का खाका खींच, हिन्दू-मुस्लिम के बीच फैलते जहर के मध्य, मानवीयता की एक तस्वीर पेश करती है।

इस कहानी संग्रह में आई जितनी भी स्त्री पात्र हैं, वे समाज में पितृसत्तात्मक चेहरों से नकाब हटाती प्रतीत होती हैं और उनके दबावों और षड़यंत्रों को अनावृत करती हैं। इसके साथ वे इन जटिलताओं के बीच अपनी जिजीविषा, आकांक्षाओं, इच्छाओं के साथ जीती हुई दहलीज के पार जाने का दुस्साहस भी करती हैं। कथाकार इस तथ्य से भलीभांति वाकिफ है कि नये समाज के निर्माण व समाज की प्रगतिशीलता के लिए कुछ मृतपाय परम्पराओं की टूट-फूट जरूरी है।

पूनमजी बदलते समाज में स्त्रियों के नये स्वरूप को गढ़कर समाज में स्त्रियों के बदलाव की संभावनाएं तय करती हैं। पितृसत्तात्मक बंधनों को तोड़ते हुए, विकास के रास्ते पर बढ़ना, अपने मानक स्वयं तय करना, यही लक्ष्य है कथाकार के द्वारा रचे गए स्त्री पात्रों का। वे स्त्री के स्वरूप की इस नई स्थापना में सफल व सक्षम हुई हैं।

भाषा की दृष्टि से ‘खरपतवार’ संग्रह की कहानियां अत्यंत प्रौढ़ हैं, व भाषा गहरी संवेदना और जटिल से जटिल परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता रखती हैं। पात्रों के बीच संवादों की सांद्रता, भाषा का प्रभाव पाठक को बांधे रखता है। कहानियों की भाषा में गत्यात्मकता के साथ भावों की सघनता भी है। शिल्प और कथ्य का नयापन कहानियों की विशिष्टता है।

**पुस्तक का नाम :** खरपतवार

**लेखक :** पूनम सिंह

**प्रकाशक :** किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

**मूल्य :** 325 /-

**संपर्क :** डॉ वन्दना गुप्ता

पता - ड्रीम वैली, ब्लॉक 2,

पांचवाँ तल, फ्लैट सी, दागापुर

हिलकार्ट रोड, सिलीगुड़ी, जिला दार्जिलिंग (प.बं.)

पिन कोड - 734003

मोबाइल नंबर - 8250402961

## एक आदिम चरवाहा गाँव की दास्तान

-शशि काण्डपाल

कभी-कभी आप किसी किताब, विचार को इतना आत्मसात कर लेते हैं कि वो आपको अपना देखा, भुगता सच लगता है। उस पर दो शब्द भी लिखने की हिमाकत करने से पहले अपनी योग्यता पर शक होता है। एक छोटी सी किताब जो कि सिर्फ एक गाँव को केन्द्रित करके लिखी गई है पूरे कुमाऊँ समाज का आईना बन जाती है। आप चाहे तो उस किताब को उस अंचल को समझने के लिये एक सन्दर्भ की तरह प्रयोग कर सकते हैं। नयी पीढ़ी खासकर अपना शाब्दिक, सामाजिक ज्ञान बढ़ा सकती है।

बात करते हैं 'एक आदिम चरवाहा गाँव की दास्तान' की जिस के लेखक से मेरा परिचय पुराना है, एक ही अंचल के होने की वजह से कई विषयवस्तु के प्रति समान विचार होना स्वाभाविक सा है लेकिन इतना पारदर्शी होना और उन यादों के साथ अपनी जड़ों को हूबहू लिख देना एक साहसिक व्यक्ति की पहचान है। न जाने कितने लोगों को अपने से जुड़े तथ्यों को छुपाते और उन पर चर्चा न करते देखा है लेकिन एक पूरे कालखंड को विलुप्त करना कहाँ की समझदारी है?

लेखक मध्यप्रदेश के प्रशासनिक पद पर होने की वजह से इतने व्यस्ततम व्यक्तियों में से आते हैं कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानना एक तरह से नामुमकिन ही था। ये निश्चित था कि आईपीएस की हैसियत क्या होती है और आम जन तथा ब्यूरोक्रेट्स के मध्य कितना फासला होता है। सोच, ज्ञान और पहुँच में कितना अंतर होता

है। लेकिन डॉ. पाठक हमेशा अपनी प्रशासनिक छवि के विपरीत बेहद सरल नजर आते रहे। बातों में पहाड़ी-सी सरलता और अपने काम में पहाड़ सी दृढ़ता का परिचय देते रहे। डॉ. पाठक विदेश नीति के जानकार, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र के ज्ञाता और एक स्पष्ट वक्ता के रूप में अपनी पहचान रखते हैं। इसका परिचय हम सभी को उनके सारगर्भित, गंभीर लेखों से मिलता रहता है जो विभिन्न अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं और वो अपने दार्शनिक/वर्तमान परिपेक्ष्य में सटीक दृष्टिकोण से हम सभी मित्रों को हतप्रभ करते आये हैं।

हतप्रभ तो उन्होंने रिटायर्मेंट के बाद इस किताब को लिखकर किया। उन्होंने अपने लेखन और किताब को सिर्फ दशौली/भादीणा जहाँ उनका बचपन गुजरा पर केन्द्रित रखा। किताब जब हाथ में आई तो उनके समर्पण के शब्दों की बानगी अद्भुत थी, प्रकृति की इतनी खूबसूरत व्याख्या थी कि लगा ये कहीं एक पद्यात्मक वर्णन तो नहीं? अपने गाँव, उसके परिवेश के परिचय के बाद लेखक ने उसके आसपास होने वाली घटनाएँ, रहवासियों की कठिनाइयाँ, परिस्थितियाँ और उस समय की सामाजिक व्यवस्था का बड़ा रोचक वर्णन किया है। नयी पीढ़ी जिन सन्दर्भों को जानती तक न होगी उनके लिये एक दस्तावेज बनकर यह किताब आई है।

शुरूआत उनके अपने जन्म स्थान भादीणा के वर्णन से होती है। उस समय के अनुसार जैसी भी

परिस्थियां किसी गाँव की हो सकती थीं उनमें अपने बचपन, पढ़ाई, अभाव, विकास की कमी तथा कठिन संघर्षों का जीवंत वर्णन किया है। कुमाऊँ का इतिहास, भूगोल, जाति व्यवस्थाओं, परम्पराओं का भी परिचय दिया है। लेखक ने अपने प्रारंभिक दिनों का परिचय मौत के लड्डा पुल जैसे सन्दर्भ के साथ दिया है। कुछ ऐसी प्रथाएं जिन पर शायद आज की पीढ़ी विश्वास न कर पाए मसलन आग की उपलब्धता कितनी कठिन थी। आज लाइटर, माचिस है लेकिन तब शौका नाम के घुमंतू व्यापारी अपने पास चकमक पत्थर और एक लोहे का टुकड़ा रखते थे जिसे ठीनका कहते थे, सूखी घास 'बकौल' से आग जलाना ही आग की उपलब्धता थी, गांवों में आग सेती जाती थी मतलब घर-घर में आग तापने के लिये रखे रौनो में राख के नीचे दबाकर, ढककर रखी जाती थी और जब जरूरत होती तो उसे छिलुक की सहायता से जला लिया जाता। जब एक बार पूरे गाँव में आग बुझ गई तो गाँव की दो स्त्रियाँ करीब बीस किलोमीटर दूर जाकर आग लाई तब कहीं पूरे गाँव ने खाना पकाया, आज कोई विश्वास करेगा? यह सन 1932 की बात है।

वस्तु विनिमय चलन में था, काम के बदले अनाज और एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु मसलन नमक के लिये अनाज का अदल-बदल किया जाता था। नमक भी काफी मुश्किल से मिलने वाली चीज हुआ करती थी जिसे आन्वाल और भोटिये लेकर आया करते थे। ढाकर यानि बकरियों के झुंड अपनी पीठ पर सामान गाँव-गाँव बेचने आते थे और व्यापार तिब्बत की तरफ से हुआ करता था और उस समय का तौल सिस्टम तथा मुद्रा के

हिसाब के लिये एक अद्भुत प्रक्रिया थी जिसके लिये वो किताब पढ़नी होगी।

गर्मियों के बाद बरसात होने की कामना हर इन्सान करता है लेकिन पहाड़ पर बारिश अलग ही कहर ढाती थी, खिसके रास्ते/पहाड़, बह गए पुल और बाधित आवाजाही लोगों की मुसीबत बहुत बढ़ा देती थी। सड़कों का टूटना आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति में बाधक बनता था और कभी-कभी अतिवृष्टि में गाँव ही जलप्लावित हो जाया करते थे।

एक कृषि प्रथा ईजर या झूमिंग पद्धति शायद बहुत कम लोगों को पता होगी लेकिन उन्होंने इसका वर्णन और पर्यावरण पर इसका विपरीत असर पर बात की है। इस खेती में कितने ही गांवों के जंगल उजड़ गए और प्राकृतिक असंतुलन का संज्ञान लेते हुए सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा और वनों को बचाया गया। लोगों के रोजगार भी वनों पर ही निर्भर थे सो रोजी-रोटी का भी संधान होना था। गाँववासी अपनी जरूरतों के लिए आत्मनिर्भर थे यहाँ तक कि गन्ने की भी खेती होती थी। ग्रामवासी अनाज, बीज, एक दूसरे के काम, जरूरत अनुसार अदल बदल कर आपस में लिया दिया करते थे। पैचा लेना शर्म की बात न थी, अगली फसल होते ही चुकाने का रिवाज था और न चुका सके तो काम में मदद कर अहसान उतर जाता था लेकिन आज हम ये सब सोच भी नहीं सकते, आज स्वार्थ जीवन, दूसरे के कष्ट, उसके सम्मान से बड़े हो गए हैं और दिल बहुत छोटे। गाँव में कपड़े किस चीज से धोये जाते थे, जीवनोपयोगी चीजें किस कच्चे माल से बनाई जाती थी, सर धोने और नहाने का क्या जुगाड़ था वो भी इस किताब में पढ़ने लायक है, हाँ



कामगार, शिल्पकार, लोहार, तेली, हलिया, टम्टा सहायक थे और उनमें से कोई भूखा न सोये, ये पूरे गाँव को ध्यान रहता था। कुल मिलाकर मानवतावादी दृष्टिकोण था।

पलायन न के बराबर था तो ग्रामवासी अपने गाँव खेती को समर्पित थे। गाँव के देवी-देवता भी खुश और गाँव की व्यवस्था हेतु खावक ढुंग/धत्ती ढुंग, ध्यान केंद्र के रूप में उसकी उपयोगिता और महत्ता का सुन्दर वर्णन है। लेखक इस किताब के साथ अपने बचपन में चले जाते हैं जहाँ से आज तक का सफ़र बड़ा अविस्मरणीय, आश्चर्यजनक लगता है। अपने गाँव से दिखने वाली चोटियों को लेखक प्रातः स्वर्ण मुकुट और संध्या समय रजत मुकुट की उपमा देते हैं तो उसके नैसर्गिक सौन्दर्य की कल्पना की जा सकती है।

लेखक ने आज प्रचलित जातियों, उनके प्रादुर्भाव, उनके इतिहास और उपयोगिता के साथ अन्य जातियों के साथ उनके व्यवहार और स्वार्थ पर भी कटाक्ष किया है जिसे पढ़ा जाना बहुत जरूरी है। मज़े की बात ये है कि पहाड़ में रहना और पहाड़ को अपने अन्दर जीना ये दो अलग बातें हैं। इस किताब को उत्तराखंड में पाए जाने वाले समस्त पक्षी, पेड़ों के नाम, जानवरों का परिचय, लुप्तप्राय अनाज, फल तथा वनस्पति के नामों के लिए भी जाना जायेगा, जो भी पहाड़ का परिचय चाहेगा उसे इस किताब को देखना ही होगा।

उस वक्रत के त्यौहार जो कि आज भी हैं लेकिन उनको मनाने वाले अब उच्च शिक्षित होकर पहाड़ों को छोड़ चुके हैं लेकिन तब त्यौहार कितनी खूबसूरती से मनाये जाते थे, होली का कितना महत्त्व और समाज को जोड़ने का दायित्व था,

बेटियों को मायके से भेजी जाने वाली भेंट भिठौली, कृषि औजार, नंदा देवी का महात्म्य, घर बनाने की प्रक्रिया और आपसी सहयोग, श्रमदान की उपयोगिता, पेयजल की समस्या और उस समय की साफ़ सफ़ाई की कमी का उल्लेख किया है। स्थानीय पकवान, देवी-देवता, गाँव में रात को उजाले की व्यवस्था के साथ-साथ पारंपरिक वेशभूषा, जेवर के साथ स्त्रियों की स्थिति, उनका पहाड़/परिवार को योगदान और उनकी पीड़ाओं का बहुत संवेदनशील तरीके से विश्लेषण किया है। हालाँकि पहाड़ की जिंदगी किसी की आसान नहीं होती लेकिन स्त्रियाँ, जो कि पहाड़ की रीढ़ हैं, को ज्यादा कठिनाइयाँ सहनी होती हैं।

ऋतुओं के अनुसार प्रकृति और बदलता जीवन बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। दंड के तरीके और 'क्वीड' जैसी मनोरंजक बात का भी उल्लेख है। रिश्ते जिन्हें हम अब प्रचलित हिंदी भाषा में पुकारने लगे हैं को जानना रोचक है। अपने परिवार के परिचय के साथ, गाँव का इतिहास, एक अनसुनी दास्तान को शब्द देना सा है। बड़ा दिल दुखता है जब लगता है इतना सुन्दर, खिलखिलाता गाँव अब उजाड़ है हालाँकि वहाँ से निकले बच्चों ने अपने योगदान से पूरे भारत को अपनी सेवाएँ दीं और उच्च पदों पर गए।

किताब के आखिरी हिस्से में कुछ संस्मरणों का संकलन है जो कि इस किताब को और भी समृद्ध करते हैं। प्रवासी इन संस्मरणों को पढ़कर खुद पर गर्व कर सकते हैं क्योंकि संस्मरण हम सबकी थाती, रिश्ते और जीवन जीने की कला को प्रस्तुत करते हैं।

‘आमा के हिस्से का पुरुषार्थ’ में चार भाग हैं जिसमें आमा का समस्त व्यक्तित्व, अपने घर-परिवार

समाज के लिए प्रेम, उनकी पीड़ा और बुद्धिमत्ता का अभूतपूर्व वर्णन है, सच में स्त्री हर परिवार की धुरी है। आमा के हिस्से का पुरुषार्थ में लेखक ने उस कालखंड की एक विधवा स्त्री की व्यथा को उकेरा है। आमा एक संघर्षरत नायिका है जिसके सर पर घर-गृहस्थी का पूरा बोझ है। आमा का दुःख उत्तराखंड की हर महिला का दुःख है। वह सभ्यता, संस्कृति की पुरोधा है। संघर्ष से पूरे परिवार को आगे निकाल तो लेती है लेकिन सुख चैन उसके भाग्य में नहीं, जब सब बदल जाता है तो वो दुनिया छोड़कर चली जाती है।

“मौत का लड्डा पुल” पढ़कर हम कितना भी कांपें लेकिन वो पुल उस गाँव के यातायात का साधन था, उनका रोजमर्रा के जीवन का हिस्सा था और आज जब पानी, बिजली, पुल, सड़क सब आ गया तो लोग नहीं हैं।

‘उजाड़ बाखई’ पलायन का दर्द बताती है तो ‘सिंगडूआ तू बता ध’ लेखक के बचपन की याद दिलाती है। सामाजिक व्यंग्य ‘ज्ञान का और उनकी बरसी’ बड़ा स्वाभाविक सा प्रश्न उठाता है

और ‘पलायन से दरकते लोक सभ्यता और संस्कृति’ चिंतित करता है।

किताबें बहुत सी लिखी गईं, लिखी जानी हैं लेकिन एक सम्पूर्ण पैकेज के साथ पूर्ण किताब बहुत कम आती है। मैंने इससे बहुत कुछ सीखा, जाना जबकि मैं अपनी संस्कृति/भाषा से अनजान नहीं हूँ फिर भी बहुत कुछ नया पाया। एक पैतृक गाँव केंद्र में होते हुए भी ये किताब पूरे समाज को पढ़ने का जरिया है। जो अपने पहाड़ को जानना चाहते हैं और जो पूरे पहाड़ को जानना चाहते हैं, वहां के पूरे फ़लेवर को महसूस करना चाहते हैं (क्योंकि इसकी भाषा को स्थानीय रंग के साथ लिखा गया है और आखिरी पन्नों में कुमाँउनी शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। सो जो इस भाषा से अनभिज्ञ हैं वो भी सहज तरीके से पढ़ने का आनंद ले सकेंगे।) उन्हें ये किताब अवश्य पढ़नी चाहिए।

लेखक को इतनी उपयोगी, रुचिकर किताब लिखने के लिये साधुवाद, शुभकामनाएं।

**लेखक** - डॉ. गिरिजा किशोर पाठक (सेवानिवृत्त आइपीएस)

**समीक्षक** : शशि काण्डपाल

**पुस्तक** - एक आदिम चरवाहा गाँव की दास्तान

**प्रकाशक** - सर्व भाषा ट्रस्ट

**पृष्ठ संख्या** - 173

**मूल्य** - 250/-

**मेल** - sbtpublication@gmail.com

**मो** - 8178695606

**संपर्क** - 14/1005, इन्दिरा नगर, लखनऊ, पिन: 226016 मो. 7860290146

## बेहद खूबसूरत है खूबसूरत मोड़

-मुकेश पोपली

यह ठीक है कि उर्दू भाषा के जनक लखनऊ की नजाकत वहाँ की संस्कृति में हमेशा से पाई जाती है। लखनवी अंदाज प्रायः फिल्मों में भी दिखाई दे जाता है जैसे आनंद बख्शी ने बॉबी के गाने में लिखा। प्राण साहब तो किसी भी फिल्म के संवादों में जब 'बरखुदार' बोलते हैं तो हम अपने आपको लखनऊ में ही बैठा पाते हैं। यह फिल्मों का जिक्र इसलिए कि 'खूबसूरत मोड़' नाम की पुस्तक, जिसे राम नगीना मौर्य ने लिखा है, उसमें उर्दू भाषा हिंदी, अंग्रेजी और अवधी भाषा के साथ इस तरह से गडमड हो गई है जैसे फिल्मों के संवादों में अनेक भाषाएं दृश्यों के अनुसार चलती रहती हैं। खूबसूरत मोड़ ऐसी ही भाषा से सजा कहानियों का वो गुलदस्ता है जिसकी खुशबू केवल लखनऊ में ही नहीं, बल्कि सरहद के पार भी अपनी महक फैलाने में सक्षम जान पड़ता है।

वैसे तो खूबसूरत शब्द ही उर्दू का है, लेकिन खामखाह, शोख, तलाक, मशगूल, मुतमईन, अफसाना, बाजदफे, बाजवक्त, बहरहाल, कवायद, कूवत, वाजिब, लब्बे-लुबाब, मुत्फर्रिक, तल्ख, जद्द-बद्द, अखबार, जाहिर, बेफिक्र, जैसे शब्दों के प्रयोग से कहानियों में चार चाँद लगे हैं। कुछ वाक्यों की खूबसूरती पढ़न्त-लिखन्त-गढ़न्त, लालिमा-हरीतिमा-नीलिमा, हरे लगे न फिटकरी, रंग चोखा ही चोखा, दोलनमय, आई टॉनिक, अंकुल्ल, डोरबेल, म्यूजिक सिस्टम, ट्रैफिक जाम, पार्टिसिपेशन, जैसे शब्दों ने खूबसूरती और भी बढ़ा दी है।

अगर किसी कहानी में उसके देश, काल पात्र और घटनानुसार जब हम ऐसे शब्दों को पढ़ते हैं तो वो खूबसूरती केवल हमारे देश के साहित्य को ऊँचा

नहीं उठाती, बल्कि पाठकों को देश की संस्कृति से भी परिचित कराती है। हिम्मत मर्दा मददे खुदा, याके-बाद-दीगरे, बने रहो लुल्ल वेतन पाओ फुल, जब जागो तभी सवेरा, यू आर रियली जीनियस फॉर योर काइण्ड इन्फोर्मेशन, नो वर्क नो रिस्क छोटे मुंह बड़ी बात हर आदमी में होते हैं दस बीस आदमी जिसको भी देखना कई बार देखना (निदा फ़ाजली), जैसे प्रचलित वाक्यों, मुहावरों और शायरियों से भरपूर 'खूबसूरत मोड़' की कहानियाँ हमें देश के साहित्य में होने वाली समृद्धि के बारे में भी जानकारी देती हैं।

'खूबसूरत मोड़' कहानी में रेवती का पात्र पाठकों को बहुत देर तक उलझाए रखता है। इस उलझन को लेखक अंत तक भी नहीं सुलझाता और कहानी समाप्त होने के बाद पाठक को एक बार फिर से स्वतंत्र कर दिया जाता है कि वो चाहे जिस तरह से रेवती को अपनी कल्पनाओं में ढाल सके। नायक यह सोचता है कि उसे रेवती के घर पर मिलकर अपनी किताबें देने की जिद नहीं करनी चाहिए थी, क्योंकि रेवती के अंदर की महिला उसे अलग नजर आने लगती है फिर भी वह आश्वस्त है कि उसे अब एक नहीं दो पाठक एक साथ मिल गए हैं। दरअसल यहाँ लेखक की प्रतिभा हमारे सामने आती है कि उसके साथ-साथ पाठक भी पसोपेश में रहता है कि आखिर रेवती चाहती क्या है। यहाँ पर निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि लेखक के मन में इस कहानी के विस्तार की योजना है। अब यह तो उनके लिखने पर ही पता चलेगा कि आखिर रेवती ने ऐसा क्यों किया?

‘गुरुमंत्र’ एक निहायत ही व्यंग्यात्मक भाव अपने भीतर समेटे है, लेकिन फिर भी लेखक पात्रों के साथ बातचीत में अपने पाठकों को भी शामिल कर लेता है और कहानी किसी दूसरे मोड़ पर मुड़ जाती है। कहानी गुरु की बातों के साथ समाप्त होने का अंदेशा पाठकों को होने लगता है, लेकिन फिर गुरु के मंत्र का असर क्या होता है, यह कैसे पता चलता? कहानी के साथ पूरा न्याय किया गया है।

‘हस्बेमामूल’ बेहद खूबसूरत कहानी इसलिए कही जानी चाहिए कि इसे ‘भारतनामा’ से जोड़ दिया गया है। अब भारत में यात्राएँ करने वाले मुसाफिर किस तरह से होते हैं, इस बात को वो लोग अच्छी तरह से जानते हैं जो सफर में अधिक रहते हैं। फिर भी हम देखते हैं कि प्रत्येक सफर यादगार बन जाता है और कभी-कभी तो ता-जिंदगी हमारे जेहन में बना रहता है। कोई भी सफर हो, भारतीय संस्कृति के प्रभाव से अछूता नहीं लगता फिर चाहे उसमें मिल-बैठकर खाना शामिल हो या एक दूसरे के दुख-दर्द का हाल जानना। हाल जानना ही पर्याप्त नहीं है, यदि कोई पीड़ित है तो उसको मदद करने के भी कई तरीके हम सफर में ही देखते हैं। इस कहानी में उस बात को बताने की कोशिश भी की गई है कि सफर में प्रत्येक यात्री अपनी दुनिया में भी मस्त रहना चाहता है और उसे दूसरों की परवाह नहीं होती। दरअसल, सफर में यात्री अपने मन के भीतर एक द्वंद्व भी कर रहा होता है, इसलिए बहुत बार वह

सिर्फ अपने में खोया रहता है। इन परिस्थितियों में यात्री के सब गुनाह माफ कर देने चाहिए।

वैसे ‘खूबसूरत मोड़’ की तरह ही उनकी दूसरी कहानियों में भी मोड़ दिखाई देते हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में एक बार ठहराव आता है और लगता है कि शायद कहानी खत्म हो रही है लेकिन वही जब उसका विस्तार होता चला जाता है तब हम भी कहानीकार के साथ ही बहते चले जाते हैं और पात्रों के बीच जाकर रुक जाते हैं और उन्हें जीने भी लगते हैं।

संकलन की अन्य कहानियाँ भी रोचक हैं जैसे शास्त्रीय संगीत, आदर्श शहरी, छुट्टी का एक दिन बिलकुल नए कलेवर में हमारे सामने आती हैं और हमारे मनोरंजन के साथ-साथ एक सीख भी देती है। ऐसे ही ‘फैशन के इस नाजुक दौर में’ नए समय की कहानी है जबकि ‘सरनेम’ कहानी पहले से ही चर्चा में रही है। ‘खिड़की के उस पार’ कहानी में भी विस्तार हो सकता है।

राम नगीना मौर्य की कहानियों में बोर नहीं होने की गारंटी है, क्योंकि रोजमर्रा की घटनाओं को वह रोचक अंदाज में लिखते हैं। इन कहानियों में कहावतें, फिल्मी गीत आदि जोड़ देना उनकी निजी विशेषता कही जा सकती है। उनके अन्य कहानी संग्रहों की तरह ‘खूबसूरत मोड़’ को पढ़कर आप निराश नहीं होंगे, ऐसी गारंटी है।

**पुस्तक:** खूबसूरत मोड़ (कहानी संग्रह)

**लेखक:** राम नगीना मौर्य

**प्रकाशन वर्ष:** 2023

**प्रकाशक:** रश्मि प्रकाशन, लखनऊ

**पृष्ठ:** 122 **मूल्य:** 225/- रुपये

**समीक्षक :** मुकेश पोपली

**संपर्क :** ‘स्वरांगन’, ए-38-डी, करणी नगर पवनपुरी, बीकानेर, पिन-334003

**मो.** 7073888126

## जो मुट्ठी में है : जनता के सवाल और स्वप्नों को उजागर करती कविताएँ

-डा. अजीत प्रियदर्शी

“बगैर भीगे कोई कविता/कहाँ उतरती है किसी कागज पर।”

इस अनुभव को जन-जीवन के अनुभव-सत्य से जोड़कर देखने वाले जनप्रतिबद्ध कवि उमेश पंकज ने जनपक्षधर कविता लिखने की शुरुआत तो अस्सी के दशक में ही कर दी थी, मगर उनका पहला काव्य संग्रह ‘एक धरती मेरे अंदर’ 2019 में प्रकाशित हुआ। कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ाई के दौरान ही वे वाम छात्र संगठन से जुड़े और कलकत्ता विश्वविद्यालय छात्र संघ के लिए चुने गए। वे तमाम जन संगठनों से जुड़े, अखबारों में जन सवालों को उठाया। सन 1981 में उन्होंने लघु पत्रिका ‘वृत्तांत’ निकाला। जनसरोकारों और एक्टिविज्म के स्वभाव से ही उनके अंदर काव्य-स्रोत, काव्य-संवेदना पैदा हुई। उमेश पंकज के जनवादी काव्य स्वभाव का परिचय उनके पहले काव्य संग्रह की कविताओं से मिल जाता है। हाल ही में (2022, लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ से) प्रकाशित उनके दूसरे काव्य संग्रह ‘जो मुट्ठी में है’ की कविताओं में उनकी जनप्रतिबद्ध प्रखरता और निखर कर सामने आई है।

इस संग्रह में कुल छिहत्तर कविताएँ संग्रहित हैं। दो खंडों में ये कविताएँ संकलित हैं। दूसरे खंड में उमेश पंकज के शुरुआती काव्य रचना की बानगी प्रस्तुत करने वाली दस कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ 1975 से 1981 ई. के बीच लिखी गई इन कविताओं में भी जन-प्रतिरोध और जन-प्रतिबद्धता साफ दिखाई देती है। इन दस कविताओं में सहज-सरल भाषा में कवि ने जनचेतना और जनप्रतिरोध को सुंदर ढंग से उकेर दिया है। 1980 में लिखी कविता ‘चीटियाँ’ कविता में वे आम आदमी को चीटियों से अनुशासन और एकजुटता सीखने के लिए कहते हैं : ‘चीटियों के बिल की तरह/यदि आपके रास्ते संकरे हैं/तो सीखिए चीटियों से/अनुशासन

की परिभाषा/और कतारबद्ध हो जाइए/आपकी एकजुटता से/ रास्ते बनते जाएँगे।’ 1981 में लिखी गई कविता ‘केंचुए’ में वे आम आदमी के बच्चों को केंचुआ समझने और उन्हें रौंदने की इच्छा रखने वाले महारानी तथा उनके बच्चों से कहते हैं कि आम आदमी जाग गया है। गरीब आदमी भी अपने बच्चों को पढ़ाने लगे हैं : ‘उनकी दवात कलम और किताब / उतरेंगे टेकुए सा / तुम्हारी आँखों में / नहीं हो सकते अब/तुम्हारी जुबान, दुम और आँख / बकौल तुम्हारे / तुम्हारे आदमी तुम्हारे केंचुए’। 1981 में ही लिखी कविता ‘वह पूछता है’ में उसने चाय की दुकान में बर्तन धोने वाला बच्चे के इस सवाल को उठाया है कि ‘मास्टर साहब! मैं कब स्कूल जाऊँगा, मैं कैसे स्कूल जाऊँगा’। वह उसे झूठी दिलासा देता है और मन ही मन सोचता है कि ‘बता देना चाहिए साफ-साफ / कि तुम्हारे स्कूल का समय / बोरे में भरकर/तुम्हारे बाप की पीठ पर लादकर / सेठ दीन दयाल को / बेच दिया गया है’। बच्चे की इच्छा और सवाल तथा बाप की मजबूरी तथा जहालत भरी कमजोरी को दर्ज करती यह कविता हकीकत को दर्ज करते हुए बदलाव की इच्छा को भी दर्ज करती है तथा जनचेतना जगाने का काम करती है।

इस संग्रह की छह कविताओं में कोरोना काल का भयावह समय दर्ज है। वे देखते हैं कि कोरोना की महामारी में राज्य सरकारों और केंद्र सरकार ने जरूरी कदम उठाने में देर किया, राहत के कामों में भेदभाव किया। इस वजह से लाखों लोगों की जिंदगी और उनकी रोजी-रोटी तबाह हो गई। इन कविताओं में कवि की पीड़ा और उनका आक्रोश फूट पड़ा है।

रोजी रोटी के लिए गाँव छोड़कर शहर में जैसे-तैसे रह रहे लाखों लोगों के सामने कोरोना महामारी से जीवन और रोजगार का संकट उपस्थित हो गया। आवागमन के साधनों के संकट से स्थिति भयावह हो

गई। आनन-फानन में रेल सेवा बंद कर दी गई, तब भारत के लगभग सभी शहरों से दिहाड़ी मजदूर, कारीगर और रेहड़ी वाले लोग अपने पत्नी और छोटे बच्चों के साथ लाखों की संख्या में पैदल ही हजारों किलोमीटर दूर अपने माँ की ओर चल पड़े। रेल लाइन के साथ दिन-रात चलने वाले लोग अनेक दिक्कतों और हादसों का शिकार हो गए। एक भयानक हादसा हुआ जब रेल पटरी पर सो रहे दर्जनों मजदूरों पर आधी रात में धड़धड़ाती हुई रेलगाड़ी गुजर गई। दर्जनों लोग कट कर मरे, जिनके अंग कटकर दूर / दूर तक बिखर गए। समाचारों में यह सब भयानक मंज़र देख-सुन कर सभी सिहर गए। कवि के संवेदनशील मानस पर यह बज्रपात जैसा था। उसने 'कितना दूर है हमारा गाँव' कविता में इस भयानक मानव त्रासदी को दर्ज किया। थककर सो रहे मजदूरों के सपने और भयानक हादसे को एक साथ रचकर कवि ने उनके जीवन की त्रासदी, विडंबना और सत्ता के अमानवीय चेहरे को भी मार्मिक ढंग से उजागर कर दिया है : 'सपने में वह अभी माँ के पाँव छू ही रहा था / कि गुजर गई एक मालगाड़ी दनदनाते हुए / बिखर गई गठरी, बिखर गई दुनिया उनकी / कटी गर्दन, कटे हाथ और कटे पाँव/रेल पटरियों पर उछलते हुए / पूछ रहे हैं अभी कितना दूर है हमारा गाँव'।

भारत के विभिन्न शहरों, महानगरों से अपने गाँव पहुँचने के लिए हजारों किलोमीटर दूर पैदल चलने के लिए मजबूर कामगारों के पैरों के छालों और असहनीय दर्द को वह गहराई से महसूस करता है। संकट की घड़ी में उनके लिए रेल की व्यवस्था न करा पाने या किसी बस में उन्हें न बिठा पाने के कारण वह ज्यादा दुखी अनुभव करता है। पैदल यात्रियों के दुःख, कष्ट को अनुभव करके वह उनके साहस को सलाम करता है। बिना जूता-चप्पल के चलने वाले यात्रियों का जूता बन जाना चाहता है और उनके दुःख में भीगकर कविताएँ लिखता है। कोरोना महासंकट के दौर में वह जन-संवादधर्मी कविताएँ लिखता है। कोरोना संकट झेलने वाले आम लोगों से वह कविता में संवाद करते हुए लिखता है : "हाँ,

तुम्हारे दुःख में लिपटी कविताएँ / लगातार लिख रहा हूँ / मैं यह मानता हूँ कि ठीक से पढ़ी जाएँ / तो कविताएँ अपना ठीक काम करती हैं। कोरोना महामारी के समय सरकार और तंत्र की संवेदनहीनता तथा बेशर्मी को कवि शिद्धत से महसूस करता है। 'बेशर्मी' कविता में वह मीडिया की बेशर्मी को भी नहीं बख्शाता। क्योंकि, सरकार, जिम्मेदार सरकारी विभागों और मीडिया को 'कोई फर्क नहीं पड़ता कि / तपती धूप में सैकड़ों किलोमीटर चलकर / एक स्त्री ने सड़क पर बच्चा क्यों जना / कि एक स्त्री कई दिनों तक भूख से लड़ते हुए / रेलवे प्लेटफार्म पर दम क्यों तोड़ देती है / और उसका अबोध बच्चा उसको ओढ़ाई गई चादर / और उसके सूखे स्तनों को / अपने मुँह में बार बार क्यों खींच रहा है'। यातना, तकलीफ और त्रासदी के भयावह दृश्य उसे बेचैन कर देते हैं। संवेदनशील कवि को संवेदनहीन सरकार के प्रति बार-बार आक्रोश फूटता है। लेकिन उसके मन में कौंधते हैं कई सवाल। वह संवेदनहीन होते मनुष्य समाज को देखता है और उसे चिंता होती है कि 'हमारी संवेदनाओं के स्रोत कहाँ सूख गए।'।

कोरोना महामारी के कठिन दौर को देखकर चिंता के बावजूद मनुष्य की संघर्ष क्षमता और जिजीविषा के प्रति उसका धैर्य कमजोर पड़ता है लेकिन टूटता नहीं। वह खुद को और सबको भरोसा देना चाहता है कि 'मुश्किल वक्त है, पार हो जायगा'। 'लौट आएगी जिंदगी'। कोरोना के महासंकट के दौर में सरकार की संवेदनहीनता, विफलता ने आम आदमी के जीवन को और अधिक विडंबनापूर्ण तथा त्रासद बना दिया। 'महाराज' शीर्षक से लिखी चार कविताएँ इसी बेशर्मा, संवेदनहीन तंत्र के महाराज को संबोधित हैं। करुणा, विडंबना से उपजी ये चार व्यंग्य कविताएँ इस संग्रह की उपलब्धि के रूप में दिखाई देती हैं। नई किसान विरोधी कृषि नियमों के खिलाफ किसानों के धरना-प्रदर्शन के प्रति मूक दर्शक बनी संवेदनहीन सरकार के मुखिया को संबोधित हैं ये चार कविताएँ, जिनमें किसानों के आक्रोश, उनकी विडंबना को अभिव्यक्ति मिली है। 'इन दिनों' कविता में भी किसान

आंदोलन और उनके प्रदर्शन के प्रति सरकार की उपेक्षा, मूक संवेदहीनता के प्रति आक्रोश सवाल बनकर फूट पड़ा है: 'कई दिनों से किसान संघर्षरत हैं / डटे हुए हैं मोर्चे पर / कब तक संकेतों से काम लीजिएगा/ कब तक चुप रहिएगा आप / जी हाँ, मैं आपसे ही पूछता हूँ / किसान अब नहीं उपजाएँगे / तो क्या खाइएगा / खाली थरिया बजाइएगा'। कविता की इन पंक्तियों को पढ़ते हुए आपको थाली बजवाने वाले महाराज का चेहरा तुरंत याद आ जाएगा और आपके मन में वितृष्णा और होंठों पर उदासी भरी मुस्कान तैर जाएगी।

इस काव्य संग्रह के शीर्षक 'जो मुट्ठी में है' से दो कविताएँ संकलित हैं। दोनों कविताओं में बाजार और बाजारवाद की मुट्ठी में कैद आम-ओ-खास लोगों की जिंदगी की विडंबनापूर्ण स्थिति उकेरा गया है। ताकतवर लोगों के हाथों में होता है बाजार। पूँजीवाद ही फैलाता है बाजारवाद। बाजार और बाजारवाद लोभ-लाभ, छल-छद्म, झूठ-फरेब, अहंकार, हिंसा के रूप में है। पूँजीवादी व्यवस्था का मुखिया पूँजी का कठपुतली मात्र होता है। कवि ने पूँजी की ताकत को उसी के मुख से कहा है: 'पूरी पृथ्वी / एक बाजार है / जो मेरी मुट्ठी में है'।

संवेदनशीलता, सरोकार, प्रतिबद्धता और प्रेम उमेश पंकज के कवि व्यक्तित्व के मूलभूत संघटक तत्त्व हैं। उनकी संवेदनशीलता ऐसी कि 'पत्थर' में भी रक्त, आँसू और चीख महसूस कर लेते हैं: 'पत्थर चीरने पर / रक्त रिसता है उसके बदन से / मर्मांतक पीड़ा होती है/पत्थर चीखते / बिलखते हैं / आँसू झरते हैं'। 'पानी' उमेश पंकज की कविता में बार-बार आता है, कभी बादलों के साथ, कभी चट्टानों से होते हुए धरती के गर्भ में, कभी शरीर में, कभी आँखों में, कभी समुद्र में, कभी नारियल के कच्चे फलों में, कभी छटपटाती मछलियों की आँखों में, कभी मचलता है 'कविता में आने के लिए'। कभी जब कवि-हृदय भीगता है तब उतरती है कागज पर कोई कविता। कुँए का पानी उसे बुलाता हुआ महसूस होता है: 'मुझे बाहर निकालो / अपने घर ले

जाओ / शीतलता है मुझमें / बुझा सकते हो अपनी प्यास/हो सकते हो तृप्त / जब तुम खेतों में श्रम करोगे / तुम्हारे शरीर से बाहर आ जाऊँगा / मिट्टी में मिल जाऊँगा / उसी में उगूँगा बार बार / कई बार मेरा जन्म होगा'।

कवि चाहता है कि आदमी की आँखों में पानी बचा रहे। वह जानता है कि आँखों का पानी ही मनुष्यता और प्रकृति और प्रेम को बचाएगा। 'बचो....बचो' कविता में वह लिखता है: 'आँखों में पानी यदि बचा हुआ है / ...तुम्हारी सोच की नरम दूब में / कल्ले अब भी फूटते हैं / तो मुझे कहना चाहिए कि/तुम बचे हुए हो/तुम उग रहे हो / तुम उठ रहे हो / हत्यारे तुमसे डरे हुए हैं / और तुम्हारी तलाश कर रहे हैं'।

मिथकों और पुराण कथाओं के पात्रों को लेकर भी उन्होंने दो कविताएँ लिखी हैं- 'यमराज से संवाद' और 'हनुमान खोजो'। 'यमराज से संवाद' में जहाँ एक तरफ कवि 'एक धरती मेरे अंदर' की विराट चेतना की अभिव्यक्ति करता है, वहीं 'हनुमान खोजो' कविता में वह कहना चाहता है कि रावण की लंका जलाने के लिए आग की नहीं, हनुमान को खोजना जरूरी होगा। वही मिथकीय चरित्र हनुमान, जिसे राजेन्द्र यादव ने दुनिया का पहला आतंकवादी कहा था। उमेश पंकज ने हनुमान को क्रांतिकारी चरित्र का प्रतीक बना दिया है।

प्रेम में डूबे मित्र और उसके प्रेम-प्रेमिका को याद करते हुए कवि ने एक मार्मिक कविता लिखी है - 'राखाल दा'। राखाल दा बहुत कठिनाई से अपनी प्रेमिका मिताली को समझा पाए कि 'प्रेम के लिए विवाह बंधन जरूरी नहीं / कि एक साथ हजार-हजार प्रेम किए जा सकते हैं / ....प्रेममयी मन में / सर्वत्र प्रेम ही प्रेम/प्रेम के बिना दुनिया काली खोह है'। प्रेम के बिना दुनिया काली खोह है'। मिताली को समझा कर बाँकुड़ा भेज देने के बाद राखाल दा कोलकाता में पार्टी राजनीति में पूरी तरह डूब गए। आपातकाल के वक्त जेल भेज दिए गए, तो मिताली ने अपना संपर्क और पैसा इस्तेमाल कर उन्हें छुड़ाया।

टूटे हुए पेड़ की तरह वे मिताली की गोद में धराशाई हो गए। मानुष, माटी, पार्टी, पाखी – सबसे प्रेम करने का दावा करने वाले राखाल दा इन सबसे प्रेम करने और पाने से शायद वंचित रह गए। इस कविता की अंतिम पंक्तियों में कवि ने इसका इशारा किया है। जीवन के अंतिम क्षणों में प्रेम उन्हें अपनी मित्र और प्रेमिका मिताली से ही मिला। 'प्रेम के बिना दुनिया काली खोह है' कहने वाले राखाल दा और मिताली के अंतिम समय के संग-साथ के बारे में कविता की ये पंक्तियाँ अत्यंत मार्मिक हैं: 'बताने वाले बताते हैं / राखाल दा की आँखों में एक खोह थी / जिसमें से निकलकर पाखी के दो लाल बच्चे / मिताली की हथेलियों पर बैठ गए थे / जिन्हें वह आज भी जिंदा रखे हुए है'। इस कविता में मार्मिक ढंग से यह सचाई उकरी गयी है कि 'प्रेम नहीं मरता'। इस कविता में दो पात्र हैं और उनकी सच्ची कहानी है, कविता में उनकी कहानी का सार है कि 'प्रेम नहीं मरता' इस शीर्षक से एक कविता भी है। इस कविता में शायद कवि की अपनी प्रेम कहानी है। विक्टोरिया मेमोरियल की वह शाम और प्रेमिका की कही बात, जो उसने शायद किशोर वय के कवि/प्रेमी से कही थी, यहाँ दर्ज है: 'तुम अपना संसार बसा लेना / संवेदनशील और सहृदय हो / न्याय के लिए लड़ने का / जज्बा है तुम्हारे भीतर/सच्चाई को जीवित रखना / और प्रतिरोध रचते रहना'। कवि के बारे में उसकी प्रेमिका की कही बात सच्ची थी और उसकी मनुहार भी, जिसका मान रख लिया कवि ने। आज भी उनके जीवन एवं काव्य व्यक्तित्व में संवेदनशीलता, सहृदयता, न्याय और सचाई के लिए संघर्ष और प्रतिरोध का संसार रचा-बसा है। आम आदमी के जीवन की विडंबना और त्रासदी के पीछे वे पूँजीवादी व्यवस्था के सफेदपोश अपराधी और राजनेताओं को जिम्मेदार मानते हैं। जीवन में सर्वत्र व्याप्त विडंबना, विसंगतियों को देखकर उनका मन करुणा तथा आक्रोश से भर उठता है। करुणा और आक्रोश से

उनकी कविता में व्यंग्य का सृजन होता है। 'किसने देखा', 'कुकुर खेल' 'उलटबासियाँ' 'जैसी कविताओं में व्यंग्य की धार देखते ही बनता है। जनप्रतिबद्धता और जनप्रतिरोध का स्वर उमेश पंकज की कविता का मुख्य स्वर है। 'तानाशाह', 'बदबू', 'क्रांति', 'धोखा', 'चिचरी पार रहा है', 'प्रतीक्षा', 'नफरत', 'तिलचट्टे की हत्या', 'चार बातें', 'युद्ध दर युद्ध', 'छिपकली', 'बिल में घुस जाओगे', 'नाचना चाहता हूँ', 'माएँ चिंतित हैं' जैसी कविताओं में जनप्रतिबद्धता, जन-आक्रोश और जन-प्रतिरोध ही सृजन-स्रोत बना है। ये कविताएँ आमफहम भाषा, लोकजीवन के बिंबों, प्रतीकों, उपमानों और सपाटबयानी के कलेवर को लेकर रची गई हैं।

साफगोई, जनचेतना और जनप्रतिरोध ही इनका प्रेरक तत्व है और इनके सृजन का लक्ष्य भी। मेहनत-मजदूरी करके पेट पालने वाले मजदूरों, सबका पेट भरने वाले किसानों के कठिन श्रम और जीवन संघर्ष के प्रति अगाध प्रेम की अभिव्यक्ति इस संग्रह की कई कविताओं में हुई है। 'इन दिनों' कविता किसान और किसान आंदोलन के पक्ष में लिखी गई अविस्मरणीय कविता है। 'बदबू' कविता में गटर में उतर जाने वाले सफाईकर्मी के असाधारण साहस और जान का जोखिम उठाने के बावजूद कृतघ्न समाज द्वारा उससे अछूतपन मानने का जबरदस्त प्रतिकार दर्ज है। कवि ने मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है कि, 'बदबू देह में कहाँ होती है/...आँखों के रास्ते मन में चढ़ती है/ यकीन मानिए / बदबू के पार जाना / घृणा के पार जाना है'। जान की बाजी लगाने वाले सफाई कर्मियों के प्रति बरता जाने वाला अछूतपन दुरंगे समाज का दोहरापन और घृणित सोच है। यह बदबूदार सोच ही सफाईकर्मी समाज की तकलीफदेह जीवन की विडंबना भी है। कविता में इस बदबूदार यथार्थ की विडंबना का जबरदस्त प्रतिकार है।

'क्रांति' के बारे में क्रांतिकारी चिंतक, संस्कृति कर्मी और एक्टिविस्ट सतही सोच, अति उत्साह,



क्रांति के स्वप्न का उतावलापन कैसे प्राणघातक बन जाता है, इस बात को घटनात्मक या कथात्मक और वर्णनात्मक ढंग से 'क्रांति' कविता में पेश किया गया है। जमीनी सचाई और समाज से अलग-थलग पड़े उस क्रांतिकारी की मौत मीडिया में इस तरह पेश हुई: 'ईट की चोट से एक सिरफिरे की मौत'। नैरेशन, किस्सागोई, वर्णनात्मकता, रेटारिक या वक्तव्य-प्रधानता उमेश पंकज की कविता की अहम विशेषताएँ हैं। ये विशेषताएँ कभी कविता के गुण बनकर सामने आते हैं तो कभी-कभी कविता और कहन की सीमा भी बन जाते हैं। नफरत की राजनीति करने वाली पार्टियों ने समाज में नफरत का रोग पैदा कर दिया है। 'नफरत' कविता में कवि ने नफरत फैलाने वालों को बेहद डरा हुआ बताया है। घर में घुसे चूहे से डरने वाले लोग जैसे रोटी में जहर देकर चूहे को मार देने और उसे घर के बाहर फेंक देने के बावजूद अपने डर को निकाल नहीं पाते। अनुपस्थित चूहा रोज ऐसे डरे हुए लोगों के सपने में आता है। चूहा मारने वालों के डर का उदाहरण देते हुए, कवि ने सत्ता पाने और बरकरार रखने के लिए नफरत फैलाने वाले वाले दल की पोलपट्टी खोलते हुए प्रतिरोध की ये अविस्मरणीय पंक्तियाँ लिखी हैं - 'वह रोज आपके सपनों में आता है/ आपकी आँख, नाक और कान कुतरता है/ आप बेहद बेचैन और डरे हुए हैं/ अब इस डर का क्या करेंगे आप/ कोई सपना जहर से तो नहीं मरता!' एक ताकतवर व्यक्ति/ सत्ता चूहे से डरता है। यह चूहा आम आदमी का प्रतीक है। यह चूहा रूपी आम आदमी ताकतवर सत्ता के मनचाहे स्वप्न में सुराख कर सकता है। आम आदमी को चूहा मानने और उसे धर्म, जाति के जहर देकर मारने की सत्ताधारी व्यक्ति की इच्छा चूहा रूपी आम आदमी के सपनों को और अपने ही दुःस्वप्न को मार नहीं सकती। इस कविता

**समीक्षित कृति :**

'पुस्तक जो जो मुझी में है'

(कविता संग्रह)-उमेश पंकज,

प्रकाशक : लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ,

मूल्य : 170 रुपये

प्रकाशन वर्ष : 2022

की यह मारक पंक्ति कितनी अविस्मरणीय है : 'कोई सपना जहर से तो नहीं मरता'। ताकतवर लोग आम आदमी को तिलचट्टा समझते हैं। 'तिलचट्टे की हत्या' कविता में आम आदमी की हत्या को कीड़े-मकोड़े की हत्या समझने वाले ताकतवर, सत्ताधारी व्यक्ति और व्यवस्था का प्रतिरोध है। ताकतवर लोग आम आदमी के जीवन को तुच्छ तिलचट्टे की तरह मानते हैं और उनकी हत्या करने में जरा भी नहीं सोचते या हिचकते। क्योंकि, बकौल उमेश पंकज: 'पूरी दुनिया में कहीं भी / छोटे-छोटे महत्वहीन जीवों की हत्या-जुर्म की श्रेणी में नहीं है'। 'छिपकली' कविता में भी ताकतवर लोगों की युद्धोन्मादी मानसिकता का पोस्टमार्टम किया गया है। 'युद्ध दर युद्ध' कविता में भी निरंकुश सत्ता के युद्धोन्माद का प्रतिरोध दर्ज है। सत्ता के शीर्ष पर बैठा संवेदनहीन, निरंकुश व्यक्ति अत्यंत क्रूर हो जाता है। क्योंकि, 'क्रूरताओं की हदों को पार करता हुआ / वह सिर्फ मारना जानता है'। 'युद्ध' कविता में भी कवि ने युद्ध को वर्चस्व के लिए बर्बरता, हिंसा, रक्तपात की महाविनाशकारी क्रिया मानते हुए युद्धविरोधी आह्वान किया गया है।

उमेश पंकज के इस संग्रह की कविताओं की भाषा सहज आमफहम है। बतकही की भाषा में भोजपुरी बोली-बानी के मुहावरे, बोली की सहज लय और ठेठ शब्द सहजता से आए हैं। आम जनजीवन के बीच से ही बिंब, उपमान, प्रतीक और मिथक के सहज प्रयोग हैं। सहजता ही इन कविताओं की कथ्य-कथन, भाव-भाषा और शिल्प की अन्यतम विशेषता है। कविता पर उन्हें पूरा भरोसा है। हम उनकी बात पर, यानी कविता पर, भरोसा कर सकते हैं, जो भरोसा वे हमें देना चाहते हैं : 'भरोसा रखिए कविता पर / कविता अपना काम / धीरे धीरे करती है / कविता कभी शोर नहीं मचाती'।

**समीक्षक :** डा. अजीत प्रियदर्शी

**संपर्क :** एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, डी. ए. वी. डिग्री कॉलेज, लखनऊ,

**ईमेल :** ajitjales@gmail.com, मो. 8687916800

## अक्खड़ संपादक और चापलूस लेखक

—रामस्वरूप दीक्षित

संपादक लेखक का अघोषित भगवान होता है। संपादक को छीक आते ही चापलूस लेखक जुकाम की दवा खाने लगते हैं और उन्हें गर्मी महसूस होते ही नहाने लगते हैं।

इसका लाभ भी उन्हें मिलता है।

उनकी कमजोर रचना सहजोर रचनाओं को पछाड़ती पत्रिका या संग्रह में जगह पा जाती है।

संपादक की बनाई संस्था में प्रमुख पद पा जाते हैं।

संपादक के सामने आते ही ये उनके लिए दिन में चाय और शाम ठंडी चाय के साथ नमकीन लेकर हाज़िर रहते हैं और रातें नीली करने की जुगाड़ करते हैं।

ये संपादक के वफादार रहने के लिये पहले अपने दोस्तों को संपादक के खिलाफ लिखने को उकसाते हैं और बाद में संपादक की तरफ से उन पर प्रहार करने लगते हैं।

एक बार एक खुद को कालीदास का आधुनिक अवतार मानने वाले संपादक ने लिखा, “गिलहरी उड़ान भरती है।”

और ये गिलहरी की तुलना हवाई जहाज से करने लगे।

एक लेखिका को संपादक की इस बेवकूफी पर हँसी आ गई और वह सबके सामने हँसने लगी।

उसे हँसता देख दूसरे लेखक भी हँस पड़े, जो हँसने का साहस न कर सके वे मुस्कराने लगे। संपादक को यह नागवार गुजरा। उन्होंने अपनी एक पालतू लेखिका को याद किया। लेखिका धन्य हुई।

वह अपनी ही दोस्त लेखिका के खिलाफ वैसे ही खड़ी हो गई जैसे गलत कृषि कानूनों के खिलाफ किसान खड़े हुए थे।

उसने कहा संपादक की किसी बात की खिल्ली उड़ाना किसी लेखक, खासतौर पर महिला लेखक के लिए शर्म की बात है।

यह भारतीय संस्कारों का अपमान है। संपादक पुरुष हैं और पुरुषों की किसी बात पर हँसना स्त्री गरिमा के खिलाफ है।

इस पर महिला लेखिका खिलखिलाकर हँसी। पालतू बिल्ली खिसिया गई और खम्भा न मिलने पर जो भी सामने दिखा उसे नोंचने लगी।

लेखिका इस बात पर अड़ गई कि गिलहरी के पंख नहीं होते और बिना पंख के केवल मेंहगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार ही उड़ सकते हैं, गिलहरी नहीं।

संपादक अक्खड़ तबियत के थे। अपने भाषाज्ञान पर स्वमोहित थे। लेखकों को अपना मातहत समझते थे। उनकी शाम खराब होने लगी। रसरंजन निरर्थक साबित हो रहा था। उनके सुकून की गिलहरी को पंख लग गए।

हिंदी में संपादक कभी गलत नहीं होता और लेखक, अगर वह संपादक श्वान नहीं है तो कभी सही नहीं होता।

संपादक ने कहा, “मैं हिंदी साहित्य में गिलहरियों को उड़ाने का नया प्रयोग कर रहा था। यह प्रयोग करने का साहस आज तक कोई संपादक नहीं कर सका (इस पर लेखिका फसफुसाई) इसके पहले कोई संपादक इतना मुख्य भी नहीं था) पर मैं देख रहा हूँ कि कुछ जन्मजात लेखक मेरे इस प्रयास की हत्या करने पर आमादा हैं और कुछ दुर्बद्धि लेखक उनका साथ दे रहे हैं। यह साहित्य की संस्कृति के खिलाफ है। यह मेरा, मेरी भाषा प्रतिभा का खुलेआम अनादर है।”

फिर, उन्होंने असंतुष्ट मंत्री की तरह मुख्यमंत्री पर दबाव बनाने की तरह कहा, “मैं इसके विरोध में सम्पादन कार्य से अलग होता हूँ।”

उनकी इस घोषणा से चापलूस लेखकों को अपना भविष्य काँग्रेस की तरह दिखने लगा।

चापलूसत्व ने अपना असर दिखाया। उन्हें पुनः संपादक का भार सर पर लेकर नाचने की मांग की जाने लगी।

उनकी प्रिय लेखिका ने तो हद ही कर दी। उसने ऐलान किया कि जब तक संपादक जी अपनी कही बात से नेताओं की तरह मुकर नहीं जाते, वह पानी तो क्या चाय तक नहीं पिएंगी।

उस दिन उसने अपनी दोपहर उनके इनबॉक्स में बिताई।

सबह, जो कि सड़क दुर्घटनाओं की तरह होने को कभी नहीं रुकती, हो ही गई। संपादक ने कालेधन की वापसी के वादे की तरह अपनी घोषणा को महज जुमला करार देते हुए अपनी चारित्रिक दृढ़ता का परिचय दिया।

चापलूसों के जीवन में बसन्त छा गया। उस रात एक पेय पदार्थ ने बिक्री का महीने भर का रिकॉर्ड तोड़ दिया।

सुबह आसमान गिलहरियों से पट गया।

संपर्क : सिद्धबाबा कॉलोनी, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश, पिन: 472001, मो. : 9981411097

## गरीब

उस इत्र की कीमत सुनकर  
चौंक गया था मैं  
बस एक बार सुँघा उसे  
और कदम खींचकर  
बाहर निकल गया दुकान से

जबकि, सेल्समैन कहता रहा  
इसकी खुशबू बहुत दूर तक जाती है  
इसे लगाने वाले दूर से पहचान लिए जाते हैं  
अप्सराएँ प्रभावित होती हैं  
अमीर जुड़ने के लिए हाथ बढ़ाते हैं  
सफलता मिलने में देर नहीं लगती

इतने सारे गुणों की खान यह छोटी-सी शीशी  
नहीं आ सकती थी मेरी जेब में  
सचमुच इतना गरीब था मैं  
छोटी-सी अमीरी भी नहीं खरीद सकता था

बूँदें पसीने जितनी महँगी  
मैं हर दिन देखता हूँ  
स्त्रियाँ खाली घड़ा लेकर जाती हैं  
और पानी लेकर वापस लौटती हैं

बरसों बीत गए इसी तरह  
इस बीच कितनी ही बार  
उस नीम के पेड़ में फल लगे और झड़े?  
बड़ा भी हो गया है इसका स्वरूप  
अकेला ही दातौन बाँट रहा पूरे गाँव को  
यही हाल आम, जामुन और दूसरे पेड़ों का

बहुत सारे विकास हुए गाँव में  
आबादी फैली, अपने घर बने लोगों के  
मवेशियों के भी झुंड बढ़ते गए  
बच्चों को साइकिलें मिलीं, बड़ों को स्कूटर  
पढ़ने के लिए पाठशालाएँ भी खुलीं  
इलाज के लिए छोटा-सा अस्पताल भी

बस गाँव को पानी नहीं मिल सका  
घड़े ढोते-ढोते स्त्रियाँ थकती रहीं  
कुएँ और तालाब कम पड़ गए  
बूँदें पसीने जितनी महँगी हो गईं

## -नरेश अग्रवाल

### स्मारक

इस गाँव में नहीं था  
किसी का भी स्मारक  
जैसे कभी नहीं रहा हो  
कोई इस गाँव का मसीहा

जबकि, अनेक मुखिया रहे यहाँ  
जी-तोड़ मेहनत की इसे सजाने के लिए  
कुएँ खुदवाए, बिजली के तार लगवाए  
पाठशालाएँ खोलीं, शिक्षक तैयार कराये  
अपने सामर्थ्य भर बदलाव लाकर  
वे मृत्यु को प्राप्त हुए

अब बात चली है स्मारक लगाने की  
आ धमके हैं कई नए चेहरे  
बड़े-बड़े कट आउट लेकर  
भाड़े के लोगों द्वारा  
अपने जयकारे से  
गुँजा रहे पूरा गाँव  
थर्रा रहा बंदूकों के डर से लोगों का मन

अब स्मारक बनेगा उसी का  
जो जीतेगा यह चुनाव

### पसीज जाता हूँ

मित्रो मुझसे ईर्ष्या मत करना कि  
मैं फूल ढोने जैसा आसान काम करता हूँ

इतना आसान कि  
कभी थकने का अवसर ही नहीं मिलता  
और इसमें इज्जत भी खूब

खरीददार तक राह देखते रहते हैं मेरी  
हाथों हाथ बिक जाते हैं सारे फूल

धर्म-स्थल के आगे सजी दुकानों में  
थोड़ी देर बैठकर सुस्ता भी लेता हूँ  
मुँह भी मीठा कर लेता हूँ प्रसाद से

बस वापसी पर यह खाली टोकरी  
सूनी-सूनी लगती है  
सूना-सूना लगता है यह कँधा

कभी-कभी पसीज जाता हूँ भीतर तक  
दूसरों के कंधों पर भार लदा देखकर

### बैटवारा

बैटवारे में सभी धन लेना चाहते थे  
लेकिन, माता-पिता की जिम्मेवारी नहीं  
बच्चे बहस करते रहे  
अपनी-अपनी समस्याएँ रखते रहे  
फैसला हर बार रूक जाता था  
माता-पिता की देख-रेख पर आकर  
तराजू में एक तरफ माता-पिता थे  
दूसरी ओर अपार धन  
न्यायालय घर था और न्यायाधीश बच्चे  
सभी को धन चाहिए था  
लेकिन, बुढ़ापे का भार नहीं  
बात वृद्धाश्रम में रखने तक पहुँच गई  
इसलिए फैसला टल गया  
बच्चे काम पर चले गए  
बुढ़ापा फिर से  
अच्छे समय का इंतजार करने लगा!

### तुम्हारी थकान

माँ यह तुम्हारा दोष नहीं  
बुढ़ापा एक ही बात को  
बार-बार दोहराता है  
मैं अधिक बोल नहीं पाता  
इसलिए चुप रहता हूँ  
लेकिन कान सुनते हैं मेरे  
तुम्हारे, धिसे अंगों की सरसराहट  
उनकी पीड़ा, उनका हिलना-डुलना  
सभी कुछ अव्यवस्थित  
धड़कन तक को भी सुनता हूँ  
सब कुछ धीमा  
इन सब से डर लगता है  
मैं तुम्हारी पीड़ा में खो जाता हूँ  
अफसोस अपने अंगों से सहारा भी  
नहीं दे सकता तुम्हें  
कोई बात नहीं  
मैं तो बैठा हूँ न तुम्हारे पास  
तुम बोलो कम, महसूस करो मेरा स्नेह  
इसी से मिटेगी तुम्हारी थकान

### कविता न लिख पाया

कविता न लिख पाया  
जो लिखनी थी  
आ गया पहले ही  
तुम्हारा जन्मदिन  
पूछता कहाँ है-  
वह तोहफा  
शब्दों से भरा  
वाक्यों से सजा  
थरथरा रहे  
जिसे पाने को  
मेरे होंठ  
रोमांच जाग रहा  
कौतूहल की माँद में  
आँख भी चमक रही  
चेहरा भी हुआ लाल  
कहाँ है वह?  
सुनकर तुम्हारी बातें  
आँखें मेरी झुक आईं  
कविता लगी  
पंख फड़फड़ाने  
किंतु, लिखूँ किस भाव से  
जब सब कुछ  
सौंप दिया है तुम्हें आज

### मित्रता

मित्र तुम पीले होकर झड़ने वाले हो  
मैं तो अभी-अभी जन्मा हूँ  
अभी-अभी तुमसे दोस्ती हुई है  
कुछ दिनों का ही साथ रहा  
अब क्या करूँ?  
बस देखता रहूँगा तुम्हारा झड़ना  
जमीन पर गिरना  
और सूखकर उड़ना  
मेरी दोस्ती इतनी प्रगाढ़  
मन करता है  
छोड़कर डालियों का साथ  
निकल पड़ूँ तुम्हारी ही यात्रा पर  
लेकिन, मैं मजबूर  
पर चाहे अभी संभव न हो  
कुछ दिनों बाद जरूर!

**संपर्क :** हाउस नंबर 35, रोड नंबर 2, सोनारी गुल्द्वारा के पास, कागलनगर, सोनारी  
जमशेदपुर, झारखंड, पिन: 831011, मो. 9334825981, 7979843694

## मकर संक्रांति

-रेणुका अस्थाना

सात घोड़े एक रथ है , और एक है आस ,  
हार है संघर्ष है पर फिर भी हैं विश्वास ।  
ठंड से काँपे सबेरा , साँझ अलसायी पड़ी है  
लाद कर लंबा लंबा , रात कुम्हलाई खड़ी है  
अपनी - अपनी ज़िंदगी के सबके हैं अवसाद  
हार है, संघर्ष है पर फिर भी है विश्वास  
है भरा कुहरा घनेरा साँस डूबी जा रही है  
युद्ध के उन्माद में हर आस घटती जा रही है  
कितने दावानल सुलगते पंखुड़ी के पास  
हार है, संघर्ष है पर फिर भी है विश्वास  
गीतों के हर बोल उलझे , रागों की हर तान बहकी  
भोर की ठंडी पलक पर ओस की एक बूँद अटकी  
सूर्य जागा सुन के धरती की मृदुल आवाज़  
हार है , संघर्ष है पर फिर भी है विश्वास

### मैंने जीना सीख लिया है

जीवन के हर ताल पे मैंने  
साँस पिरोना सीख लिया है ।  
बोलों के झुरमुट में अपने  
शब्द छिपाना सीख लिया है ।  
रंग महावर और मेंहदी में  
स्याह छिपाना सीख लिया है ।  
भाव भंगिमा और हंसने में  
दर्द छिपाना सीख लिया है ।  
आँचल की कोरो से अपनी  
साँस बांधना सीख लिया है ।  
देखा है जीवन में अपने  
जुगनू के मरते उजियारे ।  
पूरी लय और ताल में अपने  
स्वप्न बांधना सीख लिया है ॥

### नव विहान

तुम नन्हीं सी लौ को थामे  
जलना पूरी रात  
जैसे चलती रात अबोली  
सपनों को ले साथ ॥

घर - घर में उजियारा भरना  
हर घर मुट्ठी धान  
भूखा न सोए कोई जग में  
सबका रखना मान ॥

तुम नन्हें हो , नन्हीं नन्हीं  
खुशियाँ भर दो घर में  
थोड़ा सा ही अंधियारा  
काटो सबके जीवन में ॥

एक - एक दिन करते - करते  
अंधियारा घट जाएगा  
सबके जीवन में  
प्रकाश से नव विहान आएगा ॥

### मन

अपूर्णता पूर्णता की कसौटी है  
या पूर्णता अपूर्णता की ?  
सोच दूर तक भटकती है  
कभी ओस को हथेली में छिपाए  
कभी किसी डिबिया में सिक्के दबाए  
कभी आधार में निराधार तकते , और कभी  
निराधार के कंधे पर सर को टिकाए  
कभी विश्वास में अविश्वास ढूँढ़ते और कभी अविश्वास  
की भित्ति पर विश्वास लिखते  
कभी दिए को हथेली पे बालते और कभी  
उजाले हर कोने से लौ को बुझाते  
सोच दूर तक भटकती है ....

### यादें -

झिम - झिम कर नाद सा  
झूलता प्रपात सा  
एक - एक पल बीतता  
बरस - बरस बीत गया  
पता ही नहीं चला ।  
प्यार के हिंडोले पर  
झूला झुलाती रात

हर दिन खुशी की  
कहानी सुनाती रात  
टुक- टुक सी करती  
जाने कब ठहर गयी  
पता ही नहीं चला ।  
हँसता मन फड़फड़ाया

आँख डबडबा गयी  
नदी की लहरें कब  
नदी में समा गयीं  
खनखनाते सिक्कों ने  
खनखनाहट बांध ली कब  
पता ही नहीं चला ।।

संपर्क : एल. 2, 207 आशियाँना आँगन, पो: भिवारी जिला : अलवर, राजस्थान

पिन : 301019 मो. 998244126

### इच्छाएँ

आँगन में बिछी चारपाई पर  
कराहते हुए अपने को ढोती  
कमरतोड़ मेहनत के बाद  
फिर से जीने को बेबस  
अमरत्व की उलझनों से बचते हुए  
अवसाद से निकलती नानी की तरह...  
टूटी-बिखरी पस्त-हिम्मत सी  
जिसकी वकालत अभी बाकी है  
और सदा बाकी ही रहेगी  
जरा सी बची उम्मीद के साथ  
वैतरणी को प्राप्त करने हेतु  
वट के फेरे लगाती ब्याहता की तरह.....  
धूप में पीपल की छाँव माँगती  
मिट्टी सहलाकर नमी ढूँढती  
प्यासी धरती को अपनी आँखों से  
सीचने के अभिनय को निभाती  
मरसिया मन के कोने में दबा  
मरु द्वीप में भटकती पथिक की तरह.....  
कच्ची उम्र में ही औरत बन  
चूल्हे चौके में बदरंग होती  
अपने को भूल परिवार में पिस  
तपस्या को फलीभूत कर रही  
प्रताड़ना की वरमाला पहने  
अपना हक जमाती लाली की तरह...  
बचपन से बूँदों छींटों के पड़ने पर  
मिट्टी की सौँधी खुशबू देती  
कभी बहलाती फुसलाती

### -मीना घुमे

मेरी अनगिनत अपूर्ण इच्छाएँ  
जोर पकड़ रही हैं प्रत्यक्ष उतरने को  
वर्षों राह तकने वाले चकोर की तरह.....

होगा जरूर सामना एक दिन  
हाँ.. खुले आसमान के नीचे  
मेरी उन इच्छाओं और वर्जनाओं का  
पक्का पता है न होंगे अब की बार  
ये उमड़ घुमड़ दूर भागने वाले  
आस जगाने वाले बादलों की तरह...

### विश्वास

उन्हें विश्वास है  
सदय आशुतोष पर।  
वे परंपराओं के षडयंत्र नहीं जानती....  
न ही जानना चाहती है  
उन रेखाओं को लांघने के परिणाम ....  
जो चौखट तक सीमित है।  
रहस्यमयी चेहरों की आड़ में छिपे ....  
संभ्रांतर रावणों का संहार  
वे अपनी चुप्पी से करना चाहती है ।  
हां हां चुप्पी से ...  
देख रही है फिलहाल ....  
प्रणय निवेदन लेकर खड़ा वह तराशा चेहरा  
जो मोहांधता के बीहड़ जंगलों की  
सैर कराना बखूबी जानता है ।  
परंतु वह चुप है ...  
एकदम चुप ...  
अंदर से चुप ।

संपर्क : दयानंद कलाम महाविद्यालय, लातूर, महाराष्ट्र, मो. 9689190729

meenaghume@gmail.com

वो और आप

-सतीश लोथे

यह कह गए  
कि रोशनी लेकर आए थे  
वे ही पर आप हो कि  
सह नहीं पाए उसे  
और बंद कर सब दरवाजे-खिड़कियाँ  
छुप गए अंदर घर में  
वे फिर आकर कह गए  
कि आपकी सोंच से  
अंधेरा क्यों नहीं हटता  
इसलिए कि  
आपने बंद कर रखी है आँखें अपनी  
इधर देखिए हमारी मुट्ठी में है  
सूरज की मुंडी  
यहीं पास तो है वह  
छू लो उसे आप भी अब  
किसे माने सच?

उन्हें  
जो रोशनी आईने में दिखाकर फरेब कर गए  
और एक बड़े तबके को झूठा साबित कर गए,  
उन्हें आदतखोर बोल कर अंधे होने का इल्जाम  
लगा गए..  
या  
आपको  
जिनको सदियों से सूरज के दर्शन करना मना थे  
और जिनका मस्तिष्क अपनी क्षमता भूलकर  
गुलाम रहना पसंद करता हो..  
वो है कि अंतिम निष्कर्ष पर उतर आते हैं  
आप की आँखें खुलने पर अंधेरा छाते बादल  
बन मंडराते रहते हैं  
ये चिल्लाकर कि सूरज उनके हाथों समुंदर में  
विश्रांती ले रहा है,  
अब सो जाओ..  
ध्यान रहे,  
वो बहुत चालाकी से पेश आते हैं  
और आप हैं कि गहरी नींद से जागना नहीं  
चाहते..  
कविता — अलमारी तथा किताबों की साँसे

कभी कभी  
साँसें लेने में दिक्कत महसूस करते हैं  
हर किस्म की किताबें,  
जरा तो अलमारी के दरवाजे खोल देने चाहिए..  
दिल तिलमिला जाता है,  
अंदर  
किसी किताब का लुभावना नक्शा  
तहस-नहस करते हुए  
कागज के बेशुमार कीड़ें नजर आते हैं तब..  
जरूर  
किताबों से रिश्ता बरकरार भी होना चाहिए  
हर दिन पन्नों पर उंगलियाँ हलके से घुमते-घुमाते  
कुछ समय तक  
तो कीड़ों की गंभीर समस्या नहीं उभरेगी,  
बल्कि, पन्नों की महक ताजा होकर  
किताबों में छुपा तथ्य इस जिंदगी को सुकून  
देता जाएगा  
यकीनन..  
किताबें खैर किसी का कोई अपराध बयाँ नहीं  
करती..  
अलमारी को धूल की चपेट से  
और किताबों को कीड़ों की काट से बचाना  
होगा  
मेरा वर्तमान गतिमान साबित करने के लिए  
सब के समक्ष  
बेशक..  
और नजर का कुछ हिस्सा  
मुझे अलमारी को प्यार से सहलाने  
तथा किताबों का दिल पढ़ने अपना होना  
सतर्कता से..  
निश्चित समझनी होगी अब साँस लेने में अटकते  
शब्दों की पीड़ा  
वरना केवल एक नजरअंदाज कर सकता है  
बहुत शर्मिदा..

### समय बीचोबीच

इसलिए नहीं कि  
अब मेरे बीच  
चुनने लायक  
कुछ रहा नहीं..  
इसलिए भी नहीं  
कि अब तुम्हारे अंदर  
कोई सुंदर बात  
बची नहीं..  
केवल  
हमारे दरमियान  
कोई रिश्ता  
बनते बने  
यह अलग उजाला  
समय की परंपरा को

शायद  
स्वीकार नहीं..  
कहीं  
वह इसे  
नया घना अँधेरा तो  
नहीं समझ रही?  
समय  
उसके साथ  
चलने के बावजूद..  
उसे क्या पता,  
यहाँ  
छटपटाते हुए  
अंधेरे में ही  
उजाला ढूँढ़ टूट रहा है  
कोई अकेले अकेले..

**संपर्क : 03, अक्षर नेस्ट अपार्टमेंट, गोविंदा बिल्डिंग के पास, विवेकानंद नगर,  
गुरुजी रुग्णालय के पीछे, गंगापुर रास्ता, नाशिक, महाराष्ट्र, पिन : 422013.  
मो. 7887867574. ई-मेल : satyamlotus@gmail.com**

-प्रिया श्रीवास्तव

### गाँव का घर

खत लिखा है..  
मेरे गाँव के 'घर' ने,  
वही जो पसरा था पाँच कदों में  
जहाँ बाबा द्वारे, मईया रसोई में  
भईया छत पे और  
दादी आंगन में दिखा करती थीं,  
तब सोचा करते थे..  
कितना सुख है शहरी बाबुओं को  
इत्ती सी दूर में ही सारी सुविधाएँ  
सर पे पंखा.. सामने टीवी  
मेज पे थाली और बगल में बीबी  
ना शर्म का पर्दा न समाज का डर  
हर तरफ बस खिलखिलाता मंजर  
क्या है इस मिट्टी के घर में

गाँवारों का गाँव.. खेत-खलिहान  
गाय-बैल, धूल-मिट्टी, बाग-बगीचे  
ये मेरे किस काम के,  
भाग आए थे दूर  
सुविधा वाले घर की तलाश में  
जब घुटता है मन  
कुछ कदमों के घर में  
जब एक साथ शोर करते हैं  
बच्चे, टीवी, मोबाइल  
और नल से गिरता पानी  
जब पीते लोग खरीदकर जल  
मिलावटी दूध, सब्जी और फल  
महीने भर की कमाई  
जब हो जाती है छू  
फर्क साफ नजर आता है



दिल हँसता मुझ जैसे  
समझदार लोग पर...  
मन जीत कर भी हार जाता है  
और गाँव का घर याद आता है,  
आज हूँ मैं थोड़ा दहसत में  
घर ने लिखा है खत में,  
जर्जर हो गया हूँ..आ जाओ  
थोड़ा सुस्ता लो मेरे आगोश में  
या फिर ले चलो मुझे भी  
मेरी शांति और सहजता के साथ  
क्या पता मेरा जीवन सफल जाए  
मुझे देख तुम्हारा शहर बदल जाए।

#### गगनधरा

ये धरती बावरी सी  
आकाश की तरफ दौड़ती  
फिर लौट आती  
आसमान के अभिनय को  
वो समझ नहीं पाती  
ये जुल्मी मुहब्बत  
कहाँ समझ में आया कभी  
जब-जब धरती तड़पती  
वो बरसता मूसलाधार  
जब ठिठुरती  
वो भेज देता एक टुकड़ा धूप  
सूख न जाए धरा की कोख में बीज  
इसका जिम्मा वो खूब उठाता  
सताती जब दूरियाँ  
वो चमकता.. गरजता.. फटता  
बिजलियाँ गिराता फुट-फुट कर रोता  
धड़ती के डूब जाने तक...

हर पल घेरे रहता भूमि को  
कभी चाँद कभी सूरज बनकर  
कभी भेजता कुछ तारा तोड़कर  
मतलब गगन को प्रेम है धरा से...  
ना... अगर होता तो  
मिलने न आता...

उसने वृक्ष उगाए गगनचुंबी  
इमारतें बनाई गगनचुंबी  
पंछी भेजे, जहाज-राकेट उड़ाए  
वैज्ञानिकों के जरिये  
पूरा आसमान नाप लिया  
पर मजाल गगन के प्रेम का  
कोई प्रमाण मिले...  
वो चाहता ही नहीं  
कोई जाने उसमें हृदय भी है...

प्रेम सुनने में मधुर है  
जीने में और मधुर है  
बिछड़ जाना प्रेम है  
मुश्किल से मिलना प्रेम है  
एक-दूसरे में जीना प्रेम है  
पर एक दूसरे के साथ जीना...  
हम जीते कहाँ हैं  
हम तो लड़ते हैं  
हमें अमर प्रेम तो चाहिए  
पर गगनधरा सा प्रेम बिलकुल नहीं,  
भू जानती है आसमान को प्रेम है  
पर वो झुक नहीं सकता  
उसके पौख पे बल न पड़ जाए...  
दूर कहीं झुकने का अभिनय  
उसे अपनी ओर खींचने का बहाना मात्र है।

संपर्क : 144, रवीन्द्र सारणी, भट्टोनगर, लिलुआ, हावड़ा  
पिन - 700203, पं.बं., मो. 8820726144

## यादों के आईने में

-चाँदनी सिन्हा

जिन्दगी की रोजमर्रा रफ्तार से मुड़कर  
जब मैं अपने आपको टटोलती हूँ,  
यादों की भीड़ में,  
मेरा मन बादलों की तरह,  
अठखेलियाँ लेता हुआ नर्मी से  
पकड़ कर मेरा हाथ  
हौले-हौले बचपन के दरवाजे पर  
देता है दस्तक  
रंगों की खुशबू  
सर्दियों की गुनगुनी धूप की तरह  
रोमांचित कर देने वाले पल  
मुझे प्रफुल्लित कर देते हैं  
सिहर उठती हूँ कि मैं कहीं  
सुख पत्तों की तरह बिछड़ न जाऊँ उनसे  
जब मैं, इस एहसास के वातायन से  
वास्तविकता के कमरों में झाँकती हूँ  
मेरी समझ एक बूढ़े आदमी की तरह  
समय की झुर्रियों को समेटती हुई  
बहुत सम्भल-सम्भल कर  
अपने पैर इन कमरों में रखती है  
वे सारे मखमली एहसास  
मानो उबलते पानी के धुएँ में विलीन हो जाते हैं  
क्या जिन्दगी की हकीकत इतनी तल्ख हो जाती है  
अपनी उम्र के बढ़ने पर  
जो समय कटता था  
वह समय अब काटता है  
कहाँ गये वे बचपन के सुनहरे दिन  
जिसकी पीठ पर सवार होकर हम  
बेफिक्री से घूमते थे  
कभी-कभी तो हमें  
दिन में गुदगुदा कर चले जाते हैं  
बीते दिनों के वे ही पल  
अपलक बैठी  
सोचती ही रह जाती हूँ।  
स्वयं का यादों के आईने में  
कर साक्षात्कार।

## सोच

वृक्षों की उधेड़-बुन वाली  
शाखाओं सी उलझी हुई सोच  
अंधेरे से उभरती हर परछाहीं में  
ढूँढ़ती टटोलती सोच  
भीड़ की हिस्सेदारी से घिरी सोच  
किसी के जरा से हाथ लगाते ही  
बिखर कर ढह जाने वाली सोच  
जमीनी हकीकत की सच्चाई से मुँह मोड़ लेने वाली  
वही सोच-  
क्या ला पायेगी ढर्रे पर चल रही व्यवस्था में  
बदलाव  
हाँ, वही बदलाव जो  
सीलन भरी रिसती हुई दीवार  
के किसी एक छोटे से सुराख को  
चीरकर बढ़ती सूरज की किरणें  
मानों चीख-चीख कर कह रही है  
जगह दो मुझे  
परन्तु,  
अंधेरे और सड़ांध में घुटती सोच की रोशनी  
का गला घोट दिया जाता है ...  
... और उसकी मृत्यु हो जाती है।  
तय हमें करना है कि  
हमारी सोच सीलन भरी-रिसती दीवार बनेगी  
या फिर रोशनी की मजबूत शहतीर।

### परिचय :

**जन्म** - 5 अक्टूबर, 1976, कोलकाता,

**शिक्षा** - सम्मान स्नातक (इतिहास), बी-एड, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

विवाहोपरान्त 2003 से इंग्लैण्ड के बर्मिंघम में प्रवास। विविध सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्रिया-कलापों से जुड़ाव।

**संपर्क** : 107, डाग केनल लेन, बी. 68 9ए, ओल्डबडी, बर्मिंघम (यू.के.) मो0 00447411412229

### बनावट

व्यस्तताओं से घिरे हैं लोग  
भीड़ में भी कहीं अकेले और  
अलग  
अपने में  
चुपचाप  
खोते हुए  
संबंधों की दुनिया  
तार-तार होती पहचान  
बढ़ती हुई दूरियाँ  
इस मकान से उस मकान तक  
खींच तान में लम्बी होती  
जा रही है  
यांत्रिक सक्रियता  
रोज-रोज  
एक ढर्रे पर ढालती जा रही है  
और हम समय के  
चलवाक् पर चढ़े  
फिसलते जा रहे हैं  
कृत्रिम मेधा से तैयार बनावटी दुनिया की ओर

### हिम्मत

आदमी में बसी उसकी हिम्मत  
देती है उसे हौसला  
हर दुःख से लड़कर  
पार निकल जाने की  
गुंजाइश ढूँढ़ना  
उसका सहज स्वभाव है  
जो उसे कभी  
थकने नहीं देता  
हारने भी नहीं देता  
निरन्तर  
करता है मदद उसकी  
अंधेरे से उजाले की तरफ  
पहुँचाने में  
जहाँ सफलता  
अपनी मंजिल लिए  
खड़ी मिलती है।

**परिचय :** अक्षिता शशि साव

**जन्म :** 18 सितम्बर, 2004

**शिक्षा :** उच्च माध्यमिक 2022

**सम्प्रति :** प्रेसिडेन्सी विश्वविद्यालय में हिन्दी सम्मान के चतुर्थ सत्र की छात्रा।  
विविध साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में सक्रिय

**संपर्क :** डॉ. एम.एम. बनर्जी रोड, गारूलिया, नॉर्थ 24 परगना, पश्चिम बंगाल

**पिन :** 743133 मो. 7980036207

## मुक्तांचल - 38, लघुकथा विशेषांक

‘मुक्तांचल’ का लघुकथा विशेषांक (अंक 38) अब तक प्रकाशित पत्रिकाओं के लघुकथा विशेषांकों से अलग हटकर है। इसका श्रेय विशेषांक के अतिथि संपादक डॉ. पंकज साहा को है, जिनके गंभीर प्रयास का परिणाम यह अंक हमारे सामने है। अलग इसलिए है, क्योंकि इसमें लघुकथा संबंधी आलेखों के लिए 73 पृष्ठ दिए गए हैं। मेरी जानकारी में ऐसा पहली बार हुआ है। इससे पहले जितने भी विशेषांक प्रकाशित हुए उनमें एक-दो आलेखों के बाद पत्रिका के पृष्ठों में लघुकथाएँ ही होती थीं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि तब लघुकथाओं पर लिखने वालों की संख्या कम थी। मुझे याद आ रहा है कि डॉ. कमल किशोर गोयनका और डॉ. रत्नलाल शर्मा (मेरे द्वारा संपादित ‘प्रकारान्तर’ (प्रकाशन वर्ष 1991 – किताबघर, नई दिल्ली – पृष्ठ 300) के अलावा एक भी बड़ा आलोचक लघुकथा को लेकर कुछ भी लिखने से बचते थे। डॉ. बलराम अग्रवाल, बलराम, सुभाष नीरव, माधव नागदा, डॉ. अशोक भाटिया, श्यामसुन्दर चौधरी, विक्रम सोनी, श्यामसुन्दर दीप्ति, श्यामसुन्दर अग्रवाल आदि लेखक अवश्य लिख रहे थे। लघुकथाकार इस बात पर चर्चा भी कर रहे थे कि लघुकथाकारों के बीच से ही कुछ लोगों को आलोचना के क्षेत्र में आना होगा। यह बात नवें दशक तक होती रही थी। ‘मुक्तांचल’ के इस अंक से इस बात की सुखद अनुभूति हुई कि आज लघुकथा पर लोग लिख रहे हैं। लघुकथा को एक विधा के रूप में आठवें दशक के अंत तक पहचान मिल चुकी थी। वरिष्ठ लेखक बलराम ने आठवें और नवें दशक में लघुकथा के संपादन के क्षेत्र में भूतो-न भविष्यति कार्य किया। लघुकथा-कोश (सचिन प्रकाशन, नई दिल्ली) से विश्व-लघुकथा कोश तक की उनकी यात्रा ने लघुकथा को एक विधा के रूप में पहचान दिलवाने में महत भूमिका अदा की। आज भी यदा-कदा उनके संपादन का चमत्कार देखने को मिल जाता है। लेकिन, पत्रिका के एक-दो आलेखों में एक लघुकथा लेखक के रूप में ही उन्हें याद किया गया है। डॉ. अशोक भाटिया ने मुग्धभाव से बार-बार असगर वजाहत का नाम लिया है, लेकिन वह बलराम या रमेश बत्तार का नाम लेने से बचते दिखाई दिए। बुढ़ापे में स्मरण शक्ति भी कमजोर हो जाती है।

अशोक भाटिया आलेख के दूसरे अनुच्छेद में कुछ कहानियों और कुछ लघुकथाओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उन कहानियों को लघुकथा और उन लघुकथाओं को कहानी नहीं बनाया जा सकता है। लेकिन, कौन सा नहीं है। यह विषय की संभावना पर निर्भर करता है।

लघुकथाओं पर आलेख लिखने वाले कुछ लेखक कहानी-उपन्यास लिखने वाले कुछ लेखकों से अतिरिक्त प्रभावित दिखते हैं या संभव है आतंकित रहते हों। अशोक भाटिया एक स्थान पर लिखते हैं, – हालाँकि उदय प्रकाश, स्वयंप्रकाश, संजीव आदि मुख्यधारा के कथाकारों ने शुरू में थोड़ी-बहुत कलम लघुकथा क्षेत्र में भी चलाई, किंतु वे अपनी मुख्य लेखन-धारा में ही रमे रहे। समझ नहीं आया कि भाटिया जी इन तीन नामों तक ही सीमित क्यों रह जाते हैं! ज्ञानप्रकाश विवेक ने भी लघुकथाएँ लिखीं और अमरीक सिंह दीप आज भी लिख रहे हैं। यही नहीं उस रमेश बत्तार को किसी ने नहीं याद किया जिसके कारण आज लघुकथा विधा चर्चा के केंद्र में है।

भाटिया जी लिखते हैं, ‘कितने पाकिस्तान’ उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त करने वाले चर्चित कथाकार संपादक कमलेश्वर ने यद्यपि स्वयं लघुकथाएँ नहीं लिखीं, किंतु सारिका के माध्यम से

लघुकथाओं को एक बड़ा मंच उन्होंने प्रदान किया।” लघुकथा की ओर कमलेश्वर जी का ध्यान सारिका में उप-संपादक के रूप में कार्य करने वाले रमेश बत्तरा ने आकर्षित किया था। रमेश बत्तरा ‘तारिका’ (जलंधर) का लघुकथा विशेषांक निकाल चुके थे। वह न केवल एक शानदार कहानीकार थे, बल्कि, उतने ही बेहतरीन लघुकथाकार थे और आज जिसे हम ‘आधुनिक लघुकथा’ कहते हैं, उसको यहाँ तक पहुँचाने में जिस व्यक्ति की भूमिका रही उसका नाम रमेश बत्तरा था। आज की पीढ़ी के लोग रमेश को न जानें तो समझ आता है, लेकिन रमेश की पीढ़ी के लोग न याद करें यह दुर्भाग्यपूर्ण है। उदय प्रकाश को याद करते हैं, जिनकी कुछ रचनाएँ जनसत्ता में धारावाहिक छपी थीं, जिन्हें बाद में उन्होंने लघुकथा कहा। धन्यवाद डॉ. तरसेम गुजराल और डॉ. प्रेम जनमेजय का जिन्होंने रमेश पर पुस्तक संपादित करके उन्हें कब्र से बाहर निकाल लिया। वर्ना लघुकथाकारों ने, खासकर उनकी पीढ़ी के लघुकथाकारों ने उन्हें पूरी तरह गहरे कब्र में दफनाने में कोई कमी नहीं छोड़ी थी। यहाँ यह उक्ति अधिक उपयुक्त है, ‘उगते सूरज को सभी प्रणाम करते हैं।’ फिर चित्रा मुग्दल, असगर वजाहत और उदय प्रकाश को क्यों नहीं याद किया जाएगा। पृथ्वीराज अरोड़ा और चित्रेश जैसे समर्पित लघुकथाकारों को क्यों याद किया जाए, भले ही उन्होंने कालजयी लघुकथाएँ लिखीं। मधुदीप को उस तरह याद नहीं किया गया, जितने के वह हकदार थे। वह लघुकथा के लिए समर्पित थे।

आलेखों में डॉ. बलराम अग्रवाल और माधव नागदा के आलेख बहुत महत्वपूर्ण हैं। अपने आलेख में बलराम अग्रवाल कई मुद्दों पर अपनी स्वाभाविक दुश्चिन्ता प्रकट करते हैं, “इधर कुछ लघुकथाओं में विचार-पक्ष की अधिकता इतनी देखने को मिलने लगी है कि एक नई विधा” लघु-आकारी निबंध कथा” जन्म लेती-सी लग रही है। वस्तुतः हमें नहीं भूलना चाहिए कि लघुकथा कथा-साहित्य की विधा है, दर्शन अथवा कथेतर साहित्य की नहीं।” आगे वह कहते हैं, “लघुकथा के विषय को नवविद्वत्ता के साथ नहीं, सामान्य रूप में उपस्थित करना चाहिए।”

माधव नागदा लघुकथाकार के रूप की तलाश को बहुत टेढ़ा काम बताते हैं। उनके अनुसार लघुकथाकार उपन्यासकार और कहानीकार की तरह निश्चित होकर कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ा सकता। कहानीकार तो बिलकुल ही कल्पना के घोड़े नहीं दौड़ा पाता। उपन्यासकार को किंचित छूट अवश्य होती है, लेकिन विषय से हटकर या विषयगत विस्तार देने के खतरे उसके लिए भी होते हैं। निश्चित ही लघुकथा का प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण होता है। अन्य आलेखों में रामदेव धुरंधर, श्री श्रीराम परिहार, राजीव कुमार रावत, सिद्धेश्वर, डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा आदि के आलेखों से सिद्ध होता है कि लघुकथा के पास अब आलोचकों का संकट नहीं रहा।

लघुकथाकारों में नीरज दइया, शशि काण्डपाल, रंजना जायसवाल, वीना सिंह, संजय कुमार सिंह, माला वर्मा, मार्टिन जॉन, उत्कर्ष अग्निहोत्री आदि की लघुकथाएँ ध्यानाकर्षित करती हैं। डॉ. पंकज साहा स्वयं एक चर्चित लघुकथाकार हैं। साहा जी का संपादकीय उल्लेखनीय है। निश्चित ही ‘मुक्तांचल’ का यह अंक लघुकथा साहित्य के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

—रूपसिंह चंदेल

संपर्क : फ्लैट नं. 705, टॉवर-8, विपुल गार्डन्स,  
धारुहेड़ा, हरियाणा, पिन-123106 मो. 8059948233

## मुक्तांचल का लघुकथा अंक

1975 में जब मैंने कक्षा पाँच में 'रीडर्स डाइजेस्ट' एक मासिक पत्रिका की सदस्यता ले ली थी, जिसमें मानव हित की सामग्री होती थी। इसमें उन लोगों के जीवन पर सुंदर उद्धरण भी थे जो दुनिया के उत्सुक पर्यवेक्षक थे। इन सब के अलावा, लेख के अंत में बहुत दिलचस्प टुकड़े थे जो कम से कम कहने के लिए सबसे अधिक दिल को छू लेने वाली कहानियाँ थीं। लघुकथाएँ के बारे में मेरी धारणा है कि इसने मेरे युवा मन पर एक अमिट छाप छोड़ी है। 'मुक्तांचल' हावड़ा से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक हिंदी साहित्यिक पत्रिका अपने प्रकाशन के दसवें वर्ष में मजबूत और अच्छी तरह से लघुकथाओं पर एक विशेष अंक (संख्या -38) लेकर आई है। यह पत्रिका उन पारखी लोगों के लिए है जो साहित्यिक अध्ययन में रूचि रखते हैं।

मुक्तांचल का कवर रंगों का एक ऐसा संगम है जो मनमोहक और रोमांचकारी रूप से उभरकर सामने आया, जिसे पढ़ने के लिए मैं तुरंत पन्ने पलटने लगा। संस्थापक, संपादक डॉ. मीरा सिन्हा लघुकथाओं के इस विशेष संस्करण को लेकर बहुत ऊर्जावान थीं और 'मुक्तांचल' के प्रति उनकी अटूट भक्ति सबसे संतुष्टिदायक थी। डॉ. विनय मिश्रा ने लघुकथा के सभी पहलुओं पर अपने बहुत ही व्यावहारिक विचारों के साथ बातचीत की शुरुआत की, जिसने लघुकथा को आधुनिक समय में लेखन का एक बहुत ही शक्तिशाली रूप बना दिया है।

अतिथि संपादक डॉ. पंकज साहा और उनकी टीम ने मुक्तांचल-38 में लघुकथाओं पर सबसे समसामयिक लेख लाने के लिए अपना पूरा मनोयोग दिया है। प्रख्यात वक्ताओं ने इस आधार पर अपनी बात को आगे बढ़ाया कि लघुकथा में विचारों की अभिव्यक्ति बहुत स्पष्ट है और इसका उद्देश्य पाठक के लिए विचारों का लचीला आदान-प्रदान करना है। यहाँ लघुकथा के दो नमूनों का उल्लेख करना आवश्यक है, एक मुक्तांचल के लघुकथा विशेषांक से और दूसरा डॉ. विजया सिंह के फेसबुक पेज से, जो गुरुवार, 29 जून, 2023 को सलीका के संपादकीय कार्यालय में वक्ताओं में से एक थीं।

पहला डॉ. विजया सिंह द्वारा लिखित 'विस्मृति' है, जो 16 फरवरी, 2022 (फेसबुक) की है, जो दुबली-पतली विमला काकी की पीड़ा पर आधारित है, और दूसरा शोधार्थी चाहत अन्वी द्वारा लिखित 'स्लीपर क्लास' है, जो पृष्ठ 89 (मुक्तांचल -38, अप्रैल-जून 2023) पर है। दोनों रचनाएँ दर्दनाक कहानियाँ सुनाती हैं और समाज को आत्मनिरीक्षण का आह्वान करती हैं। लघुकथा विशेषांक पर आयोजित चर्चा के मुख्य अतिथि डॉ. अरुण होता, इस बात से बहुत खुश थे कि अन्य वक्ताओं में इस चर्चा के लिए बहुत तत्परता थी और प्रत्येक ने पिछले वक्ता द्वारा उठाए गए बिंदुओं को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। कुल मिलाकर चर्चा मनोरंजक होने के साथ-साथ ज्ञानवर्धक भी थी।

—पद्माकर व्यास

19, NETAJI SUBHASH ROAD, 5TH FLOOR, GITA BHAWAN,  
HOWRAH- 711101, WEST BENGAL

## नीलांबर ने आयोजित किया लिटरेरिया 2023

नीलांबर संस्था का वार्षिकोत्सव 'लिटरेरिया' 1 से 3 दिसंबर 2023 के बीच कोलकाता में आयोजित हुआ। इस आयोजन के माध्यम से नीलांबर ने साहित्य और अन्य कलाओं के आपसी संवाद के लिए एक बेहतर मंच उपलब्ध कराया है। इस प्रकार इस संस्था ने साहित्य और कला के बीच एक सार्थक सेतु की भूमिका निभाई है। नीलांबर हमेशा ही साहित्य में नए प्रयोग एवं आधुनिक तकनीक के समावेश से साहित्य को आम जन तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत रहा है। स्वागत वक्तव्य देते हुए संस्था के संरक्षक मृत्युंजय कुमार सिंह ने कहा कि नीलांबर का हर सदस्य अपनी भूमिका से संस्था का प्रतिनिधित्व करता है।

सेमिनार के पहले सत्र में 'श्रद्धा का विकलांग दौर और परसाई' विषय पर अपनी बात रखते हुए इतु सिंह ने कहा कि यह दौर वैचारिक विकलांगता का दौर है लेकिन शारीरिक विकलांगता के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है, इसके ठीक? उल्टे वैचारिक विकलांगता अक्षम्य है। साथ ही वे कहती हैं? कि राजनैतिक प्रतिबद्धता के बावजूद परसाई पाठकों को वैचारिक स्वतंत्रता देते थे। प्रियंकर पालीवाल ने कहा कि परसाई के व्यंग्य के शीर्षक अपने आप में शोध का विषय हैं। वे आगे कहते हैं कि विवेक के अभाव में हम विरोध के स्थान पर ताली बजा रहे हैं, व्यंग्य इस फांक को पूरा करता है। मोहन श्रोत्रिय ने आज के दौर को श्रद्धा का विकलांग दौर कहने के बजाय इसे दिव्यांग श्रद्धा का दौर कहना ज्यादा उचित माना। उन्होंने कहा कि विश्व साहित्य और विश्व राजनीति की गहरी समझ परसाई में थी, जिसके नजदीक एकमात्र मुक्तिबोध ठहरते हैं। इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए उदय प्रकाश ने कहा कि वर्तमान में जो सरोकार मात्र स्वास्थ्य तक सीमित है उसे विचार पर भी केंद्रित करना होगा। लिटरेरिया के दूसरे दिन की शुरुआत वसु गंधर्व के गायन से हुई। सांस्कृतिक सत्र का संचालन प्रियंका सिंह ने किया। युवा संवाद सत्र का विषय था 'विकलांग श्रद्धा का दौर और हम'। यह सत्र नीलाम्बर द्वारा युवा प्रतिभाओं को तलाशने व तराशने की साहित्यिक पहल है। इस सत्र के युवा वक्ताओं में पूजा मिश्र, अन्वेषा कबिरत्ना, कालू तमांग और भानु प्रताप पांडेय शामिल थे। सत्र का संचालन दिनेश राय ने किया। इस दिन का मुख्य आकर्षण रहा बालमुकुन्द गुप्त की चर्चित रचना 'शिवशंभु के चिट्ठे' पर केंद्रित संवाद सत्र 'अंग्रेजी राज में शिवशंभु के चिट्ठे'। इस सत्र में बोलते हुए विनय मिश्र ने इस रचना को आधुनिक युग का प्रस्थान बिंदु बताया। वेद रमण ने कहा कि सामान्यतः यह मान्यता है कि भारत भाग्यवादियों की भूमि है, वहीं बालमुकुन्द गुप्त कहते हैं कि यह कर्मवादियों का देश है। उदयन वाजपेयी ने बालमुकुन्द गुप्त को हिंदी का पहला बुद्धिजीवी बताया। उन्होंने कहा कि बुद्धिजीवी राजसत्ता और प्रजा के बीच की खाई को पाटता है। यही काम बालमुकुन्द गुप्त ने अपने 'चिट्ठे' में किया है। सत्र के अध्यक्ष सुधीश पचौरी ने कहा कि व्यंग्य अहिंसा के लिए भाषा के भीतर जगह देता है। लिटरेरिया के तीसरे दिन की शुरुआत नीलांबर की टीम द्वारा मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और उदय प्रकाश की कविताओं के गायन से हुई। इस दिन कहानी पाठ के सत्र में चर्चित कथाकार पंकज मिश्र ने अपनी कहानी 'बेचूलाल का भूत उर्फ बैलाकाभू' का पाठ किया। सत्र का संचालन विनोद कुमार ने किया।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों के सत्र में अनुभवी गायक अजय राय की सुमधुर आवाज में काव्य-संगीत की प्रस्तुति ने सभागार को संगीतमय बना दिया। तदुपरांत 'विवेचना रंग मण्डल' द्वारा अरुण पाण्डेय के निर्देशन में 'निठल्ले की डायरी' नाटक का मंचन हुआ। सम्मान सत्र में विनय शर्मा को 'रवि दवे सम्मान' से सम्मानित किया गया। उन्हें यह सम्मान सुप्रसिद्ध कवि-कथाकार उदय प्रकाश ने प्रदान किया। इस वर्ष अजय राय को 'निनाद सम्मान' से सम्मानित किया गया। उन्हें यह सम्मान फिल्म निर्देशक एवं लेखक प्रमोद सिंह ने प्रदान किया। लिटरेरिया आयोजन समिति के संयोजक थे यतीश कुमार, ऋतेश कुमार और मनोज झा। सेमिनार एवं संवाद सत्र का संयोजन ममता पांडेय और योगेश तिवारी ने किया। कविता सत्र का संयोजन निर्मला तोदी और आनंद गुप्ता ने किया। नाटक सत्र का संयोजन कल्पना झा ने किया। निनाद सम्मान की चयन समिति में अल्पना नायक (संयोजक), कृष्ण कुमार श्रीवास्तव, प्रभात मिलिंद और कुंदन सिद्धार्थ शामिल थे। तीन दिवसीय इस साहित्योत्सव में कोलकाता एवं इसके आसपास के अंचल के अलावा देश के विभिन्न हिस्सों से आए साहित्य-प्रेमी शामिल थे। इस वर्ष लिटरेरिया के आयोजन में रज़ा न्यास (दिल्ली) ने भी सहयोग किया।

आनंद गुप्ता (सचिव, नीलांबर) मो. 9339487500

### बर्मिंघम में साहित्यिक अड्डा

27 दिसम्बर, 2023 को दिन के दोपहर 2 बजे से संध्या छह बजे तक एक साहित्यिक अड्डे का आयोजन चाँदनी सिन्हा के आवास पर हुआ। इस अड्डे पर हिंदी, उर्दू एवं अंग्रेजी के लगभग दर्जन भर लेखक एकत्र हुए। स्वरचित कविता पाठ के साथ-साथ विविध साहित्यिक गतिविधियों पर चर्चा हुई। इस अड्डे पर प्रमुख रूप से उपस्थित थे डॉ. कृष्ण कुमार, स्वर्ण तलवाड़, डॉ. कृष्ण कन्हैया, चित्रा कुमार, परवेज़ मुज़फ़्फ़र, राखी बंसल आदि।

डॉ. मीरा सिन्हा

### गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय की पहली बैठक

गीतांजलि बहुभाषी साहित्यिक समुदाय (बर्मिंघम, यू.के.) के साल 2024 की पहली बैठक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार रविवार अपराह्न दिनांक 14 जनवरी 2024 को डॉ. कृष्ण कन्हैया और डॉ. अंजना सिन्हा के टिविडेल ओल्डबरी के निवास स्थान पर संपन्न हुई, जिसमें चालीस लोगों से ऊपर की भागीदारी रही। उपस्थित कवियों/कवयित्रियों ने अपने-अपने काव्य-पाठ किए। एजेंडा आइटम में से तीन महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा हुई, जिसमें जर्मनी-यूके साहित्यिक एक्सचेंज कार्यक्रम, आधुनिक साहित्यिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन और इस साल का वार्षिक गीतांजलि कार्यक्रम की स्वीकृति प्रमुख रही। कार्यक्रम की समाप्ति के उपरांत लोगों ने भोजन ग्रहण किया और उपस्थित लोगों के बीच में विचारों का आदान-प्रदान हुआ। इस साल की दूसरी बैठक अप्रैल माह की 14 तारीख को राखी बंसल और अमित बंसल के घर में होनी है।

-चाँदनी सिन्हा



## समीक्षार्थ पुस्तकें प्राप्त हुई

पुस्तक का नाम	लेखक/लेखिका	प्रकाशक
1. दोनों के बीच	डॉ. कृष्ण कुमार	विश्व हिंदी साहित्य परिषद् एडी-94/डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
2. अनुच्छेद 370 एवं 2019 की कविताएं	डॉ. कृष्ण कुमार	विश्व हिंदी साहित्य परिषद् एडी-94/डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
3. हर पल वसंत रचते हैं	डॉ. कृष्ण कुमार संपादन-डॉ. रश्मि खुराना	आस्था प्रकाशन ग्रह 89, न्यू राजा गार्डन, मिट्टापुर रोड, जालंधर (पंजाब)
4. कविता कभी ना रुकना तुम..	स्वर्ण तलवाड़	विश्व हिंदी साहित्य परिषद् एडी-94/डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
5. वीज़ा	स्वर्ण तलवाड़	विश्व हिंदी साहित्य परिषद् एडी-94/डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
6. किताब संवेदना की	डॉ. कृष्ण कन्हैया	विश्व हिंदी साहित्य परिषद् एडी-94/डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
7. अनछुए तथ्य	डॉ. कृष्ण कन्हैया	विश्व हिंदी साहित्य परिषद् एडी-94/डी, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
8. किताब ज़िन्दगी की	डॉ. कृष्ण कन्हैया	वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नई-दिल्ली-110002
9. शान्तिनिकेतन दरस परस	मंजु रानी सिंह	नयी किताब प्रकाशन, 1/11829, प्रथम मंजिल, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
10. आड़ा वक्त (उपन्यास)	राजनारायण बोहरे	लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, 4637/20, शॉप न. एफ-5, प्रथम तल, हरि सदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
11. रुदादे-सफ़र (उपन्यास)	पंकज सुबीर	शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर-466001 (म.प्र.)
12. कविता पाठक आलोचना	निशान्त	सेतु प्रकाशन प्रा. लि. सी-21, सेक्टर - 65, नोएडा (उ.प्र.)-201301
13. खिड़कियाँ झारोखें और लड़कियाँ	रंजना अरगडे	अनन्य प्रकाशन ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
14. जितेन्द्र श्रीवास्तव और उनकी जीवन दृष्टि	परमजीत कुमार पंडित	कलमकार पब्लिशर्स प्रा. लि., 217, भारत अपार्टमेंट, सेक्टर 16बी, द्वारका, नई दिल्ली-110078
15. हिन्दी कविता और नक्सलवाद	पूनम सिंह	वाग्देवी प्रकाशन सी-21, प्रथम तल, सेक्टर-65, नोएडा (उ.प्र.) 201301
16. उजाड़ लोकतंत्र में	पूनम सिंह	प्रकाशन संस्थान, 4268-B/3, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002.
17. हिन्दी के अघोषित व्यंग्यकार	डॉ. पंकज साहा	अधिकरण प्रकाशन मकान संख्या-133, गीन न. 14, प्रथम तल बी-बलॉक, खजूरी खाद्य, दिल्ली-11009
18. अंजोर छत्तीसगढ़ी कविताएँ	एकान्त श्रीवास्तव	प्रकाशन संस्थान, 4268-B/3, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002.
19. द्वापर गाथा महाकाव्य	ध्रुव नारायण सिंह राई	स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002
20. टुकड़ा-टुकड़ा सच (कविता संग्रह)	ध्रुव नारायण सिंह राई	स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002
21. अँगूठा बोलता है (खण्ड काव्य)	ध्रुव नारायण सिंह राई	स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002
22. पानी का पता	मनीषा झा	प्रलेक प्रकाशन, 702, जे/50, एवेन्यू-जे, ग्लोबल सिटी, विरार (वेस्ट), ठाणे, महाराष्ट्र-401308
23. दुखग्राम	चन्द्रकिशोर जायसवाल	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
24. एक बूंद समंदर के हवाले	अशोक आशीष	शब्द शक्ति प्रकाशन, 704, एल आई जी-3, गंगापुर कलोनी, यशोदा नगर, कानपुर-208011

इस पार तक.....

## सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

(जन्म : 21 फरवरी 1896, मृत्यु : 15 अक्टूबर 1961)



### ध्वनि

अभी न होगा मेरा अन्त

अभी-अभी ही तो आया है  
मेरे वन में मृदुल वसंत-  
अभी न होगा मेरा अंत

हरे-हरे ये पात,  
डालियो, कलियो कोमल गात!

मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर  
फेरूंगा निद्रित कलियो पर  
जगा एक प्रत्यूष मनोहर

पुष्प-पुष्प से तन्द्रालस लालसा खींच लूंगा मैं,  
अपने नवजीवन का अमृत सहर्ष सींच दूंगा मैं.

द्वार दिखा दूंगा फिर उनको  
है मेरे वे जहाँ अनन्त-  
अभी न होगा मेरा अन्त।

मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,  
इसमें कहाँ मृत्यु?  
है जीवन ही जीवन  
अभी पड़ा है आगे सारा जीवन  
स्वर्ण-किरण कल्लोलों पर बहता रे, बालक-मन,

मेरे ही अविकसित राग से  
विकसित होगा बंधु, दिगंत;

अभी न होगा मेरा अंत।

—परिमल



হাওড়া বিজ্ঞানী মেগ (8/21 No. 8053 of 26/3-2014) 6/2/1, আসন্ন  
 মাসের জন্য, মনোচিত্র, হাওড়া-711106 দ্বারা প্রকাশিত এবং বোর্ডে কৃষ্ণ পান্ডে,  
 জিলাদা দ্বারা 58 মাসের জন্য বোর্ডে কলকাতা থেকে প্রকাশিত

সম্পাদক : ড. মীরা বিদ্যা